सामवेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों का सांस्कृतिक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशक

डॉ० चन्द्र भूषण मिश्र

अवकाश प्राप्त प्रोफेसर

(संस्कृत–विभाग)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

प्रस्तुतकर्त्री

मंजूलता शुक्ला

एम० ए० (संस्कृत–वेद)

Manju Shukla

संस्कृत-विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

दिसम्बर–2002

भूमिका

वेद विश्व साहित्य की अमूल्य निधि है। वेद ब्रह्म है। वेद परमात्मा का निःश्वास है। अविनश्वर परमात्मा की भाँति वेद भी अविनश्वर है। सृष्टि के आदि में वेद ब्रह्मा की नाभि से स्वयं प्रकट होते हैं और प्रलय काल में ब्रह्मलीन हो जाते हैं। भारतीय परम्परा वेदों को अपौरूषेय मानती है। वेद प्रत्यक्ष तथा अनुमेय प्रमाणों से अप्राप्य ज्ञान–प्राप्ति के अलौकिक उपाय का निर्देशक है। 'मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्।' अतीन्द्रिय वेद मंत्र एवं ब्राह्मणात्मक है। मंत्र का तात्पर्य है ऋग्वेदादि संहिताएँ तथा ब्राह्मण पद का अर्थ है ब्रह्म अर्थात मंत्र के व्याख्यान से सम्बद्ध ब्राह्मण साहित्य। इस प्रकार वेद पद संहिताओं, शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों तथा उपनिषदों का वाचक है।

संहिताओं के भिन्न–भिन्न ब्राह्मण हैं। ऋग्वेद के ऐतरेय एवं कौषीतकि अथवा शाङ्खायन, शुक्लयजुर्वेद का शतपथ, कृष्णयजुर्वेद का तैत्तिरीय, सामवेद के ताण्ड्यादि तथा अथर्ववेद का गोपथ प्रमुख ब्राह्मण ग्रन्थ हैं।

विषय–वस्तु की विलक्षणता तथा विशदता की दृष्टि से सामवेदीय ब्राह्मणों का अपना विशिष्ट महत्त्व है। उनकी इसी विशेषता के कारण वेद वर्ग की छात्रा के रूप में संस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय परास्नातक परीक्षा उत्तीर्ण करने पर मेरे मन में वेद से सम्बद्ध शोध–कार्य सम्पन्न करने की प्रबल इच्छा समुद्भूत हुई और संस्कृत विभाग के तदानीन्तन अध्यक्ष प्रोफेसर हरिशंकर

त्रिपाठी जी की महती अनुकम्पा से मुझे *'सामवेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों का सांस्कृतिक अध्ययन'* विषय पर शोध करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। मैं चाहती थी कि मुझे सामवेद के किसी एक ब्राह्मण ग्रन्थ पर ही शोध करने के लिए अवसर मिले किन्तु मेरे *निर्देशक प्रो0 चन्द्रभूषण मिश्र* के अथक प्रयास करने पर भी शोध–विषय का संक्षिप्तीकरण सम्भव न हो सका। अतएव मैंने सामवेदीय ब्राह्मणों में से कुछ को ही तथा विशेषतया ताण्ड्यब्राह्मण को आधार मान कर शोध–कार्य पूर्ण किया है। इस प्रसंग में शोध–प्रबन्ध के सुधी परीक्षकों से क्षमा–प्रार्थी हूँ।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में कुल छः अध्याय हैं।

प्रथम अध्याय में 'ब्राह्मण साहित्य का सामान्य परिचय' प्रस्तुत किया गया है। जिसके अन्तर्गत वैदिक साहित्य का सामान्य परिचय, 'वेद शब्द का अर्थ, वेदत्रयी और चतुर्वेद, संहिताएँ, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, 'ब्राह्मण' शब्द का अर्थ, ब्राह्मणों का रचना–काल, ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रतिपाद्य –विषय, उपलब्ध तथा अनुपलब्ध ब्राह्मण तथा ब्राह्मणों का महत्व इत्यादि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय में ब्राह्मण साहित्य के सन्दर्भ में सामवेदीय ब्राह्मणों का सामान्य अध्ययन और उसके विशिष्ट प्रतिपाद्य का विवेचनात्मक विवरण प्रस्तुत है। प्रारम्भ में सामान्य पृष्ठभूमि, ब्राह्मण ग्रन्थों की संख्या, सामवेदीय ब्राह्मणों के प्रतिपाद्य, सामवेद के अनुपलब्ध ब्राह्मण तथा साम अनुब्राह्मणों पर विस्तार से विचार

किया गया है। तदनन्तर सामवेदीय ब्राह्मणगत आख्यायिकाओं और उनकी उपयोगिता की विवेचना है।

तृतीय ब्राह्मण के अन्तर्गत सामवेदीय ब्राह्मणों में यज्ञ–विधान, अभिचार कर्मों और अन्य धार्मिक अनुष्ठानों की चर्चा की गयी है। प्रारम्भ में यज्ञ की सामान्य पृष्ठभूमि, यज्ञ का उत्स एवं विकास, सामब्राह्मणों के अनुसार यज्ञ संस्था के उद्भव, यज्ञ पद्धति के प्रमुख तत्त्व, यज्ञों में प्रतीक एवं उनका महत्त्व, निरूपित श्रौतयाग, सोमयागों का वैशिष्ट्य, अग्निहोत्र निरूपण, सोमयाग निरूपण, ऋत्विकों तथा उनके कार्यों, सोम और उसके विविध विकल्पों, सोमयागों के वर्गीकरण, अग्निष्टोम की विविधरूपता और देवजन की रूपरेखा प्रभृति विषयों की विस्तृत मीमांसा की गयी है। तदनन्तर अग्निष्टोम–नामकरण और अनुष्ठान का फल, षड्विंशब्राह्मणोक्त विशिष्ट श्रौतयाग–वैश्वदेवत्रयोदशाह, षड्विंशोक्त–श्येन, इषु, सन्दंश और वज्रयाख्य अभिचारयागों–प्रायश्चित्तयाग, सामविधान ब्राह्मणगत प्रायश्चित्त प्रयोग, काम्यकर्म तथा आभिचारिक अनुष्ठानों की भी विशद विवेचना की गयी है।

चतुर्थ अध्याय का उद्देश्य सामवेदीय ब्राह्मणो में उपलब्ध संस्कृति का उद्घाटन है। सर्वप्रथम सामवेदीय ब्राह्मणकालीन भारत की भौगोलिक स्थिति और उसके प्रमुख जनपदों का परिचय प्रस्तुत है। तदनन्तर तत्कालीन आर्थिक स्थिति, सामाजिक जीवन से विभिन्न पक्षों से सम्बद्ध सामग्री का समीक्षात्मक उपस्थापन है। इस सन्दर्भ में व्रात्य–समस्या और यतियों के स्वरूप का विवेचन

विशेष उल्लेख्य है। प्रस्तुत अध्याय के अन्तिम चरण में तत्कालीन शिक्षा प्रणली तथा स्त्री शिक्षा एवं समाज जैसे प्रमुख बिन्दु पर विस्तार से चर्चा की गयी है।

पंचम अध्याय का भी उद्देश्य सामवेदीय ब्राह्मणकालीन संस्कृति पर प्रकाश डालना है जिसके अन्तर्गत तत्कालीन वर्णव्यवस्था, संस्कार और राजनैतिक स्थिति पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गयी है।

षष्ठ अध्याय भी सामवेदीय ब्राह्मणकालीन सांस्कृतिक शेवधि के विषय में ही है। सर्वप्रथम धार्मिक जीवन के अन्तर्गत धर्म के त्रिस्कन्ध स्वरूप के साथ ही विभिन्न उपासना प्रणालियों की मीमांसा की गयी है। तदनन्तर सामवेदीय ब्राह्मणकालीन आचार–दर्शन और आश्रम व्यवस्था पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

ग्रन्थ के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इसमें यागानुष्ठानों का विशाल एवं मनोरम वर्णन है। इसके साथ–साथ इसमें आए आख्यान याज्ञिक क्रिया को सर्वसाधारण के लिए सुलभ एवं ज्ञेय बनाते हैं। ये आख्यान मानव चरित्र को नैतिकता की भी जानकारी देते हैं। मेरे विचार से इनका प्रणयन याज्ञिक विधियों की व्याख्या की दृष्टि से किया गया है। सामवेदीय ब्राह्मणों में स्थान–स्थान पर मानवीय आचरण की दिशा को निर्दिष्ट करने वाले महत्त्वपूर्ण संकेत सुलभ होते हैं। व्यष्टि और समष्टि के व्यवहार की सुदृढ़ आचार–संहिता के प्रस्तावक–रूप में सामवेदीय ब्राह्मणों में निहित नैतिक चेतना का स्तर अत्यन्त उच्च तथा परिष्कृत

है। इनमें प्रायः उन सभी आवश्यक तथ्यों का ध्यान रखा गया हैजो व्यक्ति के व्यवहार को आवश्यकतानुसार न केवल संयत बनाते हैं, अपितु उसे गरिमा से विमण्डित भी करते हैं।

सामवेदीय ब्राह्मणकालीन भारत की भौगोलिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, सामाजिक जीवन, व्रात्य–मीमांसा, शिक्षा–प्रणाली, स्त्री शिक्षा एवं समाज, वर्णव्यवस्था, संस्कार, राजनैतिक स्थिति, धार्मिक स्थिति, आचार–दर्शन तथा आश्रम–व्यवस्था को जानने के लिए यह ग्रन्थ नितान्त उपयोगी है।

अनुसन्धान करते समय अनुसन्धात्री की मौलिक प्रवृत्ति का प्राधान्य रहे– ऐसा ध्यान दिया गया है। अनुसन्धान क्षेत्र में जिन गुरूजनों ने अपना योगदान दिया, उनके प्रति आभार प्रकट करना मैं अपना परम कर्त्तव्य समझती हूँ। सर्वप्रथम मैं *अपने श्वसुर श्री रमेशचन्द्र शुक्ला, सास श्रीमती श्यामा शुक्ला, पति श्री नीरज शुक्ला (विद्युत अभियन्ता) एवं अपनी माता श्रीमती शिवदेवी पाण्डेय* के प्रति आजीवन ऋणी हूँ, जिनके अपार स्नेहिल प्रेम के फलस्वरूप ही यह अनुसन्धान कार्य सम्पन्न हो सका।

शोधकार्य मे प्रवृत्त होने पर मैं अपने *श्रद्धेय गुरु डॉ0 चन्द्रभूषण मिश्र* (अवकाशप्राप्त प्रोफेसर इलाहाबाद विश्वविद्यालय) के प्रति श्रद्धावनत हूँ, जिनसे मुझे समय–समय पर अपेक्षित सहायता एवं प्रेरणा मिली।

इसके अतिरिक्त अपने गुरूजन *डॉ0 हरिशंकर त्रिपाठी, डॉ0 मृदुला त्रिपाठी*

डॉ0 सुचित्रा मित्रा, डॉ0 रामकिशोर शास्त्री, डॉ0 नसरीन, डॉ0 राजलक्ष्मी वर्मा (सभी इलाहाबाद विश्वविद्यालय) के सुझाव, निर्देशन और सहायता के लिए उनके प्रति मैं श्रद्धावनत तथा कृतज्ञ हूँ।

डॉ0 गंगाधर पण्डा (प्रोफेसर एवं पुराणविभागाध्यक्ष सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी) और डॉ0 श्रीमती प्रमोदिनी पण्डा के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ जो अनुसन्धात्री को सदा प्रोत्साहन एवं सत्प्रेरणाएँ देते रहें। *प्रोफेसर जुगल किशोर मिश्र (सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी), प्रोफेसर कौशल किशोर मिश्र (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी), प्रोफेसर कमला प्रसाद सिंह (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी),* से विषय की क्लिष्टता को दूर करने एवं शोध प्रबन्ध की सम्पन्नता में जो सहायता मिली वह अविस्मरणीय है।

पं0 शिवराम त्रिपाठी (अध्यापक सांगवेद विद्यालाय रामघाट वाराणसी), श्री प्रभाकर वापट जी (अध्यापक–उन्नयन संस्थान ब्रह्मनाल वाराणसी), श्री गगनचट्टोपाध्याय (अध्यापक – पट्टाभिरामशास्त्री विद्यालय हनुमानघाट वाराणसी), के प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिनसे मुझे विषय की क्लिष्टता को दूर करने एवं शोध प्रबन्ध की सम्पन्नता में अपार सहायता मिली।

प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करने में जिन विद्वानों एवं वेदविदों का सहयोग रहा उनके प्रति भी मैं अपना आभार प्रदर्शित करती हूँ।

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय :—	पृष्ठ—संख्या
'ब्राह्मण साहित्य का सामान्य परिचय'	1 — 60
1— वैदिक साहित्य का सामान्य परिचय	1 — 19
2— 'ब्राह्मण' शब्द तथा उसका अर्थ	20 — 24
3— ब्राह्मणों का रचनाकाल	24 — 29
4— ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रतिपाद्य—विषय	29 — 34
5— उपलब्ध तथा अनुपलब्ध ब्राह्मण	35 — 56
6— ब्राह्मणों का महत्त्व	56 — 60
द्वितीय अध्याय :—	
'सामवेदीय ब्राह्मणों का सामान्य अध्ययन'	61 — 116
1— सामान्य पृष्ठभूमि	61 — 66
2— सामवेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों की संख्या	67
3— सामवेदीय ब्राह्मण और उनका विशिष्ट प्रतिपाद्य	68 — 98
4— सामवेद के अनुपलब्ध ब्राह्मण	98 — 99
5— सामवेदीय अनुब्राह्मण	99 — 101
6— सामवेदीय ब्राह्मणगत आख्यायिकाएँ	101 — 115
7— उपयोगिता	115 — 116

तृतीय अध्याय :–

पृष्ठ–संख्या

'सामवेदीय ब्राह्मणों में यज्ञ–विधान' 117 – 196

1– यज्ञ की सामान्य पृष्ठ भूमि, उत्स एवं विकास 117 – 123

2– सामवेदीय ब्राह्मणों के अनुसार यज्ञ संस्था का उद्भव 124

3– यज्ञ पद्धति के प्रमुख तत्त्व 125 – 152

4– यज्ञों में प्रतीक एवं उनका महत्त्व 153 – 158

5– सामवेदीय ब्राह्मणों में निरूपित श्रौतयाग 159

6– सोमयागों का वैशिष्ट्य 159

7– अग्निहोत्र–निरूपण 159 – 161

8– ताण्ड्यादि में सोमयाग–निरूपण 162

9– विभिन्न ऋत्विक् और उनके सामान्य कार्य 162 – 164

10– सोमयाग में सोमलता तथा उसके विकल्प 164 – 165

11– सोमयागों का वर्गीकरण 165 – 168

12– अग्निष्टोम की विविधरूपता 168

13– देवयजन की रूपरेखा 168 – 169

14– अग्निष्टोमः नामकरण और अनुष्ठान का फल 169 – 170

15– षड्विंश ब्राह्मणोक्त विशिष्ट

श्रौतयाग–वैश्वदेव त्रयोदशाह 170 – 171

16– षड्विंशोक्त अभिचारयाग–श्येन, इषु, सन्दंश तथा वज्रयाग — पृष्ठ–संख्या 171 – 174

17– ताण्ड्योक्त प्रायश्चित्त याग — 174 – 178

18– षड्विंशोक्त प्रायश्चित्त याग — 178 – 181

19– सामविधान ब्राह्मणगत प्रायश्चित्त प्रयोग — 182 – 185

20– सामविधान ब्राह्मणगत काम्यकर्म — 185 – 188

21– सामविधानोक्त आभिचारिक प्रयोग — 188 – 191

22– सामविधानगत अनुष्ठानों का विश्लेषण — 192 – 193

23– सामवेदीय ब्राह्मणों में प्राप्त यज्ञ–विधान का विश्लेषण और विवेचन — 193 – 196

चतुर्थ अध्याय :–

'सामवेदीय ब्राह्मण में उपलब्ध संस्कृति' — 197 – 237

1– सामवेदीय ब्राह्मणकालीन 'भारत' — 197 – 202

2– सामवेदीय ब्रह्मणों में उपलब्ध 'आर्थिक स्थिति' — 202 – 211

3– सामवेदीय ब्राह्मणकालीन 'सामाजिक–जीवन' — 212 – 215

4– व्रात्य मीमांसा — 216 – 222

5– यति — 222 – 224

6– सामवेदीय ब्राह्मणकालीन 'शिक्षा–प्रणाली' — 224 – 228

7– सामवेदीय ब्राह्मणकालीन 'स्त्री शिक्षा एवं समाज' 229 – 237

पंचम अध्याय :–

'सामवेदीय ब्राह्मणकालीन संस्कृति' 238 – 294

1– सामवेदीय ब्राह्मणों में वर्णित 'वर्ण–व्यवस्था' 238 – 272

2– सामवेदीय ब्राह्मणों में निरूपित 'संस्कार' 273 – 291

3– सामवेदीय ब्राह्मणकालीन 'राजनैतिक स्थिति' 291 – 294

षष्ठ अध्याय :–

'सामवेदीय ब्राह्मणों में निहित सांस्कृतिक तत्त्व' 295 – 346

1– सामवेदीय ब्राह्मणों में प्राप्त 'धार्मिक स्थिति' 295 – 319

2– सामवेदीय ब्राह्मणों में निरूपित 'आचार–दर्शन' 319 – 327

3– सामवेदीय ब्राह्मणों मे में वर्णित 'आश्रम–व्यवस्था' 327 – 346

उपसंहार 347– 355

सहायक ग्रन्थ–सूची 356 – 364

प्रथम अध्याय

'ब्राह्मण साहित्य का सामान्य परिचय'

''वैदिक साहित्य का सामान्य परिचय''

वेद भारतीय परम्परा में प्राचीनतम् और सर्वाधिक पवित्र माने जाने वाले ग्रन्थ हैं। ''मनुस्मृतिकार'' ने तो बहुत ही स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि ''धर्म विषयक जिज्ञासा के लिए श्रुति ही प्रमाण है।'' [1] वेद धर्म का मूल और समस्त ज्ञान से युक्त है। चारों वर्ण, तीनों लोक, चारों आश्रम, भूत, वर्तमान और भविष्य इन सब का परिज्ञान वेद से होता है। [2]

वेद न केवल भारतीय समाज द्वारा समादृत है बल्कि विश्व के महान् विद्वानों ने भी उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखा है तथा उनकी महत्ता को स्वीकारा है। भारतीय परम्परा के अनुसार वेद अपौरूषेय है। वे सदियों पूर्व से मानव-जीवन के कल्याण के साधन बन कर उन्हें अनुप्राणित करते आये हैं। इनमें ज्ञान–विज्ञान, धर्म–दर्शन, सदाचार–संस्कृति, सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन से सम्बन्धित सभी विषय उपलब्ध हैं। अतएव विद्वानों ने इसे विश्व–कोष के रूप में मान्य किया है।

1– ''धर्म जिज्ञास्यमानानांप्रमाणं परमं श्रुतिः'' – ''मनुस्मृति''

2– वेदोऽखिलों धर्ममूलम् सर्वज्ञानमयो हि सः चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वाराश्चाश्रमाः पृथक्। भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिद्धयति।।'' – 'मनुस्मृति''

वेदों के अध्ययन के बिना भारतीय संस्कृति एवं भारतीयों के जीवन–दर्शन को समझाना बड़ा कठिन है। वेद हमारे श्रेय और प्रेय के साधन हैं। मनु ने तो उन्हें सब धर्मो का मूल कहा है– "वेदोंऽखिलो धर्ममूलम्"। [1] वेद से ही समस्त धर्म प्रकट हुए हैं – "वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ।" यही कारण है कि पतंजलि ने षडंग वेदाध्ययन पर अधिक बल दिया –

" ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गों वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च" [2]

वेदों में अध्यात्म–दर्शन का उत्कृष्ट भाण्डागार भरा पड़ा है किन्तु उनके प्रतिपादन की दिशा अर्वाचीन प्रतिपादन–शैली से सर्वथा भिन्न है। उपनिषदों में इसी का विवेचन किया गया है। मानव का जीवन–दर्शन वेदों में प्रतिपादित है। भारतीयों के आचार–विचार, रहन–सहन, धर्म–दर्शन एवं आध्यात्म को समझने के लिए वेदों का अध्ययन परमावश्यक है। इस प्रकार विश्व–साहित्य के इतिहास में वेदों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

धर्म, संस्कृति, समाज, राजनीति, दर्शनकर्म और अर्थ सम्बन्धी विषयों के तुलनात्मक अध्ययन और उनके असमान पहलुओं को दृष्टि में रख कर भी वैदिक युग को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है– पूर्व वैदिक युग

1– मनुस्मृति – 2/6

2– महाभाष्य (पतंजलि) पस्पशाह्निक 1

और उत्तर वैदिक युग। इस दृष्टि से पूर्व वैदिक युग में केवल वेद की चार संहिताएँ और उत्तर वैदिक युग में ब्राह्मण ग्रन्थों से लेकर छः वेदांगो का साहित्य रखा जा सकता है।

'वेद' शब्द का अर्थ

शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'वेद' शब्द 'विद्' धातु में धञ् प्रत्यय लगकर बना है। 'विद्' धातु का सम्बन्ध विद्लृलाभे एवं 'विद् ज्ञाने' दोनो से ही है। 'ऋक्प्रातिशाख्य' के वृत्तिकार विष्णुमित्र ने उक्त दोनो अर्थों का उल्लेख किया है –

'विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते वा एभिः धर्मादिपुरुषार्थाः इति वेदाः'

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक पुरुषार्थचतुष्टय जिनके द्वारा जाना जाये या प्राप्त किया जाये, वे वेद हैं। इस प्रकार वेद शब्द का अभिधेयार्थ 'ज्ञान' है।

व्युत्पन्न वेद भाष्यकार सायण ने इसी के समान 'वेद' शब्द का अर्थ किया है।[1] जीवन में वांछनीय अथवा इष्ट की प्राप्ति एवं अवांछनीय अथवा अनिष्ट के निवारण में वेद साधनभूत अलौकिक उपायों का ज्ञान कराता है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'ऋग्वेदभाष्यभूमिका' में वेद का निर्वचन इस तरह किया है – "जिनसे सभी मनुष्य सत्य विद्या को जानते हैं अथवा प्राप्त

1– "अलौकिकं पुरुषार्थोपायं वेत्यनेनेति वेदशब्दनिर्वचनम्।

इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः।" ऋग्भाष्यभूमिका"

करते हैं या विचारते हैं अथवा विद्वान् होते हैं अथवा सत्य विद्या की प्राप्ति के लिए प्रवृत्त होते हैं।[1]

डॉ0 वाचस्पति गैरोला के कथनानुसार ''वेद शब्द वैदिक युग में वाङ्मय के पर्यायवाची शब्द के अर्थ में प्रयुक्त होता था, बाद में ब्राह्मण काल की रचनाओं के साथ सूत्र शब्द, स्मृति युग की रचनाओं के साथ पुराण शब्द जोड़ा जाने लगा'।[2]

इस प्रकार वेद शब्द प्राचीनकाल में 'ज्ञान' के अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है किन्तु 'आपस्तम्ब' में इस शब्द का प्रयोग 'ज्ञान' के अतिरिक्त एक और अर्थ में प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है जिसके अनुसार 'मंत्र' और 'ब्राह्मण' भाग को 'वेद' कहा जाता था– ''मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्'।[3] किन्तु वेद न तो कुरान के समान धर्मग्रन्थ है और न 'बाइबिल' एवं 'त्रिपिटक' के समान महापुरुषों के वचनो का सग्रंह है। वेद शब्द से वह ईश्वरीय ज्ञान अभिप्रेत है जिसके अन्तर्गत वे समस्त वाङ्मय सग्रंहीत हैं जो शताब्दियों से नहीं बल्कि सहस्राब्दियों में जाकर महर्षियों द्वारा उपलब्ध हुए हैं।

1– 'विदन्ति–जानन्ति, विद्यन्ते–भवन्ति, विन्ते विचारयति, विन्दन्ते–लभन्ते सर्वे मनुष्याः सत्विद्यां यैर्येषु वा तथा विद्वासश्च भवन्ति, ते वेदाः ।'' – स्वामी दयानन्द सरस्वती –ऋग्वेदभाष्यभूमिका, पृष्ठ – 51

2– डॉ0 वाचस्पति गैरोला– ''संस्कृत साहित्य का इतिहास'' – पृष्ठ संख्या 32

3– आपस्तम्ब परिभाषा, 31

वेदत्रयी और चतुर्वेद

वेदों के लिए ''त्रयी' शब्द का प्रयोग मिलता है। 'पुरुषसूक्त' के निम्न मन्त्र में तीन ही वेदों का नाम मिलता है–

'तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानिजज्ञिरे।

छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत।। [1]

उक्त मंत्र में 'ऋक्, 'यजुः' और 'साम' का नाम आया है जिससे ज्ञात होता है कि वेद तीन हैं। वैदिक देवताओं की स्तुतिपरक मंत्र को 'ऋक्' कहते हैं। ये ऋचायें पद्यात्मक हैं। जिन मंत्रों के द्वारा देवताओं का यजन किया जाता है उसे यजुष् कहते हैं। ये यजुष् गद्यात्मक हैं। यज्ञों के अवसर पर देवताओं को प्रसन्न करने के लिए जिन मंत्रो का गायन होता था, वे 'साम' कहलाते हैं। ये स्वर एवं ताल–लयात्मक होने कारण गीत्यात्मक हैं। 'शतपथ ब्राह्मण' में भी कहा गया है कि अग्नि, वायु और सूर्य ने तपस्या करके ऋक्, यजुः और साम इन तीन वेदों को उत्पन्न किया– 'तेभ्यस्तप्तेभयस्त्रयो वेदा अजायन्त। अग्नेः ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः। [2] इस प्रकार ऋक् (पद्य) यजुष् (गद्य) और साम (गीति) इन तीन विभागों के कारण ही इनका नाम 'त्रयी' पड़ा।

1– ऋग्वेद – 10/90/9

2– शतपथब्राह्मण – 11/5

वस्तुतः 'त्रयी' का रहस्य यह है कि वेदों की रचना तीन प्रकार की है– पद्यात्मक, गद्यात्मक और गीत्यात्मक। पद्यात्मक रचना को 'ऋक्' कहते हैं, गद्यात्मक रचना के लिए 'यजुः' शब्द का प्रयोग किया जाता है और गीत्यात्मक रचना को 'साम' कहा जाता है। [1] वेद ही नहीं, बल्कि समस्त वाड्मय ही तीन प्रकार की रचनाओं में विभाजित है। अतः इसके लिए किसी प्रमाण की अपेक्षा नहीं कि वेद तीन हैं। [2]

अथर्ववेद के छः हजार मंत्रों में से लगभग बारह सौ मंत्र ऋक् में पाये जाते हैं। इससे भी सिद्ध होता है कि वेद तीन ही थे परन्तु यजुर्वेद [3], बृहदारण्यकोपनिषद् [4] गोपथब्राह्मण [5], मुण्डकोपनिषद् [6] तथा निरूक्त [7] से इस भ्रम का निवारण हो

1– गीतिषु सामाख्या, शेषेयजुः (जैमिनिसूत्र 2/1/36–37)

2– निरूक्तम् (भूमिका) पृष्ठ 'ग'।

3– "ऋचः सामानि जज्ञिरेछन्दासि जज्ञिरे" – यजुर्वेद 31/7।

4– "अस्यं महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद्वगवेदो सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः।" – बृहदारण्यकोपनिषद् – 2/4/10।

5– "चत्वारो वा इमो वेदा ऋग्वेदो, यजुर्वेदो, सामवेदो, ब्रह्मवेदः।" – गोपथब्राह्मण–1/2/16।

6– "तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदो सामवेदोऽथर्ववेदः"। – 'मुण्डकोपनिषद्'–1/5।

7– निरूक्त–1/2।

जाता है और वेदों की संख्या चार ज्ञात हो जाती है।

लोक प्रतिष्ठा वेदों को चार का पर्याय मानती है। ऋग्वेद [1] का चार सींग और तीन पैर इसी का ही संकेत करता है। आचार्य बलदेव उपाध्याय का मत है कि 'बहुत काल तक 'त्रयी' के समान अथर्व को मान्यता नहीं प्राप्त थी और यह मान्यता शनैः–शनैः अवान्तर शताब्दियों के प्रयास का श्लाघनीय फल है। [2]

प्रत्येक वेद के चार भाग हैं– संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्। संहिता मंत्रो का वह भाग है जिसमें वेदस्तुति वर्णित है। ब्राह्मण ग्रन्थों में मंत्रों के विधिभाग की व्याख्या है। आरण्यक ग्रन्थों में वानप्रस्थी जीवन बिताने वाले वीतराग मनस्वियों के कर्म विधान का प्रतिपादन है तथा उपनिषद् ग्रन्थों में मंत्रों की दार्शनिक व्याख्या की गयी है। इन्ही का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है–

संहिताएँ

वेदमंत्र अनेक ऋषियों, सम्प्रदायों, कई विद्यानिकेतनों और विभिन्न युगों में संकलित, सम्पादित होकर सम्प्रति वर्तमान संहिताओं के रूप में वर्गीकृत हुयी है। व्याकरणव्युत्पत्ति के अनुसार 'संहिता' उसको कहते हैं, जिसमें पदों के अन्त का दूसरे पदों के आदि से मिलान किया जाता है। प्रातिशाख्यों के कथनानुसार 'पदों की मूल प्रकृति ही 'संहिता' है।' वास्तव में मूल वैदिक मंत्र एक साथ सन्नद्ध

1– ऋग्वेद – 4/58/6– यह उनकी संख्या, अंग और रहस्य का संकेत करता है।

2– वैदिक साहित्य और संस्कृति– पृष्ठ 171।

थे, जब उनको अलग–अलग छाटा गया तब उनकी पृथक्–पृथक् शाखएं, संहिताएँ और तदनन्तर उनकी भी शाखाएँ निर्मित हुयीं।

'ऋक् संहिता'

वैदिक साहित्य की समस्त रचनाओ में ऋग्वेद संहिता सर्वाधिक प्राचीन, महत्त्वपूर्ण तथा मौलिक है क्योंकि लगभग सम्पूर्ण सामवेद (पचहत्तर मंत्रों को छोड़कर) और यजुर्वेद का पद्यात्मक अंश तथा अथर्ववेद के कतिपय अंश ऋग्वेद से ही लिए गये हैं।

'महाभाष्य' में पतंजलि ने इस वेद की 'इक्कीस' शाखाओं का निर्देश किया है– 'एकविंशतिधा वाह्वर्च्यम्'। किन्तु परवर्ती ग्रन्थों में केवल पॉच शाखाओं का ही उल्लेख प्राप्त होता है– शाकल, वाष्कल, आश्वलायन, शांखायन और माण्डूकायन किन्तु सम्प्रति प्राप्त और प्रचलित शाखा (शाकल) है। इस शाखा की संहिता में कुल मिलाकर 1017+11 (बालखिल्व) = 1028 सूक्त हैं। इस ग्रन्थ में लगभग 10600 ऋचायें हैं। शाकल संहिता का विभाजन दो प्रकार से किया गया है।

1– मण्डलक्रम = मण्डल, अनुवाक और सूक्त जिसके अनुसार 10 मण्डल, 85 अनुवाक और 1028 सूक्त हैं।

2– अष्टक क्रम = अष्टक, अध्याय तथा वर्ग। इसके अनुसार आठ अष्टक, 64 अध्याय तथा 2006 वर्ग हैं।

'यजुर्वेद संहिता'

दूसरा वेद यजुर्वेद हैं। 'यजुष्' शब्द का अर्थ पूजा एवं यज्ञ है, जिस प्रकार ऋग्वेद के मंत्रों का विषय देवताओं का आवाह्न करना अर्थात् बुलाना है उसी प्रकार यजुर्वेद के मंत्रों का विषय यज्ञ विधियों को सम्पन्न करना है। यह वेद कर्मकाण्ड प्रधान है। यज्ञ अनेक विध हैं। देवताओं की प्रसन्नता के लिए यज्ञों का विधान है, किस यज्ञ में किन–किन मंत्रों का व्यवहार किया जाना चाहिए, इसकी विधियॉ यजुर्वेद में वर्णित हैं। ऐसे मंत्रों के सग्रह का नाम ही 'यजुर्वेद संहिता' है।

'विभाग और शाखाएँ'

यजुर्वेद के दो भाग हैं– कृष्ण और शुक्ल। छंदोबद्ध मंत्रों तथा गद्यात्मक विनियोगों के समिश्रण के कारण पहले भाग का नाम कृष्ण और छंदोबद्ध मंत्रों तथा विनियोगों के अभाव में दूसरे भाग का नाम शुक्ल पड़ा।

इनमें शुक्लयजुर्वेद की दो शाखाएँ हैं– माध्यन्दिन और काण्व। माध्यन्दिन शाखा का प्रचाार उत्तर भारत में अधिक है और काण्व शाखा का प्रचार दक्षिण भारत में अधिक है। कृष्ण यजुर्वेद की सम्प्रति चार शाखाएँ हैं– तैत्तिरीय, मैत्रायणी, काण्व और कठ।

कृष्ण यजुर्वेदकी संहिताएँ गद्य एवं पद्य दोनों में है। कृष्ण यजुर्वेद की 86 शाखाओं का वर्णन है किन्तु वाह्याभ्यन्तर प्रमाणों के आधार पर उनकी संख्या 41 है [1]

1– वैदिक ब्राह्मण – मैक्डानल।

'सामवेद संहिता'

वैदिक वाङ्मय में सामवेद का विशिष्ट स्थान है। 'साम' का अर्थ है 'गायन'। ऋचाएं जब विशिष्ट गान–पद्धति से गायी जाती हैं तो उसे 'साम' कहते हैं। 'जैमिनीय सूत्र' में गीति को ही 'साम' की संज्ञा प्रदान की गयी है– ''गीतिषु– सामाख्या ''।[1] 'साम' शब्द की एक बड़ी सुन्दर निरूक्ति 'बृहदारण्यक उपनिषद्' में दी गयी है– '' सा च अमश्चेति तत्साम्नः सामत्वम्''। 'सा' शब्द का अर्थ है 'ऋक्' और 'अम्' शब्द का अर्थ है गान्धार आदि स्वर। अतः 'साम' शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ हुआ ऋक् के साथ सम्बद्ध स्वरप्रधान गायन – 'तया सह सम्बद्धः अमो नाम स्वरः यत्र वर्तते तत्साम।'' सामवेद के मंत्रों को यज्ञ के अवसर पर 'उद्गाता' नामक पुरोहित तार स्वर से आवश्यकतानुसार गान करता है। अतः निष्कर्षरूप में कहा जा सकता है कि 'साम' शब्द इन्ही गानों के लिए ही प्रयुक्त होता है।

सामवेद के दो भाग हैं– आर्चिक तथा गान। आर्चिक शब्द का अर्थ ऋक्समूह है। इसके भी दो भाग हैं–पूर्वाचिक और उत्तरार्चिक। पूर्वाचिक में छः प्रपाठक हैं और उत्तार्चिक में 9।

पतंजलि ने साम वेद की एक सहस्र शाखाओं काउल्लेख किया है– 'सहस्रवर्त्मा सामवेदः।' किन्तु आज केवल तीन ही शाखाएँ प्रचलित हैं–

1– जैमिनिसूत्र –2/1/36 ।

कौथुमीय, राणायनीय और जैमिनीय। इनमें कौथुमीय का प्रचार गुर्जर देश में, राणायनीय का महाराष्ट्र में तथा जैमिनीय का कर्नाटक में अधिक है।

पुराणों के अनुसार महर्षि वेदव्यास ने अपने शिष्य जैमिनि को साम की शिक्षा दी, जैमिनि ने अपने पुत्र सुमन्तु को, सुमन्तु ने अपने सुन्वानु को और सुन्वानु ने सुकर्मा को साम की शिक्षा दी।

सामवेद की अधिकांश ऋचाएँ गायत्री एवं जगती छन्दो में हैं। वैदिक वाङ्मय में साम के पॉच या सात अंग बताये गये है। पंचविधि सूत्र के अनुसार सामगान के पॉच भाग निम्न प्रकार हैं – प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव और निधन। 'छान्दोग्योपनिषद्' के अनुसार सामगान के सात विभाग है– हिंकार, प्रस्ताव आदि उद्गीथ, उपद्रव, प्रतिहार और निधन।

सामगान में संगीत के अनुकूल जो शाब्दिक परिवर्तन किया जाता है उसे सामविकार कहा जाता है। सामविकार छः प्रकार के होते हैं– (1) विकार (2) विश्लेषण (3) विकर्षण (4) अभ्यास (5) विराम (6) स्तोभ। समग्र सामवेद संहिता में कुल पचहत्तर मंत्र ऐसे हैं जिनका किसी दूसरी संहिता में उल्लेख नहीं मिलता और बाकी सभी मंत्र ऋग्वेद में उल्लिखित हैं।

'अथर्ववेद'

वैदिक वाङ्मय में अथर्ववेद को परवर्तीकाल में गौरव प्राप्त हुआ है। अंगिरा वंशीय अथर्वा ऋषि द्वारा दृष्ट होने के कारण इस वेद को अथर्ववेद संहिता के नाम से भी जाना जाता है। इस वेद के देवता 'सोम' तथा प्रमुख आचार्य 'सुमन्तु' हैं। अथर्व संहिता में यज्ञोपयुक्त अंश कम होने से इसे वेदत्रयी की अपेक्षा कम महत्त्व दिया गया है, क्योंकि यह अधिकांशतः अभिचारात्मक ही है। महाभाष्यकार पतंजलि के अनुसार (1) पिप्पलाद (2) स्तोद (3) मौद (4) शौनकीय (5) जाजल (6) जलद (7) ब्रह्मवेद (8) देवदर्श (9) चारणवैद्य ये नौ शाखाएं हैं। इनमें से इस समय 'पिप्पलाद' एवं 'शौनकीय' मात्र दो ही शाखाएं उपलब्ध होती हैं। सम्पूर्ण अथर्ववेद में कुल 20 काण्ड, 34 प्रपाठक, 111 अनुवाक्, 739 सूक्त तथा 5849 मंत्र हैं। इनमें से लगभग 1200 मंत्र ऋग्वेद में भी मिलते हैं। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार– अथर्ववेद में कुल 20 काण्ड, 731 सूक्त तथा 5987 मंत्र हैं।

अथर्ववेद मंत्र–तन्त्रों तथा जादू–टोनों का प्रकीर्ण संग्रह ग्रन्थ है। इसमें विशेषकर यातुविद्या (जादू–टोने) का विवेचन प्राप्त होता है। यातु–विद्याएं 2 प्रकार की होती हैं– पवित्र (शोभन) और अपवित्र (अशोभन)। पवित्र विद्या में

राज्य–प्राप्ति, कष्ट निवारण आदि से सम्बन्धित सूक्त हैं। अपवित्र विद्या में मारण–मोहन आदि अभिचार विद्या से सम्बन्धित मंत्र आते हैं। अथर्ववेद में कुछ जादू–टोने के मंत्र हैं जो अभिशाप एवं झाड़–फूक से सम्बन्धित हैं जिन्हें अपवित्र या अशोभन जादू कहा जादा है। इन्ही जादू–टोने एवं झाड़–फूक से सम्बन्धित विषयों के प्रतिपादन के कारण ही यह वेद पवित्र साहित्य के अन्तर्गत नहीं किया जाता था।

अथर्ववेद के वर्ण्यविषय को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है– अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवत। अध्यात्म के अन्तर्गत ब्रह्म, परमात्मा एवं चार आश्रमों का निर्देश है। अधिभूत के अन्तर्गत राजा, राज्य, संग्राम आदि विषयों का वर्णन है। अधिदैवत के अन्तर्गत देवता, यज्ञ एवं काल से सम्बन्धित विषयों का विवेचन है।

ऋग्वेदादि तीनो वेदों का विषय स्वर्गलोक की प्राप्ति इत्यादि पारलौकिक तथ्यों से सम्बद्ध विषयों का प्रतिपादन है जबकि अथर्वेद की विषयवस्तु ऐहिक है। अथर्वेद की विषय सामग्री को मुख्यतया निम्नलिखित सात वर्गों में रखा जा सकता है– (1) भैषज्यसूक्त (2) आयुष्यसूक्त (3) पौष्टिकसूक्त (4) स्त्रीकर्मसूक्त (5) प्रायश्चित्तसूक्त (6) ब्रह्मण्यसूक्त (7) राजकर्मसूक्त।

उपर्युक्त सूक्तों के अतिरिक्त दुन्दुभि, पृथ्वी इत्यादि सूक्त भी उपलब्ध होते हैं।

'ब्राह्मण साहित्य '

वैदिक संहिताओ और इनकी शाखाओं के बाद ब्राह्मण ग्रन्थों का समय आता है। ये प्रधानतः कर्मकाण्ड विषयक हैं। ब्राह्मण साहित्य से हमारा तात्पर्य यज्ञ विशेष पर किसी श्रेष्ठ मत के आचार्य के वाद से है। यह मूल रूप से यज्ञ विधान पर पुरोहितों द्वारा की गयी व्याख्या है। चूकि शोध प्रबन्ध का विषय 'सामवेदीय ब्राह्मणग्रन्थों का सांस्कृतिक अध्ययन' है, अतः इसका वर्णन विस्तृत रूप से आगे किया जायेगा।

'आरण्यक साहित्य '

वस्तुतः आरण्यक ग्रन्थ, ब्राह्मण ग्रन्थों के ही पूरक हैं, परन्तु साथ–साथ उपनिषदों के प्रारम्भिक भाग भी हैं। बौधायन धर्मसूत्र में आरण्यकों को भी ब्राह्मण कहा गया है। वस्तुतः दोनो कर्मकाण्ड विषयक हैं, अस्तु कोई विशेष अन्तर दोनों में नहीं है।

एकान्त जनशून्य अरण्य में ब्रह्मचर्य में रत होकर ऋषियों ने जिस गम्भीर और चिन्तन पूर्ण विद्या का अध्ययन किया उसे 'आरण्यक' कहते हैं। सायण ने 'ऐतरेय ब्राह्मण' के भाष्य में लिखा है कि 'एकान्त अरण्य में रहने वाले वानप्रस्थ लोग जिन यज्ञादिको को करते थे उनको बताने वाले ग्रन्थों को 'आरण्यक' कहते हैं। इसी प्रकार इन्होंने 'ऐतरेय आरण्यक भाष्य' में कहा है कि 'अरण्य में पढ़ाये

जाने के योग्य होने के कारण इसे 'आरण्यक' कहते हैं।[1]

आरण्यकों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय 'प्राणविद्या' एवं 'प्रतीकोपासना' है। जिस प्रकार गृहस्थाश्रम के यज्ञ विधानों और दूसरे कतिपय कर्मो का प्रतिपादन ब्राह्मणग्रन्थों में वर्णित हैं उसी प्रकार वानप्रस्थाश्रम के जितने भी यज्ञ महाव्रत तथा हौत्र कर्म हैं, उनकी विधियॉ एवं व्याख्याएं ब्राह्मण गन्थों में वर्णित हैं। 'आरण्यक' वानप्रस्थियों के कर्मकाण्ड तो हैं ही साथ ही उनमें यज्ञ की आध्यात्मिक व्याख्या का भी प्रतिपादन बड़ी ही खूबसूरती से हुआ है।

मंत्र, संहिताओं और ब्राह्मणों की भॉति आरण्यक ग्रन्थों की भी संख्या 1130 थी, किन्तु जिस प्रकार संहिताएं और ब्राह्मण कुछ ही उपलब्ध हैं, उसी प्रकार केवल 8 आरण्यक उपलब्ध हैं जिसमें – ऐतरेय, शांखायन आरण्यक, तैत्तिरीय आरण्यक, बृहदारण्यक, माध्यन्दिन बृहदारण्यक, काण्व बृहदारण्यक, जैमिनीयोपनिषदारण्यक और छान्दोग्यारण्यक।

ऐतरेय और कौषीतकि दोनो आरण्यक ग्रन्थों के प्रथम भाष्यकार सायण और शंकर हुए। बृहदारण्यक पर रामानुज, शंकर तथा सायण ने भाष्य लिखा है। इस प्रकार इसी ब्राह्मण ग्रन्थ का शेष भाग आरण्यक है।

1– 'अरण्य एवं पाठयत्वादारण्यकमितीर्यते' – ऐतरेय आरण्यक, सायणभाष्य

इस प्रकार आरण्यक उस साहित्य को कहा जाता है जिनका अध्ययन और अध्यापन नगरों और ग्रामों से दूर अरण्य में होता था।[1] अतः आरण्यकों के अध्ययन, मनन एवं चिन्तन के लिए अरण्य का एकान्त शान्त वातावरण ही उपयुक्त समझाा जााता था। ग्राम का वातावरण उसके लिए कथमपि उपयुक्त नहीं था।

'उपनिषद् साहित्य'

वैदिक वाङ्मय में उपनिषदों का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उपनिषद वह सहित्य है जिसमें जीवन और जगत् के रहस्यों को उद्घाटित किया गया है। उपनिषद् वैदिक साहित्य की चरमपरिणतिरूप ग्रन्थ है। वैदिक साहित्य के अन्तिम ध्येय ब्रह्मतत्व का निरूपण हाने से इसे वेदान्त भी कहा गया है।

उपनिषद् शब्द 'उप' एवं 'नि' उपसर्ग पूर्वक (सद्लृ) धातु में ' क्विप्' प्रत्यय लगकर बनता है जिसका अर्थ होता है 'समीप में बैठना' अर्थात –गुरू के समीप बैठकर ज्ञान प्राप्त करना । धातुपाठ में सद् (सद्लृ) धातु के तीन अर्थ निर्दिष्ट हैं –विशरण (विनाश होना) , गति (प्रगति) अवसादन (शिथिल होना) । इस प्रकार जो विद्या समस्त अनर्थो के उत्पादक सांसारिक किया –कलापो का नाश् क्रती है, संसार के कारणभूत अविद्या (माया) के बन्धन को शिथिल

1– अरण्याध्ययनादेतदारण्यकमितीर्यते। अरण्ये तदधीयीतेत्येवं वाक्यं प्रचक्ष्यते।।

– तैत्तिरीय आरण्यक, सायणभाष्य, श्लोक 6

करती है और ब्रह्म् का साक्षात्कार कराती है, उसे 'उपनिषद्' कहते हैं ।[1]

वैदिक साहित्य की रूपरेखा में लिखा है "उपनिषदों में प्राप्त होने वाले भाव किसी एक दार्शनिक के भाव नहीं हैं जिसका अन्वेषण किसी एक शिक्षापद्धति के अनुसार किया जा सके, वे तो विभिन्न व्यक्तियों की भावनाएँ हैं जो विभिन्न काल में विस्तार के साथ मुखरित हुई।"[2] –

भारतीय परम्परा के अनुसार उपनिषदों की संख्या 108 मानी जाती है। 'मुक्तिकोपनिषद्' में 108 उपनिषदों का उल्लेख है जिसमेंऋग्वेद से सम्बद्ध 10 उपनिषद्,शुक्ल यजुर्वेद की19,कृष्णयजुर्वेद की 33, सामवेद की 16 और अथर्ववेद से सम्बद्ध 31 उपनिषद् है।मुक्तिकोपनिषद्' में यह कहा गया है कि 108 उपनिषद् सभी उपनिषदो में सारभूत है, इनके अध्ययन से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।[3]

फिर भी इनमें दस उपनिषदें ही प्रमुख एवं प्रामाणिक मानी जाती हैं क्योंकि आचार्य शंकर ने इन्हीं दस उपनिषदों पर अपना भाष्य लिखा है। वे दस उपनिषदें इस प्रकार हैं– ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक माण्डूक्य, तैत्तिरीय,

1– "उपनिषादति सर्वानर्थकरं संसारं विनाशयति, संसारकारणभूतामविद्यां च शिथिलयति, ब्रह्म च गमयति इति उपनिषद्।" – ईशावास्योपनिषद् की भूमिका, 1

2.– 'वैदिक साहित्य की रूपरेखा' – डॉ० पाण्डेय एवं जोशी पृष्ठ संख्या–190

3– 'वैदिक साहित्य का इतिहास'–डॉ० राजकिशोर सिंह पृष्ठ संख्या–204

ऐतरेय, छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक [1] – ये ही उपनिषद प्रचीन तथा सर्वथा प्रामाणिक अंगीकृत हैं। इनके अतिरिक्त कौषीतकि उपनिषद् श्वेताश्वतर तथा मैत्रायणी भी प्राचीन माने जाते हैं। इस प्रकार ये ही त्रयोदश उपनिषद् वेदान्त–तत्त्व के प्रतिपादक होने से विशेषतः श्रद्धाभाजन माने जाते हैं। अन्य उपनिषद् तत्तत्–देवता–विषयक होने से 'तान्त्रिक' माने जा सकते हैं। तन्त्रों को वेद से विरूद्ध तथा अर्वाचीन मानने का सिद्धान्त ठीक नहीं है। ऐसे उपनिषदों में वैष्णव, शाक्त, शैव तथा योगविषयक उपनिषदों की प्रधान गणना है। [2]

संक्षेप में प्रत्येक वेद से सम्बन्ध उपनिषदें इस प्रकार हैं–

(1)	ऋग्वेद के उपनिषद् –	(1)	ऐतरेय उपनिषद्
		(2)	कौषीतकि उपनिषद्
(2)	शुक्ल यजुर्वेद के उपनिषद्	(1)	ईशोपनिषद्
		(2)	बृहदारण्यकोपनिषद्
(3)	कृष्ण यजुर्वेद के उपनिषद्	(1)	तैत्तिरीयोपनिषद्
		(2)	कठोपनिषद्

1– "ईश–केन–कठ–प्रश्न–मुण्ड–माण्डूक्य–तित्तिरिः।
ऐतरेयं च छान्दोग्यं तथा बृहदारण्यकं तथा।। –मुक्तिकोपनिषद्' – 1/30

2– अडयार लाईब्रेरी, मद्रास से ये उपनिषद् 'उपनिषद् ब्रह्मयोगी' की व्याख्याके साथ पृथक्–पृथक् चार खण्डो में प्रकाशित हुए हैं।

		(3)	श्वेताश्वतरोपनिषद्
		(4)	मैत्रायणी उपनिषद्
		(5)	महानारायणोपनिषद्
(4)	सामवेद के उपनिषद्	(1)	केनोपनिषद्
		(2)	छान्दोग्योपनिषद्
(5)	अथर्ववेद के उपनिषद्	(1)	मुण्डकोपनिषद्
		(2)	माण्डूक्योपनिषद्
		(3)	प्रश्नोपनिषद्

उपनिषदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय ''आत्मविद्या'' है। ऋग्वेद में उपलब्ध ''आत्मन्'' और ''ब्रह्मन्' शब्द जो उपनिषत्काल में आत्मा और परमात्मा के वाचक बन गये, उनका ऐक्य प्रतिपादन करना ही उपनिषदों का प्रमुख सिद्धान्त है। ''छान्दोग्योपनिषद्'' का ''तत्त्वमसि'' यह वाक्य आत्मा और परमात्मा के ऐक्य का प्रतिपादक वाक्य है। उपनिषदों में प्रमुखरूप से आत्मा, ब्रह्म, जीव–जगत, पुनर्जन्म सिद्धान्त, आचार–व्यवहार, नैतिक आदर्श आदि विषयों का विवेचन है।

''ब्राह्मण'' शब्द तथा उसका अर्थ

ब्राह्मणों का साहित्य बड़ा ही विशाल था, परन्तु आज अनेक ब्राह्मण काल–कवलित हो गये हैं। इस समय अब तो उनका नाम निर्देश तथा उद्धरण ही कुछ श्रौत ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। वास्तव में मानव जाति के विकास के अध्ययन का मूल श्रोत के कारण भारतीय वाङ्मय अर्थात् वैदिक साहित्य विश्व के किसी और साहित्य की अपेक्षा कहीं अधिक उत्कृष्ट है, अत्यन्त प्राचीनकाल से भारतीय जन वेद को ईश्वरीय वाणी मानते आ रहे हैं। वेद ही उनके समस्त चिन्तन तथा मनन का मुख्य आधार भी रहा है। वास्तव में वैदिक वाङ्मय समस्त भारतीय वाङ्मय का मूर्धन्य रहा है।

''ब्राह्मण'' शब्द का अर्थ :–

वैदिक साहित्य में संहिताओं के पश्चात् ब्राह्मणग्रन्थों का स्थान आता है। ये ग्रन्थ वैदिक साहित्य के अभिन्न अंग माने जाते है। ब्राह्मण के बारे में सामान्य धारणा यह रही है कि ग्रन्थ वाचक ब्राह्मण शब्द ''ब्रह्मन्'' शब्द से निष्पन्न है तथा यागवाचक ''ब्राह्मण'' शब्द ''बृह् वर्द्धने'' धातु से निष्पन्न होने से वृद्धि अर्थ को द्योतित करता है। इस प्रकार सामान्य मतानुसार यज्ञ की अनेकानेक विधियों एवं क्रियाओं को बताने वाले ग्रन्थ का नाम ''ब्राह्मणग्रन्थ'' है।

आपस्तम्ब–परिभाषासूत्र की व्याख्या में कपर्दी ने कहा है कि मनन करने

से मंत्र होते हैं तथा अभिकथन करने से ब्राह्मण कहलाते है।[1] ग्रन्थ का बोध कराने वाला ''ब्राह्मण शब्द नपुंसकलिंग में प्रयुक्त हुआ है। ग्रन्थवाचक ''ब्राह्मण शब्द का अतिप्राचीन प्रयोग तैत्तिरीय संहिता[2] में मिलता है, एतद्ब्राह्मणान्येव पंच हवींषि''। ब्राह्मण ग्रन्थों, निरूक्त तथा पाणिनि की ''अष्टाध्यायी'' में यही प्रयोग मिलता है। यत्रतत्र ''ब्राह्मण'' शब्द का पुलिंग में भी प्रयोग मिलता है, 'य इमे ब्राह्मणाः प्रोक्ता मन्त्रा वै प्रोक्षणे गवाम्''।[3] वैदिक साहित्य में 'वाक्' शब्द 'सत्य' या 'यज्ञ' के अर्थ प्रयुक्त हुआ है।बौधायनधर्मसूत्र के अनुसार ''वाक्'' शब्द ''ब्राह्मण'' ग्रन्थ के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 'वागिति ब्राह्मणमुच्यते''[4] भाष्यकार उव्वट ने ब्राह्मण शब्द को साक्षात् ''श्रुति'' माना[5] है, '' श्रुतिर्ब्राह्मणम्।''

जूलियस एगलिंग ने कृष्णयजुर्वेद पर लिखते[6] हुए ब्राह्मण की व्युत्पत्ति की ओर संकेत किया है। ब्राह्मण मूलतः उपदेशों के ऐसे पिण्ड हैं जो विभिन्न प्रकार

1— ''मन्त्रो मननात् ब्राह्मणभिधानात्'' — दर्शपौर्णमास प्रकाशसूत्र—32 पृष्ठ—74

2— तै0 सं0 — 3—7—1—1

3— महाभारत उ0 पर्व, अ0 13

4— बौ0 ध0 सू0 — 1—7—10

5— यजु0 उ0 भाष्य—18—1

6— विषद अध्ययन हेतु देखें जूलियस एकलिंग—''शतपथ ब्राह्मण'' अनूदित एस0 बी0 ई0—12 इन्ट्रोडक्सन पृष्ठ 22—23

की पूजा एवं कर्मकाण्ड की पद्धतियों के महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को स्पष्ट करते हैं। अपने प्रणेता आचार्यों से श्रुति के माध्यम से ये ब्राह्मणग्रन्थ शिष्य परम्पराओं को शाखानुक्रम से प्राप्त होते आये हैं। जो आज धार्मिक ग्रन्थों के रूप में विद्यमान हैं। इस प्रकार का एक बृहद् उपदेश खण्ड ''ब्राह्मण'' कहलाया।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार '' वैदिक मन्त्रों के व्याख्यान उपस्थिति करने के कारण ''ब्राह्मण'' नामकरण किया गया। [1]

इस प्रकार वैदिक मन्त्रों या ऋचाओं की व्याख्या करने वाले ग्रन्थों का नाम ''ब्राह्मण'' है। ब्रह्म शब्द का दूसरा अर्थ यज्ञ है, याज्ञिक कर्मकाण्ड की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत होने के कारण भी इन्हें ''ब्राह्मण'' कहते हैं। ''पं0 बलदेव उपाध्याय'' के अनुसार ''ब्राह्मणों में मन्त्रों, कर्मों तथा विनियोगों की व्याख्या है। ब्राह्मणों की अन्तरंग परीक्षा करने पर यह स्पष्ट है कि ब्राह्मण ग्रन्थ यज्ञों की वैज्ञानिक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक मीमांसा प्रस्तुत करने वाला एक महनीय विश्वकोष है। [2]

जैमिनि के अनुसार – '' मन्त्र–भाग से अतिरिक्त शेष वेद–भाग ब्राह्मण है– '' शेषे ब्राह्मण शब्दः। [3]

1– ''ब्रह्मवैमन्त्रः''–शतपथ ब्राह्मण–7/1/1/5

2– पं0 बलदेव उपाध्याय – वैदिक साहित्य और संस्कृति–पृष्ठ–239–240

3– मीमांसासूत्र –2/1/33

आचार्य सायण के अनुसार – जो परम्परा से मन्त्र नहीं है, वे ब्राह्मण हैं तथा जो ब्राह्मण नहीं हैं, वे मन्त्र हैं। मेदिनी कोष के अनुसार वेद–भाग का सूचक ब्राह्मण शब्द नपुंसक ही होता है "ब्राह्मणं ब्रह्मसंघाते वेदभागे नपुंसकम्"। [1]

व्युत्पत्ति की दृष्टि से यह "ब्रह्म" शब्द से 'अण्' प्रत्यय लगकर निष्पन्न हुआ है। इस प्रकार ब्राह्मण वे ग्रन्थ विशेष हैं, जिनमें याज्ञिक दृष्टि से मन्त्रों की विनियोगात्मिका व्याख्या की गयी है। [2]

वास्तव में यज्ञ–विज्ञान का गम्भीर विवेचन करने वाले ग्रन्थ ही 'ब्राह्मण' कहलाते हैं। अनेक वैदिक विद्वान ब्राह्मण ग्रन्थों को भी 'वेद' कहते हैं। 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' अर्थात मन्त्र–भाग तथा ब्राह्मण–भाग का सामूहिक नाम 'वेद' है। शबरस्वामी ने ब्राह्मण ग्रन्थों की विषय सामाग्री को इस प्रकार बतलाया है– 'यज्ञ का विधान क्यों किया जाय, कैसे किया जाय, किन साधनों से किया जाये, इस यज्ञ के अधिकारी कौन है और कौन नहीं, आदि विभिान्न

1– ""ब्राह्मणं ब्रह्मसंघाते वेदभागे नपुंसकम्" – मेदिनीकोश

2– नैरूक्त्यं यस्य मन्त्रस्य विनियोगः प्रयोजनम्

प्रतिष्ठानं विधिश्चैव ब्राह्मणं तदिहोच्यते'। –वाचस्पति मिश्र

विषयों का निर्देश इन ब्राह्मण ग्रन्थों में होता है।[1]

'ब्राह्मणों का रचना काल'

ब्राह्मण साहित्य में कालनिर्णय के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिलता है। भाषा एवं वर्ण्य विषय का तुलनात्मक अध्ययन , अन्य साहित्य में उपलब्ध संकेत तथा ज्योतिष सम्बन्धी प्राप्त संकेत हमें गहन अन्धकार में मार्ग ढूढनें मे प्रकाश के समान सहायता पहुँचाते हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण प्राचीन माने जाते हैं। भारतीय विद्वान श्री भगवतदत्त ब्राह्मण साहित्य को महाभारत कालीन मानते है।[2] शतपथ ब्राह्मण में कहागया है कि ब्राह्मण समस्त देवों का प्रतिनिधि है क्योंकि उनमें समस्त देवों का निवास है।[3] शतपथ ब्राह्मण में जनमेजय परीक्षित द्वारा यज्ञ किये जाने का विवरण मिलता है।[4]

1— हेतुर्निर्वचनं निन्दा प्रशंसा संशयोविधिः।

परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारणकल्पना।

उपमानं दशैते तु विषया ब्राह्मणस्य तु।। — शाबरभाष्य —2/1/8

2— दृष्टव्य — भगवतदत्त — "वैदिक वाङ्मय का इतिहास"

3— शतपथ ब्राह्मण — 12/4/46

4— शतपथ ब्राह्मण — 13 ,5, 4, 1—2

ऐतरेय ब्राह्मण में भी जनमेजय परीक्षित का उल्लेख पाया जाता है। [1]

''महाभारत' में प्राप्त उद्धरण से विदित होता है कि निश्चय ही ब्राह्मण में आयी गाथा का जनमेजय परीक्षित महाभारत काल के पूर्व का था। प्रो0 घाटे महोदय जनमेजय को महाभारत काल का मानते हैं। इस प्रकार शतपथ ब्राह्मण महाभारत काल के बाद की रचना हुई परन्तु अन्य प्रमाणों पर ध्यान देने से पूर्व मत पर ही स्थिति रह सकते हैं कि ब्राह्मण साहित्य महाभारत कालीन रचना है। महाभारत आदि पर्व में उल्लेख मिलता है कि वेदव्यास के सुमन्तु, जैमिनी, पैल और वैशम्पायन ये चार शिष्य थे, इन्हे ही व्यास ने वेद पढ़ाया था। [2]

सामवेद के ब्राह्मण छान्दोग्य के अन्तिम भाग छान्दोग्योपनिषद् में ऐतरेय महिदास का वर्णन आया है। ऐतरेय महिदास ऐतरेय ब्राह्मण के प्रवचनकर्त्ता माने जाते है। जैमिनीयोपनिषद ब्राह्मण में भी ऐतरेय महिदास का उल्लेख आया हुआ है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि उनका भी संकलन महाभारतकाल में हुआ था। [3]

1— ऐतरेय ब्राह्मण — 8, 21

2— महाभारत आदि पर्व —130—132

3— जैमिनीयब्राह्मण — 2 . 113

पाश्चात्य विद्वान प्रो0 मैक्समूलर [1] ने वेदों के रचना पर विचार करते समय चार अवधि में कालविभाजन किया है– (1) छन्दस् काल (2) मंत्र काल (3) ब्राह्मण काल (4) सूत्र काल। प्रो0 मैक्समूलर यह मानकर चलते हैं कि पॉचवीं शती ई0 पूर्व में होने वाले भगवान गौतम बुद्ध के ठीक पूर्व का काल सूत्र काल था। उनकी अवधारणा है कि उपर्युक्त चारों काल में प्रत्येक की अवधि लगभग 200 वर्ष थी। इस गणना से सूत्रकाल छठीं शती ईसा पूर्व, ब्राह्मण काल आठवीं शती ईसा पूर्व, मन्त्र काल दशवीं शती ईसा पूर्व एवं छन्दस् काल बारहवीं शती ईसा पूर्व था। इस दृष्टिकोण से वैदिक मन्त्रों का प्रणयनकाल ईसा पूर्व 1200 था। प्रो0 ए0 ए0 मैक्डानल[2] ने सम्पूर्ण रचना काल को दो भागों में विभक्त किया है – (1) चारों वेदों का रचनाकाल (2) प्राचीन अरण्यकों एवं उपनिषदों सहित ब्राह्मणों का काल। ब्राह्मणों का काल उन्होंने ईसा पूर्व 800 वर्ष एवं ईसा पूर्व 500 वर्ष के बीच का काल माना है।

श्री ए0 सी0 दास ने भूगर्भशास्त्रीय आधार पर वेदों को 2500 वर्ष ईसा पूर्व की कृतियाँ बतलाया है। श्री बी. बी. कामेश्वर ऐय्यर ने अपने निबन्ध 'एज आफ् द ब्राह्मणज' में ब्राह्मणों का रचना काल लगभग ईसा पूर्व वर्ष 2300 एवं ईसा पूर्व वर्ष 2000 के मध्य रखा है। [3]

1– मैक्समूलर – हिस्ट्री आफ् एन्शियन्ट संस्कृत लिट्रेचर, पृष्ठ –497

2– मैक्डानल – हिस्ट्री आफ् संस्कृत लिट्रेचर, पृष्ठ – 29

3– बी0 बी0 कामेश्वर ऐय्यर–'एज आफ् द ब्राह्मणज्' ए0 आई0 ओ0 सी0 1, वाल्यूम– 1 पुनर्मुद्रित क्यू0 जे0 एम0 एस0 12,1922, पृष्ठ–171

श्री प्रबोधचन्द्र सेन गुप्त [1] ने ब्राह्मणों का प्रणयन काल ईसा पूर्व वर्ष 3102 एवं ईसा पूर्व वर्ष 2000 रखा है।

हाग महोदय ने वेदाङ्ग–ज्योतिष का काल 1186 ई0 पू0 निर्धारित किया है और यह सिद्ध किया है कि 1200 ई0 पू0 से 1800 ई0 पूर्व तक ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रणयन हो चुका था। शंकर–बालकृष्ण दीक्षित ने ''भारतीय ज्योतिष शास्त्र'' नामक ग्रन्थ में शतपथ ब्राह्मण का उद्धरण देते हुए लिखा है कि पहले कृत्तिका नक्षत्र पूर्व की ओर दिखाई देता था और आज कुछ उत्तर की ओर दिखाई देता है। यह स्थिति लगभग 2500 ई0 पू0 में थी, और यही समय ब्राह्मण–ग्रन्थों के रचना का था। इस आधार पर ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रणयन का समय 2500 ई0 पू0 में सिद्ध होता है।

याकोबी तथा बालगंगाधर तिलक ज्येतिष गणना के आधार पर यह निश्चित करते हैं कि ब्राह्मण काल में वसन्त –सम्पात कृत्तिका नक्षत्र पर होता था। और कृत्तिका से ही नक्षत्रों की गणना होती थी। तिलक के अनुसार यह स्थिति 2500 ई0 पू0 में थी जबकि वासन्तिक विषुव कृत्तिका नक्षत्र में होता था। अतः विषुव कृत्तिका नक्षत्र में होता था। अतः ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना इसी काल में हुई होगी।

1– प्रबोधचन्द्र सेन गुप्त– 'एज आव् द ब्राह्मणज् ; 'आई0 एच0 क्यू 10, 1934, पृष्ठ 540

याकोबी का कथन है कि विवाह के अवसर पर वर–वधू को ध्रुवतारा दिखाने की प्रथा थी। उस समय ध्रुवतारा अधिक चमकीला और अधिक स्थिर था। यह स्थिति लगभग 2500 ई0 पू0 में थी। इसी समय सूत्र–साहित्य की रचना हुयी होगी और ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना इसके पूर्व में होनी चाहिए। इस प्रकार ज्योतिष गणना के आधार पर ब्राह्मण–ग्रन्थों का रचना काल 3000 ई0 पू0 मानना चाहिए।

यह निःसन्देह सत्य भी है कि जिस तरह वेदों के निर्माण एवं संकलन में शताब्दियॉ लगी हैं, उसी प्रकार ब्राह्मण सहित्य भी सहस्र वर्षों के चिन्तन का परिणाम है। इस बात की पुष्टि हम सामवेद के एक ब्राह्मण में प्राप्त पचास गुरुओं के नामों के उल्लेख से कर सकते हैं। इन गुरुओं की लम्बी परम्परा को एक हजार वर्षों का समय कम से कम दिया ही जा सकता है। वैसे जहॉ तक सन्देह की बात है वह तो वैदिक साहित्य की ऐतिहासिकता पर भी लोग किए हैं परन्तु यह किसी भी स्थित में स्वीकार करने योग्य नहीं है। पुनः हम इन आचार्यों के नामों का वर्णन दूसरे ग्रन्थों में भी देखते हैं। पुराणों में भी इन आचार्यों का नाम मिलता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों के अध्ययन से हम तत्कालिक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं बौद्धिक क्षेत्र के उत्कर्ष का ज्ञान प्राप्त करते हैं, यह उत्कर्ष काल वस्तुतः बौद्धकालीन है क्योकि परवर्ती साहित्य में ब्राह्मणों को अच्छी दृष्टि से कम ही

देखा गया है। सत्य तो यह है कि बौद्ध धर्म ब्राह्मणों के उत्कर्ष के प्रतिक्रियास्वरूप ही था। इस तरह अगर हम ब्राह्मण साहित्य के उदय एवं विकासकाल को 1,000 ई0 पूर्व से 600 ई0 पूर्व तक स्वीकार करें तो अनुपयुक्त न होगा, क्योंकि मैक्समूलर ने बौद्ध साहित्य (500 ई0 पू0) से वैदिक साहित्य को पूर्ववर्ती ठहराया है। अधिकांश पाश्चात्य विद्वानों ने बौद्ध धर्म का उदय इसी समय में माना है। एक बात और यह भी है कि यह वह काल था, जबकि वैदिक साहित्य सर्वांशतः संकलित हो चुका था। उसके उपरान्त ही ब्राह्मण साहित्य का निर्माण माना भी जाना चाहिए।

'ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रतिपाद्य–विषय'

ब्राह्मणों के विषय के बारे में विद्वानों ने अनेक अभिमत प्रस्तुत किये हैं। शबर स्वामी ने मीमांसाभाष्य [1] में ब्राह्मणों के विषय को दस श्रेणियों में विभाजित किया है –

"हेतुर्निर्वचनं निन्दा प्रंशसा संशयो विधिः परक्रिया पुराकल्पः व्यधारणकल्पना।
उपमानं दशै ते तु विधयो ब्राह्मणस्य तु।।"

प्रतिज्ञापरिशिष्ट में कात्यायन ने भिन्न प्रकार से ब्राह्मणों के प्रतिपाद्य विषय के मिलते–जुलते दस भाग माना है –

'विधिर्निन्दाप्रशंसाध्यात्ममधियज्ञमधिदैवतमधिभूतमनुवचनं परकृतिः पुराकल्पः

1– शबर स्वामी मीमांसासूत्रभाष्य, 2, 1, 8

सृष्टिरिति ब्राह्मणम्।' प्रसिद्ध दार्शनिक वाचस्पति मिश्र ने ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रयोजन निर्वचन, मन्त्रों का विनियोग, प्रतिष्ठान (अर्थवाद) तथा विधि माना है।[1]

ब्राह्मणग्रन्थों के प्रमुख प्रतिपाद्य विषय विधि एवं अर्थवाद है। विधि ही कर्म में प्रवृत्त करती है। सायण के अनुसार विधियाँ दो होती हैं –

(1) अप्रवृत्तप्रवर्तक (2) अज्ञातज्ञापक। कर्मकाण्ड से सम्बद्ध विधियाँ अप्रवृत्त में प्रवर्तन कराती हैं। जबकि ज्ञान अथवा ब्रह्मणकाण्ड से सम्बद्ध विधियाँ अज्ञात का ज्ञान कराती हैं। विधि से अविशिष्ट भाग को अर्थवाद कहा जाता है– " ब्राह्मणशेषोऽर्थवादः।' अर्थवाद का उद्देश्य है विधि का स्तवन। अर्थवाद के चार भेद हैं – (1) निन्दा (2) प्रशंसा (3) परकृति तथा (4) पुराकल्प।

शतपथब्राह्मण के अन्तिम भाग बृहदारण्यकोपनिषद् में किये गये विभाजन के अनुसार इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, अनुव्याख्यान तथा व्याख्यान विषय वर्णित है। [2]

1– "नैरुक्त्यं यस्य मन्त्रस्य विनियोगः प्रयोजनम्।

प्रतिष्ठानं विधिश्चैव ब्राह्मणं तदिहोच्यते।। "

'वाचस्पति मिश्र' वैदिक साहित्य (उपाध्याय) पृष्ठ – 175

2– 'इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाःसूत्राणि अनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि।'

बृहदा० उप० 2, 4, 10 शांकर भाष्य

शाबर–भाष्य में ब्राह्मणों के प्रतिपाद्य विषय के रुप में हेतु, निर्वचन, निन्दा प्रशंसा, संशय, विधि, परिक्रिया, पुराकल्प, व्यवधारण–कल्पना तथा उपमान इन दस विधियों का उल्लेख है। परन्तु इनमें विधि, विनियोग, हेतु, अर्थवाद, निरूक्ति तथा आख्यान की ही प्रधानता है। इनमें से भी 'विधि' सर्वप्रमुख है।

विधि –

विधि के अन्तर्गत यज्ञीय विधियों एवं अनुष्ठानों का निरुपण है। जैसे– 'ताण्ड्यब्राह्मण' में 'बहिष् पवमान' के लिए अध्वर्यु, प्रस्तोता, उद्गाता, प्रतिहर्त्ता और ब्रह्मा इन पॉच ऋत्विजों के प्रसर्पण का विधान है। इनमें क्रमशः एक को दूसरे के पीछे पंक्ति में चलने का नियम है और नियम के टूट जाने पर हानि होने की सम्भावना बनी रहती है।

'शतपथब्राह्मण' में यज्ञीय विधि–विधानों का भण्डार है।

विनियोग –

ब्राह्मणों में मन्त्रों के विनियोग का भी विधान बताया गया है। विनियोग में 'किस मन्त्र का प्रयोग किस उद्देश्य की सिद्धि के लिए किया जाय' इसका सयुक्तिक विवेचन होता है। जैसे 'आ नो मित्रावरूणा' इस मन्त्र के गायन का विनियोग दीर्धरोगी की रोगनिवृत्ति के लिए है, क्योंकि मित्र दिन के देवता होने से प्राण के प्रतीक माने गये है और वरुण रात्रि के देवता होने से अपान के प्रतीक

माने गये हैं। अतः दीर्घरोगी के शरीर में मित्रावरुण के रहने की प्रार्थना शरीर में प्राणाधान वायु के धारण का संकेत है। अतः यह विनियोग सयुक्तिक है।[1]

हेतु –

कर्मकाण्ड में विशेष विधियों के लिए जो कारण बताये जाते हैं उन्हें 'हेतु' कहते हैं। ब्राह्मणों में यज्ञीय विधि – विधान के लिए समुचित एवं योग्य कारणों का निर्देश है। जैसे– अग्निष्टोम याग में उद्गाता मण्डप में उदुम्बर वृक्ष की शाखा का उच्छ्रयण करता है। इसका कारण है कि 'प्रजापति ने देवों के लिए ऊर्ज का विभाग किया, उसी से उदुम्बर वृक्ष की उत्पत्ति हुई, अतः उदुम्बर का देवता प्रजापति माना गया है और उद्गाता का सम्बन्ध प्रजापति से है अतः उद्गाता उदुम्बर की शाखा का उच्छ्रयण करता है।[2]

अर्थवाद –

अर्थवाद में उपाख्यानों एवं प्रशंसात्मक कथाओं के द्वारा यज्ञीय प्रयोगों का महत्त्व प्रतिपादित किया जाता है। किस यज्ञ–विशेष के लिए किन–किन विधियों की आवश्यकता होती है और उससे किस फल की प्राप्ति होती है? इन विषयों का निर्देश अर्थवाद के अन्तर्गत आता है। इसके अतिरिक्त यज्ञ में निषिद्ध पदार्थों

1– 'ताण्ड्यब्राह्मण 6/10/4–5

2– 'ताण्ड्यब्रांह्मण 6/4/1

की निन्दा तथा विधियों, अनुष्ठानों एवं देवों की प्रशंसापरक वाक्य भी अर्थवाद की परिधि में आते हैं। जैसे यज्ञ में माष का प्रयोग वर्जित है अतः उसकी निन्दा की गयी है – 'अमेध्या वै माषा।' [1] इसी प्रकार 'ताण्ड्यब्राह्मण' में अग्निष्टोम को सब यज्ञों में श्रेष्ठ एवं उपादेय बताया गया है। [2] इस प्रकार के अनेक प्रंशसा वचन ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं।

निर्वचन –

ब्राह्मणों में स्थान–स्थान पर शब्दों के निर्वचन का भी निर्देश दिया गया है जो भाषाशास्त्र की दृष्टि से अत्यन्त उपादेय है। जैसे– 'उदक' शब्द का निर्वचन इस प्रकार किया गया है – 'उदानिषुर्महीरिति तस्मादुदकमुच्यते।'' [3] शब्दों के निर्वचन से अर्थों के मौलिक स्वरूप को समझने में सहायता मिलती है।

आख्यान –

ब्राह्मण में अनेक रोचक एवं महत्त्वपूर्ण आख्यान मिलते हैं जिनका उद्देश्य विधि–विधानों के स्वरूप की व्याख्या करना है। ये आख्यान यज्ञीय कर्मकाण्डों के हेतु आदि विधियों की स्पष्ट व्याख्या करते हैं किन्तु कभी–कभी इन आख्यानों में बहुत सी महत्त्वपूर्ण बातें मिल जाती हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों को सरस एवं सुरूचिपूर्ण

1– 'ताण्ड्यब्राह्मण 5/1/8/1

2– 'ताण्ड्यब्राह्मण 6/3/8–9

3– अथर्ववेद– 3/13/1

बनाने में इन आख्यानों का विशेष योगदान है। ये आख्यान (1) स्वल्पकाय तथा (2) दीर्धकाय भेद से दो प्रकार के हैं। स्वल्पकाय आख्यानों मे उन कथाओं की गणना है, जो सद्यः विधि की सयुक्तिकता प्रदर्शित करते हैं। जैसे–यज्ञदेव का अश्वरूप में भागना तथा वाक् देवताओं का परित्याग इत्यादि। दीर्धकाय आख्यानों में–पूरुरवा–उर्वशी; शुनः शेष इत्यदि के आख्यान सम्मिलित हैं।

उपर्युक्त प्रतिपाद्य विषयों की समीक्षा करने से यह प्रतीत होता है कि ब्राह्मणग्रन्थों मे जो कुछ भी वर्णित है, चाहे वह प्रमुख प्रतिपाद्य हो या गौण–सभी का अभिधान इन अभिमतों में कर दिया गया है। निन्दा, प्रशंसा, संशय, कल्पना, उपमानादि विषय स्वयं में कोई वर्ण्य–विषय नहीं हो सकते। किसी भी वस्तु या तत्त्व के प्रतिपादन में ये शैली के रुप में समझे जा सकते हैं जो प्रधान विषय के मात्र अनुषंगिक विषय बनकर आते है। इन अभिमातों का एक मात्र तात्पर्य यह प्रतीत होता है कि ब्राह्मणग्रन्थों में विधि, समालोचना, व्युत्पत्ति निर्धारण, तर्कशास्त्र, इतिहास, पुराण, आख्यानोपाख्यान तथा अर्थवाद आधारभूत वर्ण्य विषय है। इनमें विधि तथा अर्थवाद ही मूलभूत अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय है, शेष का वर्णन अनुषंगिक रुप में किया गया है। यज्ञों की अनुष्ठान विधि का सम्पूर्ण चित्र ब्राह्मण साहित्य में मिलता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि यज्ञों का वास्तविक स्वरुप, अभिप्राय, रहस्य एवं उनकी प्रतिकात्मकता ब्राह्मण साहित्य के वर्ण्य विषय बने।

‘उपलब्ध तथा अनुपलब्ध ब्राह्मण’

ब्राह्मण साहित्य बड़ा ही विशाल था, परन्तु आज अनेक काल –कवलित हो गये हैं, केवल उनका नाम तथा उद्धरण ही श्रौत ग्रन्थों में पाये जाते हैं। वैदिक वाङ्मय में उल्लिखित ब्रह्मण ग्रन्थों की संख्या बहुत बड़ी प्रतीत होती है परन्तु आजकल सब उपलब्ध नहीं है। प्रत्येक वेद में ऋषि परम्परानुसार अनेक सम्प्रदाय बने, प्रत्येक सम्प्रदाय अथवा शाखा के अपने संहिता, ब्राह्मण, अरण्यक इत्यादि ग्रन्थ बने। यही कारण भी है कि ब्राह्मण ग्रन्थों की संख्या अत्यधिक है। यह भी है कि वैदिक साहित्य का कितना अंश तो ऐसा है जो सही अर्थों में ब्राह्मण न होते हुए भी ब्राह्मण कहा जाता है। जैसे– सामवेद से सम्बद्ध ब्राह्मणों में –सामविधान, वंश, आर्षेय, संहितोपनिषद् और अथर्वेद के गोपथ ब्राह्मण का नाम लिया जाता है। वास्तव में ये ब्राह्मण न होकर – वेदांग अधिक प्रतीत होते हैं।

प्राचीन काल में चारों वेदों की कुल 1130 संहिताएं थी तथा प्रत्येक शाखा का अपना एक ब्राह्मण ग्रन्थ था। चरणव्यूह के मतानुसार–ब्राह्मणों की कुल

संख्या 1103 थी।[1] मैक्समूलर की यह धारणा[2] है कि सम्भवतः सूत्रकाल (नवीन काल) ये ब्राह्मण ग्रन्थ लुप्त हो गये।

पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी के मतानुसार 1130 ब्राह्मण ग्रन्थों में से आज केवल 18 ब्राह्मण ग्रन्थ उपलब्ध हैं।[3] आज तक उपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थ निम्नलिखित हैं–

	ब्राह्मण ग्रन्थ का नाम	संहिता शाखा
1	ऐतरेय ब्राह्मण	ऋग्वेदीय
2	कौषीतकि अथवा शांखायन ब्राह्मण	"
3	शतपथ ब्राह्मण	यजुर्वेदीय
4	तैत्तिरीय ब्राह्मण	"
5	ताण्ड्य महाब्राह्मण (पंचविंष्)	सामवेदीय
6	षड्विंश ब्राह्मण	"

1– '''ऋग्वेदस्य अष्टौ यजुर्वेदस्य षडशीतिः वेदा भवन्ति।
सामवेदस्य किल सहस्रभेदाः अथर्ववेदस्य च नौ भेदाः भवन्ति।–चरणव्यूह, खण्ड – 1–4

2– 'हिस्ट्री आफ एन्शियेन्ट संस्कृत लिट्रेचर' – मैक्समूलर पृ0 329

3– श्री रामगोविन्द त्रिवेदी– 'वैदिक साहित्य''– प्रथम संस्करण–पृष्ठ–139

7	सामविधान ब्राह्मण	''
8	आर्षेय ब्राह्मण	''
9	देवताध्याय अथवा दैवतब्राह्मण	''
10	उपनिषद् ब्राह्मण	''
11	संहितोपनिषद् ब्राह्मण	''
12	वंश ब्राह्मण	''
13	जैमिनीय ब्राह्मण	''
14	गोपथ ब्राह्मण	अथर्वेदीय

उपलब्ध ब्राह्मणों का सक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

ऋग्वेदीय ब्राह्मण –

ऋग्वेद से सम्बन्ध ब्राह्मणों मे से केवल दो ब्राह्मण ग्रन्थ उपलब्ध हैं। ये हैं 'ऐतरेय एवं ' कौषीतकि' अथवा शांखायन'।

ऐतरेय ब्राह्मण–

यह ऋग्वेद का प्रथम ब्राह्मण ग्रन्थ है। इसमें 40 अध्याय हैं और प्रत्येक पॉच अध्यायों की एक पंचिका और प्रत्येक अध्याय में कण्डिकाएँ हैं। इस प्रकार कुल आठ पंचिका, चालीस अध्याय और 285 कण्डिकाएँ हैं इसके रचयिता महिदास माने जाते है। उन्हीं के नाम पर ही इस ब्राह्मण का नामकरण हुआ है।

कीथ [1] महोदय इस पंचिका को प्रक्षिप्त मानते हैं। मैक्डानेल [2] महोदयानुसार ऐतरेय ब्राह्मण की अन्तिम तीन पंचिकाएँ पहली पॉच पंचिकाओं की अपेक्षा बाद की रचनाएँ हैं। भारतीय विद्वान मंगवद्रुत [3] का विचार इससे भिन्न है, उनके विचार से ऐतरेय महिदास अन्य ब्राह्मण के प्रवचनकर्ताओं के समान प्राचीन परम्परागत साम ग्री में बहुतकम हस्तक्षेप करता था।

ऐतरेय ब्राह्मण का मुख्य भाग सोमयाग से सम्बन्ध रखता है। इसके प्रथम और द्वितीय पंचिका में एक दिन में सम्पन्न होने वाले 'अग्निष्टोम' नामक सोमयाग में होतृ के विधि–विधानों एवं कर्त्तव्यों का वर्णन है। तृतीय एवं चतुर्थ पंचिका में प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन, सायं सवन विधि के साथ अग्निहोत्रका प्रयोग बताया गया है। साथ ही अग्निष्टोम की विकृतियों उक्थ, अतिरात्र और षोडशी नामक यागों का संक्षिप्त विवेचन है। पंचम में द्वादशाह यागों तथा षष्ठ पंचिका में सप्ताहों तक चलने वाले सोमयागों एवं उनके होता तथा सहायक ऋत्विजों के कार्यो का विवेचन है। सप्तम पंचिका में राजसूय यज्ञ तथा शुनः शेष का आख्यान वर्णित है। अष्टम पंचिका में ऐतिहासिक विवरण है। इसमें प्रथम 'ऐन्द्र महाभिषेक' तदनन्तर चक्रवर्ती नरेशों के अभिषेक का चित्रण है।

1– ऋग्वेदीय ब्राह्मण– पृष्ठ 24–कीथ

2– ए हिस्ट्री आफ दि लिट्रेचर–पृष्ठ 191 –मैक्डानेल

3– वैदिक वाङ्मय का इतिहास पृष्ठ संख्या–6 मंगवद्दत।

ऐतरेय ब्राह्मण में इन्द्र को सब देवों में श्रेष्ठ बताया गया है। वह सबसे अधिक शक्तिशाली और साहसी है और दूरतक पार लगाने वाला है। 1 ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि अन्न ही प्राण है, वस्त्र ही परिरक्षा है, सुवर्ण ही सौन्दर्य है, पशुप्राप्ति का साधन विवाह है, पत्नी मित्र है, दुहिता ही दरिद्रता है और पुत्र ही आकाश की ज्योति है। [2]

कौषीतकि ब्राह्मण –

ऋग्वेद से सम्बद्ध दूसरा ब्राह्मण कौषीतकि अथवा शांखायन है। यह शांखायन शाखा का ब्राह्मण है इसलिए इसे शांखायन ब्राह्मण कहते हैं। कौषीतकि ब्राह्मण का प्रथम सम्पादन 1887 ई0 में लिण्डनर ने किया था। तदनन्तर 1920 ई0 में ए0 बी0 कीथ ने अंग्रेजी अनुवाद के साथ इसका प्रकाशन किया था। [3]

1– स वै देवानामोंजिष्ठो वलिष्ठः सहिष्ठः सत्तमः पारयिष्णुतमः (ऐतरेय ब्राह्मण 7/16)

2– ऐतरेय ब्राह्मण 7/13/4–6, 8

अन्नं हि प्राणाः शरणं ह वासो रूपं हिरण्यं पशवो विवाहाः।

सखा ह जाया कृपणं ह दुहिता ज्योतिहं पुत्रः परमे व्योमन्।।

3– भारतीय साहित्य का इतिहास पृष्ठ 140

कौषतकि ब्राह्मण में तीस अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में पाँच से लेकर 17 खण्ड हैं। कुल खण्डो की संख्या 226 है। प्रथम 6 अध्यायों में पाकयज्ञ अर्थात् अग्निहोत्र, अग्न्याधान, दर्शपौर्णमास और ऋतुयज्ञ का वर्णन है। 7 से 30 अध्याय में सोमयाग का वर्णन है। अन्तिभअध्याय में चातुर्मास्य का वर्णन है किन्तु सोम याग प्रधान विषय हैं इसका प्रतिपाद्य विषय ऐतरेय ब्राह्मण के समान है। ऐतरेय ब्राह्मण का मुख्य भाग सोमयाग से सम्बन्ध रखता है अतः इस ग्रन्थ में भी सोमयाग ही प्रधान विषय है। कौषीतकि ब्राह्मण ऐतरेय ब्राह्मण से परवर्ती प्रतीत होता है किन्तु ऐतरेय ब्राह्मण किसी एक काल की किसी एक व्यक्ति की रचना नहीं है जबकि कौषीतकि ब्राह्मण एक व्यक्ति की रचना प्रतीत होती है। सप्तम अध्याय में विष्णु को उच्चकोटि का देवता माना गया है। इसके षष्ठ अध्याय में शिव के ईशान, महादेव, रूद्र, पशुपति, भव आदि नामों का उल्लेख है। इसके तृतीय अध्याय में शुनः शेष का आख्यान वर्णित है। इसका प्रधान प्रवक्ता कौषीतकि ऋषि था।

यजुर्वेदीय ब्राह्मण –

यजुर्वेद के दो भेद हैं– शुक्ल और कृष्ण। दोनों ही शाखाओं से सम्बन्धित ब्राह्मण उपलब्ध है। शुक्ल यजुर्वेद से सम्बन्धित शतपथ ब्राह्मण सबसे

अधिक विस्तृत तथा यज्ञानुष्ठान का प्रतिपादक ग्रन्थ है। शुक्ल यजुर्वेद की दोनो शाखाओं –माध्यन्दिन तथा काण्व शाखाओं में यह ब्राह्मण उपलब्ध है। माध्यन्दिन शतपथ की काण्डों की संख्या 14, अध्याय 100, प्रपाठक 68, ब्राह्मण 438 तथा कण्डिकाएं 7624 है। काण्व शतपथ में प्रपाठक नामक उपखण्ड का अभाव है। इसमें काण्ड–17, अध्याय 104, ब्राह्मण 435 और कण्डिकाएं 6806 हैं।

तैत्तिरीय ब्राह्मण –

कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का यह एक मात्र उपलब्ध महत्त्वपूर्ण ब्राह्मण ग्रन्थ है। इस पर सायण का भाष्य भी मिलता है। इसके अतिरिक्त भट्ट–भाष्कर का अधूरा भाष्य भी उपलब्ध है। इसका प्रकाशन कलकत्त से 1890 ई0 तथा पूना से 1899 ई0 में हुआ था। इसके संकलनकर्ता वैशम्पायन के शिष्य तित्तिर थे। इस ग्रन्थ में मंत्रों का बाहुल्य है। सम्पूर्ण ग्रन्थ तीन काण्डों में विभक्त है। प्रथम दो काण्डों में आठ–आठ अध्याय हैं जो 'प्रपाठक' कहलाते हैं। तृतीय काण्ड में 12 अध्याय है। इसका अवान्तर भाग अनुवाकों की संज्ञा से अभिहित है। प्रथम काण्ड में अग्न्याधान, गवामयन, वाजपेय, नक्षत्रेष्टि तथा राजसूय यागों का वर्णन किया गया है। द्वितीय काण्ड में अग्निहोत्र, उपहोम, सौत्रामणि, वृहस्पतिसव और वैश्वसव आदि विविध सत्रों का वर्णन मिलता है। यागानुष्ठानों में उपयुक्त होने वाले ऋग्वेद के मंत्रों का निर्देश किया गया है।

इस ब्राह्मण के अनुसार प्रजापति ने सोम लता एवं तीन वेद प्रकट किये थे। सोम ने तीनों वेदों को मुट्ठी में छिपा लिया। प्रजापति ने स्थागर नामक औषधि को पीसकर अपनी दूसरी कन्या सावित्री के ललाट पर लगा दिया। इस पर सोम ने तीनों वेदों को सावित्री को दे दिया। [1] इस ग्रन्थ में वर्णाश्रम कत्तव्यों का सुन्दर वर्णन है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में ऋग्वेद के कुछ प्रश्नों का उत्तर वर्णित मिलता है। उपनिषदों में वर्णित दार्शनिक महत्त्व के विषय भी यहाँ वर्णित मिलते हैं, किन्तु इन सभी वर्णनों की उपादेयता के पीछे यज्ञ विधान ही प्रमुख है। तृतीय काण्ड में नक्षत्रेष्टि का वर्णन किया गया है। तृतीय काण्ड के चतुर्थ प्रपाठक में 'पुरुषमेघ' के पशुओं का अभिधान है। इस काण्ड के अन्तिम तीन प्रपाठक 'काठक' के अभिधान से यजुर्वेदियों द्वारा अभिहित किए जाते है। आचार्य पं0 बलदेव उपाध्याय के मतानुसार [2] सम्भवतः यह काठक शास्त्रीय ब्राह्मण का अंश रहा हो तथा किसी उद्देश्य–विशेष से यहाँ संग्रहीत किया गया हो।

इसमें सामवेद को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इसमें भी यज्ञों का विशद विवेचन किया गया है। यह ब्राह्मण ग्रन्थ पुराणों के लिए उपजीव्य एवं आकर

1– तैत्तिरीय ब्राह्मण – 2, 3, 10

2– आचार्य बलदेव उपाध्याय 'वैदिक साहित्य एवं संस्कृति' पृष्ठ 207

स्रोत सिद्ध हुआ है, क्योंकि पुराणों के अनेक आख्यानोंपाख्यान एवं इतर वर्ण वस्तु यहीं से प्रेरणा प्राप्त हैं। 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' में अनेक कथाएं वर्णित हैं जैसे–अहिल्या, शुनः शेष, नचिकेता, प्रजापति कन्यायें तथा सोम कथा आदि। इनमें शुनः शेष कथा अतिमहत्त्वपूर्ण है। यम और नचिकेता की कथा का वर्णन अत्यन्त विषद एवं व्यापक ढंग से किया गया है।

शतपथ ब्राह्मण–

शुक्लयजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण विशालकाय होने तथा अपने विषय बाहुल्य के कारण अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। ए०बी० कीथ एवं ओल्डेन वर्ग के अनुसार यह ब्राह्मण अति प्राचीन है जबकि मैक्डानल इसकी भाषा एवं शैली के आधार पर इसे इतना प्राचीन नहीं बतलाते है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रायेण इसमें सौ अध्याय होने के कारण ही इसका नाम 'शतपथ ब्राह्मण पड़ा होगा।[1] कतिपय विद्वानों का कथन है कि चूकि इस ग्रन्थ में पहले **66** ही अध्याय थे जिसमें **34** अध्याय बाद में जोड़े गये और उनकी भाषा शैली अपेक्षाकृत आधुनिक दिखाई देती है, अतएव इसका नामकरण बाद में हुआ होगा। शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी अथवा माध्यन्दिन एवं काण्व दोनों ही शाखाओं के पृथक्–पृथक् शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ उपलब्ध हैं। वाजसनेयी अथवा माध्यान्दिन एवं काण्व दोनों

---

1. ए० ए० मैक्डानल, 'अ हिस्ट्री आव् संस्कृत लिट्रेचर–पृ० **212**

शाखाओं के ब्राह्मण ग्रन्थों में विषयवस्तुगत साम्य दिखाई देता है, किन्तु वर्णनक्रमादि एवं अध्यायों में कुछ न्यूनाधिक्य के कारण भिन्नता भी है। प्रो वेबर के मतानुसार "माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण में 14 काण्ड, 100 अध्याय, 68 प्रपाठक, 438 ब्राह्मण एवं 7624 कण्डिकाएं हैं। [1] तथा काण्व शतपथ ब्राह्मण में 17 काण्ड, 104 अध्याय, 435 ब्राह्मण और 6806 कण्डिकाएं हैं।

शतपथ ब्राह्मण के प्रथम काण्ड में दर्शपूर्णमास इष्टियों का वर्णन है। दर्श इष्टि प्रत्येक अमावस्या के अनन्तर प्रतिपद् में सम्पन्न होती थी और पूर्णमास ईष्टि पूर्णिमा के द्वितीय दिन प्रतिपद में सम्पन्न होती थी। द्वितीय काण्ड में अग्निहोत्र, पिण्डपितृयज्ञ, अग्रायण और चातुर्मास्य का वर्णन है। तृतीय और चतुर्थ काण्ड में सोमयाग का विधान वर्णित है। अग्निष्टोम सोम याग का प्रकृति भूत याग है और ज्योतिष्टोम आदि विकृतियाग है। प्रकृतियाग का वर्णन तृतीय काण्ड में और विकृतियाग का वर्णन चतुर्थ काण्ड में हुआ है। पंचम काण्ड में राजसूय और सोमयाग का वर्णन है। राजसूय याग एक महत्त्वपूर्ण याग माना जाता था जिसका सम्पादन अभिषिक्त राजा ही करता था।

षष्ठ काण्ड से लेकर दशम् काण्ड तक अग्नि चयन का वर्णन है। इन काण्डो में शाडिल्य का प्रामाण्य स्वीकृत है, याज्ञवल्य का तो नामोल्लेख तक नहीं

1– वेबर– 'हिस्ट्री ऑव् इण्डियन लिट्रेचर' थर्ड एडिशन, लन्दन 1892, पृष्ठ 117

है। एकादश से चतुर्दश काण्ड तक परिशिष्ट के रूप में वर्णन हैं। एकादश काण्ड में दर्शपूर्ण मास, पंचमहायज्ञ तथा पशुबन्ध के अवशिष्ट विधानों का वर्णन है। द्वादश काण्ड में द्वादशसत्र, सम्वत्सरसत्र सौत्रामणि अन्येष्टि आदि का विस्तृत विवेचन है। त्रयोदशकाण्ड में अश्वमेघ, नरमेघ, सर्वमेघ और पितृमेघ का वर्णन है। अभिषिक्त राजा ही सर्वमेघ यज्ञ कर सकता था। चतुर्दश काण्ड में 'प्रवर्ग्य' अनुष्ठान का वर्णन है। अन्तिम पॉच अध्याय बृहदारण्यकोपनिषद् है।

माध्यन्दिन शाखा के 'शतपथ ब्राह्मण' का अंग्रेजी अनुवाद जूलियस एगलिंग ने किया था। जू0 एगलिंग ने काण्व शाखा के 'शतपथ ब्राह्मण' में आये अनेक स्थलों पर सुस्पष्ट टिप्पणियॉ देते हुए सुन्दर प्रकाशन किया है। प्रो0 एलबर्ट वेबर ने सायण भाष्य तथा दो टीकाओं के साथ 1855 में इसे सम्पादित किया था। डब्ल्यू कैलेण्ड ने काण्व 'शतपथब्राह्मण' को 1928 ई0 में प्रकाशित किया था।

वैदिक धर्म एवं दर्शन की स्थापना आध्यात्मिक, चिन्तन, ईश्वरोपासना, सृष्टि विवेचनादि विषय जितने प्रमाणिक रूप से 'शतपथ ब्राह्मण' में प्रतिपादित किये गये हैं, उतने अन्य ब्राह्मणों में नहीं। रोचक प्राचीन कथाओं, ऐतिहासिक तथ्यों, भौगोलिक वर्णन एवं प्रचीन राजाओं आदि के आख्यानों नें बाद में लौकिक साहित्य के लिए अक्षय्य वर्णन साम ग्री प्रदान किया है। अपने इसी उदात्त एवं व्यापक वस्तु कलेवर के कारण यह ग्रन्थ विश्व का एक स्पृहणीय एवं महान् ग्रन्थ बन गया है।

सामवेदीय ब्राह्मण –

अन्य वेदों की अपेक्षा सामवेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों की संख्या सर्वाधिक है। सामवेद की दो शाखाएं हैं– एक ताण्डिशखा और दूसरी तवल्कार या जैमिनि शाखा। सायण के मतानुसार सामवेद के आठ ब्राह्मण ग्रन्थ हैं– ताण्ड्य, षड्विंश, सामविधि अथवा सामविधान, आर्षेय, देवताध्याय अथवा दैवत, उपनिषद्, संहितोपनिषद् तथा वंश ब्राह्मण। 'काशिका' में सामवेदीय माल्लवि, कालवव्रि, शैरुकि, शाट्यायन तथा पैंग्य आदि महाब्राह्मण ग्रन्थों का नामोल्लेख मिलता है। ये ब्राह्मणग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं सके हैं। इनके उद्धरण अवश्य मिलते हैं। इनकी विषय सामग्री की समता को देखकर आचार्य पं0 बलदेव उपाध्याय का अभिमत है कि सम्भवतः इनमें से अनेक ब्राह्मण एक ही बड़े साम ब्राह्मण के विधि भाग थे जो आज स्वतंत्र रूप से उपलब्ध मिलते है। [1] सम्प्रति उपलब्ध सामवेदीय ब्राह्मणों का अतिसंक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है। इसका विस्तृत विवेचन द्वितीय अध्याय के 'सामवेदीय ब्राह्मण का परिचय' में दिया जायेगा क्योकि शोध का विषय सामवेदीय ब्राह्मण के ऊपर ही है।

ताण्ड्य ब्राह्मण–

ताण्डि शाखा से सम्बद्ध होने के कारण इसका नाम 'ताण्ड्य ब्राह्मण' है।

1– आचार्य बलदेव उपाध्याय 'वैदिक साहित्य एवं संस्कृति' –पृष्ठ–209

25 अध्यायों में विभक्त होने के कारण इसे 'पंचविंश ब्राह्मण' भी कहते हैं। सामवेद के ब्राह्मणों में प्रधान तथा विशालकाय होने के कारण इसे 'पौढ़–ब्राह्मण' तथा 'महाब्राह्मण' भी कहते है। यह विशेषतः सोमयाग से सम्बद्ध हैं। एक दिन से लेकर वर्षों तक चलने वाली यज्ञों की इसमें चर्चा पाई जाती है।

षड्विंश ब्राह्मण –

इस ब्राह्मण को कुछ विद्वान 'ताण्ड्य ब्राह्मण' का अंग स्वीकार करते हैं। इसके अन्तिम अध्यायों को 'अद्भुत ब्राह्मण' कहा जाता है, जिसमें इन्द्रजाल तथा अन्य अलौकिक घटनाओं का उल्लेख है। देवताओं के ' रूदन' तथा 'हास्य का भी संकेत इसमें यत्र–तत्र प्राप्त होता है।

सामविधान ब्राह्मण –

सामविधान ब्राह्मण सामवेद का अन्यतम ब्राह्मण है। इसकी विषय–सामग्री अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित विषय–सामग्री से सर्वथा भिन्न है। यज्ञ, कर्म–काण्डों के स्थान पर इस ग्रन्थ में जादू–टोना, शत्रु–उच्चाटन तथा उपद्रवों को शान्त करने आदि विषयों का भी प्रतिपादन किया है।

आर्षेय ब्राह्मण –

इस ब्राह्मण में कुल तीन प्रपाठक 82 खण्ड हें। इसमें विशेष रूप से साम के उद्भावक ऋषियों का वर्णन है।

1– आचार्य बलदेव उपाध्याय 'वैदिक सात्यि एवं संस्कृति' –पृष्ठ–209

देवताध्याय अथवा दैवतब्राह्मण –

'देवताध्याय–ब्राह्मण अथवा ''दैवत ब्राह्मण''सामवेदीय ब्राह्मणों में अतिलघुकाय ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में कुल तीन खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में 26, द्वितीय खण्ड में 11 और तृतीय खण्ड में 25 कण्डिकाएं हें। इस ग्रन्थ में छन्दों का विशिष्ट रूप से प्रतिपादन किया है।

उपनिषद् ब्राह्मण –

'उपनिषद् ब्राह्मण' दो ग्रन्थों का मिश्रित नाम है। प्रथम ग्रन्थ 'छान्दोग्य ब्राह्मण' अथवा 'मन्त्र ब्राह्मण' के नाम से जाना जाता है। इस ब्राह्मण का विषय गृह्य सूत्रों में प्रयुक्त मन्त्रों को संकलित करना है। दूसरा ग्रन्थ 'छान्दोग्य उपनिषद्' है। इसमें उपनिषद् सम्बन्धी विषयों का विस्तृत विवेचन है।

संहितोपनिषद् ब्राह्मण –

साम मन्त्रों के गूढ़ रहस्यों काप्रतिपादन करने वाला यह ब्राह्मण ग्रन्थ एक विशिष्ट ग्रन्थ है। इसमें एक प्रपाठक है जो पॉच खण्डों में विभक्त है। इसमें सामवेद के विभिन्न सूत्र तथा सामतंत्र आदि उपन्यस्त हैं। सामगानों का विवेचन अति वैज्ञानिक दृष्टि से किया गया है।

वंश ब्राह्मण –

वंश ब्राह्मण सामवेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों में सर्वाधिक लघुकाय ग्रन्थ हैं। यह

ग्रन्थ तीन खण्डों में विभक्त हैं। इसमें सामवेदीय ऋषियों की वंश परम्परा का विवरण अंकित है।

जैमिनीय ब्राह्मण –

सामवेद की जैमिनीय शाखा के इस ब्राह्मण का दूसरा नाम तवल्कार ब्राह्मण है। इस ब्राह्मण में कुल पॉच अध्याय है। प्रथम तीन अध्यायों में यज्ञीय विधि का वर्णन है। चतुर्थ अध्याय 'उपनिषद् ब्राह्मण' है। पंचम अध्याय 'आर्षेय ब्राह्मण' हैं।

अथर्ववेदीय ब्राह्मण

गोपथ ब्राह्मण –

अथर्ववेद से सम्बद्ध मात्र एक ही ब्राह्मण उपलब्ध है जो गोपथ ब्राह्मण हैं। इस ब्राह्मण के रचयिता 'गोपथ' ऋषि हैं क्योंकि अथर्ववेद के ऋषियों की नामावली में गोपथ ऋषि का नाम आया है। गोपथ ब्राह्मण के दो भाग हैं– पूर्व गोपथ और उत्तर गोपथ। पूर्व गोपथ मे पॉच प्रपाठक या अध्याय है और उत्तर गोपथ में छः प्रपाठक या अध्याय है। प्रत्येक प्रपाठकों में कई कण्डिकाएं हैं। कुल 258 कण्डिकाएं हैं। इस ब्राह्मण ग्रन्थ में पूर्व में 100 प्रपाठक रहे। यह संख्या बाद में न्यून हो गयी। [1]

1– आथर्वण परिशिष्ट 49, 4, 5– 'तत्र गोपथाः शत प्रपाठकं ब्राह्मणामासीत्। तस्यावशिष्टे द्वे ब्राह्मणे पूर्वमुत्तरंजयति'।

प्रायः यह सर्वमान्य मत रहा है कि गोपथ ब्राह्मण अत्यन्त अर्वाचीन रचना है, क्योंकि इसके अध्ययन से यह लगता है कि यह ग्रन्थ अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों उदाहारणार्थ ऐतरेय, तैत्तिरीय तथा शतपथ ब्राह्मण से बहुत कुछ प्रभावित है।

गोपथ ब्राह्मण अथर्ववेद का एक मात्र ब्राह्मण होने से इसमें अथर्ववेद का महत्त्व वर्णित किया गया है। इसका महत्त्व इसलिए और बढ़ गया है कि इसमें अथर्ववेद से ही तीनों वेदों एवं ओऽम् की उत्पत्ति बतायी गयी है और ओऽम् से समस्त संसार की उत्पत्ति वर्णित है। पूर्व गोपथ ब्राह्मण के प्रथम प्रपाठक में ओऽम् तथा गायत्री का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। द्वितीय प्रपाठक में ब्रह्मचारी के नियमों का प्रतिपादन है और यह बताया गया है कि प्रत्येक वेद के लिये बारह वर्ष समय होना चाहिए। तृतीय एवं चतुर्थ प्रपाठको में ऋत्विजों के कार्यकलाप एवं दीक्षा का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। पंचम प्रपाठक में संवत्सरसत्र, अश्वमेघ, नरमेघ, अग्निष्टोम आदि प्रसिद्ध यज्ञों का विवेचन है। इसमें किसी भी अनुष्ठान के पूर्व करणीय कृत्यों यथा आचमन, मंत्रजपादि का उल्लेख किया गया है। कर्मकाण्ड में आने वाले प्रमुख नामों आदि की व्याख्या भी इसमें मिलती है यथा, वरूण शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है कि वरण किये जाने के कारण 'वरूण कहा गया है। 'दीक्षित' शब्द की व्युत्पत्ति दीक्षा से

ने मानते हुए 'धियम्' शब्द से बताई गई है। अव्यय शब्द कर व्याकरण –शास्त्र–सम्मत प्रथम निर्वचन यहाँ किया है।[1]

उत्तर गोपथ में विविध यागों एवं तत्सम्बद्ध अनेकानेक आख्यायिकाओं का वर्णन किया गया है। गोपथ में वर्णित शब्द व्युत्पत्तियों का भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से विशिष्ट स्थान है। निरूक्तकार यास्क ने भी शब्द निर्वचनों से प्रेरणा प्राप्त की है।

गोपथ ब्राह्मण का प्रथम प्रकाशन हरचन्द्र विद्याभूषण ने 1870 ई0 में कलकत्ता में किया था। बाद में डी0 गास्ट्रा नें जर्मनी से सन् 1919 में तथा राजेन्द्रलाल मित्र ने सन् 1872 में कलकत्ता से प्रकाशन सम्पन्न किया।

गोपथ ब्राह्मण के भौगोलिक अध्ययन से ज्ञात है कि उस समय ब्राह्मण–संस्कृति, कुरू–पांचाल, कौशल, साल्व, मत्स्य, वंशी–उशीनर, अंग–मगध आदि प्रदेशों में फैल चुकी थी।

गोपथ ब्रांह्मण में बताया गया है कि प्रत्येक मनुष्य पर तीन ऋण होते हैं– देव ऋण, ऋषि ऋण और पितृ ऋण। इन त्रिविध ऋणों के परिशोधन के लिए पुरुष

1– गोपथ ब्राह्मण 1, 26 सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।

वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्।।'

को विवाह कर सन्तानोत्पादन करना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर वह अनेक विवाह भी कर सकता है।[1] ब्राह्मणों का कर्त्तव्य बताते हुए लिखा है कि ब्राह्मण के लिए गाना और नाचना वर्जित है।[2]

सम्पूर्ण ब्राह्मण साहित्य के अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर सहज पहुँचते है कि ऋग्वेद के ब्राह्मण 'होता' के कार्यों की विशेष व्याख्या करते हैं। सामवेदीय ब्राह्मण 'उद्गाता' नामक ऋत्विज् के कार्यों के व्याख्याता हैं। यजुर्वेदीय ब्राह्मण 'अध्वर्यु' के कर्मकाण्ड की व्याख्या करते हैं और अथर्व के ब्राह्मण सभी ब्राह्मणों की विषय सामग्री एवं ऋत्विज के कार्यों के व्याख्याता हैं तथा उसे अपना लेते हैं। वैसे भी 'ब्रह्मा' नामक ऋत्विज का कार्य भी सम्पूर्ण यज्ञ का निरीक्षण ही है। कुल मिलाकर इन ब्राह्मणों को देखने से विदित होता है कि इनमें पारस्परिक अन्तर होते हुए भी काफी हद तक पारस्परिक समानता भी देखने को मिलती है।

'अनुपलब्ध' ब्राह्मण साहित्य –

ब्राह्मणों का सहित्य अतिविशालतम् है परन्तु आज अनेक ब्राह्मण उपलब्ध नहीं है। उनके उद्धरण या नामों का उल्लेख ही मिलता है। श्री भगवत

1– गोपथ ब्राह्मण 2/3/19

2– तस्माद् ब्राह्मणों नैव गायेन्न नृत्येत् ...... गोपथ ब्राह्मण 2/21

दत्त ने अपने ग्रन्थ वैदिक कोष की भूमिका में अप्रकाशित या लुप्त ब्राह्मणों पर विचार किया है। डॉ0 बटकृष्ण घोष ने अनुपलब्ध ब्राह्मणाों के उद्धरणों को इकठ्ठा करके प्रकाशित किया है। [1]

इन लुप्त ब्राह्मणों का संक्षिप्त परिचय आवश्यक है। इनमें से कुछ के तो उद्धरण प्राप्त होते हैं किन्तु अन्यों के तो मात्र नाम का उल्लेख मिलता है।

1– शाट्यायन ब्राह्मण –

इसके अधिंकाश उद्धरण ऋग्वेद तथा ताण्ड्यब्राह्मण के सायण भाष्य में मिलते हैं। कतिपय उद्धरण ब्रह्मसूत्र के शांकरभाष्य मे मिलते है। जैमिनीय ब्राह्मण ग्रन्थ में भी अनेक उद्धरण मिलते हैं।

2– जैमिनीय तवल्कार ब्राह्मण –

इसे जैमिनीय अथवा तवल्कार के नाम से जाना जाता है। इसका प्राप्त उल्लेख मात्र यह इंगित करता है कि इस ब्राह्मण का महत्त्व शाट्यायन की अपेक्षा गौण है।

3– आह्वरक ब्राह्मण –

यह चरक शाखा से सम्बद्ध ब्राह्मण ग्रन्थ हैं जिसका संकेत चरण व्यूह में मिलता है।

1– डॉ0 बटकृष्ण घोष – 'कलेक्शन आव् फ्रैग्मेण्ट्स आव् लास्ट ब्राह्मणज' कलकत्ता – 1935.

4– कालवव्रि ब्राह्मण –

इसका पुष्पसूत्र में उल्लेख किया गया है।

5– भाल्लवि ब्राह्मण –

यह सामवेदीय शाखा का ब्राह्मण है जिसका उल्लेख श्रौत ग्रन्थों, महाभाष्य एवं काशिका वृत्ति में मिलता है।

6– चरक ब्राह्मण –

यह कृष्ण यजुर्वेद की प्रधान शाखा चरक से सम्बद्ध है। यह ब्राह्मण काठक संहिता 36/6 में भी हमें मिलता है। सायणाचार्य द्वारा भी इसका उल्लेख किया गया है, यह इस बात का प्रमाण है कि उनके काल तक इसका अस्तित्व था, मगर कालान्तर में समाप्त हो गया।

7–शैलालि ब्राह्मण –

इसका उल्लेख महाभारत एवं काशिकावृत्ति में मिलता है।

8–हारिद्रविक ब्राह्मण –

इस ग्रन्थ का उल्लेख चरणव्यूह में अंकित है। यह यजुर्वेदीय शाखा से सम्बद्ध था।

9– गालव ब्राह्मण –

यह शुक्ल यजुर्वेदीय गालव शाखा से सम्बद्ध था, इसी कारण इसका नामकरण है।

इन ब्राह्मणों के अतिरिक्त डॉ0 बटकृष्ण घोष के ग्रन्थ से निम्नांकित ब्राह्मण ग्रन्थों के नाम की जानकारी मिलती है–

(1) कंकति (2) जाबालि (3) पैंगायनि (4) माषशरावि (5) मैत्रायणीय (6) रौरूकि (7) श्वेताश्वतर (8) काठक (9) खाण्डिकेय (10) औरवेय (11) तुम्बरू (12) आरूणेय (13) सौलभ (14) पराशर (15) अध्वर्यु (16) वल्लभी (17) सात्यायनी।

इन ब्राह्मणों के उद्धरण नहीं मिलते, मात्र इनकी नाम चर्चा हुयी है। स्पष्ट है कि ये ब्राह्मण ग्रन्थ अपनी शाखा के प्रणेता आचार्यो के नाम से ही अभिहित हैं।

यदि हम सम्पूर्ण मतो पर दृष्टिपात करे तो हम इस निष्कर्ष पर पहुॅचते हैं कि सामवेद के ताण्डिन् शाखा से सम्बद्ध 8 ब्राह्मण प्राच्य एवं पश्चात विद्वानों के एक मत होने से प्रतिष्ठा प्राप्त है। पाश्चात्य विद्वान 'मैक्डानेल' महोदय [1] सामवेद की दो स्वतंत्र शाखायें मानते हैं। वेबर महोदय [2] का विचार सायणाचार्य से भिन्न प्रतीत होता है, वे "पंचविंश, षड्विंश तथा छान्दोग्य को सामवेद से सम्बद्ध मानते हैं"।

1– मैक्डानेल– संस्कृति साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–194 – 5 (हिन्दी)

2– वेबर – वैदिक लिट्रेचर, पृष्ठ 74–75

"विन्टरनित्स महोदय [1] ने सामवेद से सम्बद्ध केवल दो ब्राह्मणों का नाम दिया हुआ है– ताण्ड्य तथा षड्विंश तथा एक तीसरे ब्राह्मण का उल्लेख है, जिसके विषय में बहुत कम साम ग्री इस समय मौजूद है"।

ब्राह्मणों का महत्त्व–

ब्राह्मणों का वर्ण्य –विषय यज्ञानुष्ठानों एवं यज्ञ की विधियों से सम्बद्ध है, कर्मकाण्ड एवं यज्ञ की प्रक्रिया बतलाने के साथ–साथ इनमें व्याख्यायें भी मिलती हैं। इनका अपना विशिष्ट महत्त्व है। आधुनिक युग के कतिपय विद्वानों ने ही ब्राह्मणों का वास्तविक माहात्म्य समझा है। विन्टरनित्स आपाततः भले ही ब्राह्मणों के आलोचक रहे हों, किन्तु भारतीय विचारधारा के इतिहास में वह इनके महत्त्व को भली–भॉति समझते हैं। उनका अभिमत है कि [2] कि वैदिक धर्म के अनुयायी के लिये यज्ञ एवं पौरोहित्य के इतिहास पर ब्राह्मण ग्रन्थ उसी प्रकार आप्तप्रमाण हैं, जैसे पूजा उपासना के क्षेत्र में संहिताएं हैं। प्रोफेसर जिमर [3] की यह धारणा रही है कि वेदों की ऋचाओं को समझने में ब्राह्मण ग्रन्थों से पर्याप्त सहायता मिलती है।

1– विन्टरनित्स – प्राचीन भारतीय साहित्य पृष्ठ– 155–156

2– विन्टरनित्स – "हिस्ट्री आव् इण्डियन लिट्रेचर 1, पृष्ठ 187, 225

3– ए0 के0 कुमारस्वामी– जे0 ए0 ओ0 एस0 66, 1946, पृष्ठ 152

है। प्रो० डब्ल्यू० डी० व्हिट्नी का कहना [1] है कि पौरोहित्य करने वाले सम्प्रदायों में ब्राह्मण ग्रन्थ ऐसी क्रमबद्ध गवेषणा के प्रमाण स्वरूप हैं जिनकी कसौटी पर पवित्र वैदिक ऋचाएं संगृहीत होने के पूर्व ऑकी–परखी गयी हैं।

ब्राह्मण काल की संस्कृति में वैदिक याज्ञिक कर्मकाण्ड चर्मोत्कर्ष को प्राप्त कर चुका था, कर्मयज्ञ मानव मात्र का अनुष्ठेय बन चुका था। ब्राह्मणों के यागानुष्ठानों के विशाल सूक्षतम वर्णन को आजकल का आलोचक नगण्य दृष्टि से देखने का दुःसाहस भले ही करे, परन्तु वे एक अतीत युग के संरक्षित निधि हैं जो वैदिक युग के क्रिया कलापों का एक भव्य चित्र धर्ममीमांसक के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं। यह परिस्थिति परिवर्तन होने से अवश्य ही धूमिल सा हो गया है, परन्तु फिर भी वह है धार्मिक दृष्टि से उपादेय, संग्रहणीय और माननीय। भारतीय धर्म के इतिहास में श्रौत–विधानों का एक विचित्र युग ही था। उस युग को अपने पूर्ण सौन्दर्य तथा सौष्ठव के साथ आज भी उपस्थित करने का श्रेय इन्ही ब्राह्मण ग्रन्थों को है।

क्रमशः समय ने पलटा खाया, युगों ने करवटें बदलीं। भक्ति–आन्दोलन की व्यापकता के कारण वैदिक कर्मकाण्ड का सर्वत्र ह्रास हो गया। श्रौत यज्ञ – विधान आज अतीत की एक स्मृतिमात्र है। वैदिक धर्म के कर्मकाण्ड से लोगों की

1– जे० ए० ओ० एस० 44–1854, पृष्ठ 250

आस्था उठती गयी। फलतः न कहीं श्रौत याग होते हैं और न ही कहीं उन अनुष्ठानों को साक्षात करने का अवसर ही कभी प्राप्त होता है। यही कारण है कि आज ब्राह्मणों के क्रियाकलापों को ठीक—ठाक हृदयंगम करना एक विषम समस्या है, परन्तु इतना तो निश्चित है कि वे यज्ञ सम्बन्धी बकवास नही हैं। (जैसा अधिकांश पश्चिमी व्याख्याता मानते आये हैं) । उनके भीतर भी एक तथ्य है और तथ्य को खोजने की कुन्जी है श्रद्धामय अनुशीलन तथा अन्तरंग दृष्टि। बहिरंग दृष्टि वालों के लिए तो 'ब्राह्मण, ऊटपटांग अंडबंड के सिवाय और क्या हो सकता है ?

ब्राह्मणकालीन समय में यज्ञ—याग के अनुष्ठानों के विषय को लेकर विद्वानों में बड़ा शस्त्रार्थ होता था, तथा 'मीमांसा' जैसे शास्त्र की उत्पत्ति उस युग में हो गयी थी, जिससे तर्कपद्धति के अनुसार यज्ञीय विषयों का विमर्श होता था। मीमासंक ही हमारे प्रथम दार्शनिक हैं और मीमांसा हमारा प्रथम दर्शन है। ब्राह्मणो मे यज्ञीय विषयक मीमांसको को 'ब्राह्मवादी' की संज्ञा से अभिहित किया गया है। 'ताण्ड्य महाब्राह्मण' में 'एवं ब्रह्मवादिनो वदन्ति' के द्वारा अनेक यज्ञीय गुत्थियों को सुलझाने का प्रशस्त प्रयन्त किया गया है।[1] दूसरी ओर हमें शतपथ ब्राह्मण में भी ऐसे ब्रह्मवादियों के दर्शन होते हैं। साथ ही उनके मतों की प्रर्याप्त

1— ताण्ड्य ब्राह्मण 6/4/15

समीक्षा भी की गयी है। उदाहरण के लिए दीक्षा से पूर्व दिन भोजन करने अथवा न करने के प्रश्नों को लेकर सावयस आषाढ़ नामक आचार्य तथा याज्ञवल्क्य के बीच गहरी मीमांसा उपलब्ध होती है।[1] आषाढ़ आचार्य का मत अनशन को ही व्रत मानने के पक्ष में था, परन्तु इस मत की धज्जियाँ उड़ाकर याज्ञवल्क्य ने सिद्ध किया कि भोजन करना चाहिए, परन्तु अरण्य में उत्पन्न होने वाले व्रीहि, यव, शमीधान्य आदि पदार्थो का ही।

इस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों का गाढ़ अनुशीलन अनेक सिद्धान्तो की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है।

(क) यज्ञों के नाना रूपों तथा विविध–अनुष्ठाानों के इतिहास का पूर्णपरिचय देता है। ब्राह्मणों में यज्ञ एक वैज्ञानिक संस्था के रूप में हमारे सामने आता है।

(ख) हम उन निर्वचनो से परिचय पाते हैं जो निरूक्त की निरूक्तियों का मौलिक आधार है।

(ग) उन सुन्दर आख्यानों का मूलरूप हमें यहाँ मिलता जिनका विकास अवान्तर कालीन पुराणों में विशेषत. दृष्टिगोचर होता है।

(घ) "कर्ममीमांसा" के उत्थान तथा आरम्भ का रूप जानने के लिए ब्राह्मण पूर्व –पीठिका का काम करते हैं। ब्राह्मणों के अध्ययन से हम इन विविध शास्त्रों के उदय की कथा जान सकते है और स्वयं देख सकते हैं कि यज्ञ की आवश्यकता

की पूर्ति के लिए उत्पन्न होने वाले ये शास्त्र किस प्रकार सार्वभौम क्षेत्र में पदापर्ण कर अपना विकास सम्पन्न करने लगते हैं।

यद्यपि वैदिक सभ्यता एवं संस्कृति के सच्चे स्वरूप को जानने के लिए ब्राह्मणों का ज्ञान आवश्यक है, किन्तु वास्तव में आज तक इनका विशद् एवं गम्भीर अध्ययन नहीं हो सका है। इन ग्रन्थों में प्राचीन भारतीय जनजीवन के बहुमूल्य नैतिक आदर्शों की गरिमा गाथा भरी पड़ी है।

द्वितीय अध्याय

'सामवेदीय ब्राह्मणों
का
सामान्य अध्ययन'

'सामवेदीय ब्राह्मणों का सामान्य अध्ययन'

''सामान्य पृष्ठभूमि''

वैदिक वाङ्मय में सामवेद का सर्वाधिक महत्त्व सदैव सर्वमान्य रहा है। छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार जैसे वाक्य–रचना में छन्द, छन्दों मे काव्य, काव्यों में गीत और गानों में तान –संलाप प्रशंस्य है, वैसे ही समस्त वाङ्मय में वेद, वेदों में सामवेद और सभी सामों में उनके सर्वस्वभूत गान प्रशंसित हैं। [1]

1–जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण मे भी साम और उसके अवयवों का वैशिष्ट्य बहुत विस्तार से अनेक रम्य रूपकों के माध्यम से प्रदर्शित है। भगवान श्री कृष्ण ने वेदों में सामवेद को अपना ही स्वरूप मानकर इसकी महत्ता की घोषणा की है 'वेदानां साम्वेदोऽस्मि ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में भी साम का महत्त्व प्रतिपादित है। ऋग्वेद कहता है कि जो व्यक्ति जागरणशील है उसी को साम की प्राप्ति होती है– 'यो जागार तमु सामानियन्ति'। [2] अथर्ववेद में साम को परब्रह्म का लोमभूत माना गया है– 'सामानि यस्य लोमानि' [3]। इस प्रकार साम गायन की परम्परा अर्वाचीन न होकर प्राचीनतम है।

1– 'छा0 उप0 – 1. 1. 2

2– ऋग्वेद – 5/44/14

3– अथर्ववेद – 9/6/2

सामवेद से सम्बन्धित ब्राह्मणों की संख्या अन्य वेदों के ब्राह्मणों से अधिक है। वस्तुतः सामवेद की दो शाखाएँ हैं– 'ताण्डिन्' तथा तवलकार अथवा 'जैमिनीय'। दोनों ही शाखाओं से सम्बन्धित ग्रन्थ उपलब्ध हैं। 'ताण्डय–ब्राह्मण' या 'महा' या 'पंचविंश ब्राह्मण', 'षड्विंशब्राह्मण' एवं 'छान्दोग्य अथवा 'मंत्र ब्राह्मण' ताण्डिन् शाख से सम्बद्ध है। 'मैक्डानल महोदय [1] के अनुसार 'तवलकार' अथवा 'जैमिनीय ब्राह्मण' में पॉच अध्याय हैं। इसके पहले तीन अप्रकाशित अध्याय यज्ञीय विधियों के विविध अंशो का मुख्यतः प्रतिपादन करते हैं। चौथे अध याय की संज्ञा 'उपनिषद् ब्राह्मण' हैं, जो शायद रहस्य के अर्थ का प्रतिपादन करते है । चौथे अध्याय की संज्ञा 'उपनिषद् ब्राह्ममण' है, जो शायद रहस्य के अर्थ का प्रतिपादन करने वाला ब्राह्मण है । पॉचवे अध्याय की संज्ञा 'आर्षेय ब्राह्मण'है ,जिसमें सामवेद के रचयिताओं की संक्षिप्त परिगणना है। यदि हम उनके विचार को मानते हैं तो हमें सम्पूर्ण 'तवल्कार ब्राह्मण' तीन खण्डों में विभक्त तीन भिन्न नामों में मिलता है। 'जैमिनीय ब्राह्मण' भी तीन अध्यायों में हैं और उपनिषद् ब्राह्मण एंव आर्षेयब्राह्मण पहले से ही प्राप्त थे ।

संक्षेप में सामवेद के प्रकाशित ब्राह्मणों की जानकारी इस प्रकार की जा सकती है– सामवेद के ब्राह्मण आठ भागों में प्रकाशित हुए हैं। सभी पर सायण का प्रामाणिक भाष्य है। 1874 ई0 में सायण भाष्य के सहित ए0 सी0 वेदान्त वागीश

1– ए हिस्ट्री आफ दि संस्कृत लिट्रेचर, पृष्ठ– 195 मैक्डानेल

ने 'ताण्ड्य ब्राह्मण' या 'पंचविंश' ब्राह्मण को कलकत्ता से प्रकाशित करवाया। 'षड्विंश को 'के क्लेम' ने और एस0 एस0 एलसिंग ने क्रमशः 1894 तथा 1908 में प्रकाशित करवाया। 1890 में 'मंत्र ब्राह्मण' को सत्यव्रत सामश्रमी ने प्रकाशित करवाया। 1858 में 'छान्दोग्योपनिषद् ब्राह्मण 'को वेबर ने बर्लिन से प्रकाशित करवाया। 1889 में 'छान्दोग्योपनिषद् ब्राह्मण' को ओ0 वोटलिंग ने छपवाया। 'दैवत ब्राह्मण' को 1873 में कर्नेल ने और दूसरा संस्करण सत्यव्रत सामश्रमी ने निकलवाया। कर्नेल ने 'आर्षेय ब्राह्मण' को भी छपवाया। 'आर्षेय' को कैकेण्ड ने भी छपवाया। 'वंश ब्राह्मण' को बंगला अनुवाद सहित सामश्रमी ने तथा उसी का दूसरा संस्करण वेबर ने और तीसरा संस्करण 1873 में बर्नेल ने प्रकाशित करवाया। 'संहितोपनिषद् ब्राह्मण' को 1877 में बर्नेल ने तथा 'सामविधान ब्राह्मण' को 1873 में सायणभाष्य सहित बर्नेल ने प्रकाशित करवाया।

बर्नेल ने 1878 में 'जैमिनीय –आर्षेय–ब्राह्मण' को और 1921 में एच0 एर्टल ने 'जैमिनीय–उपनिषद्–ब्राह्मण' को प्रकाशित करवाया 'जैमिनीय आर्षेय ब्राह्मण' का एक डच भाषा का संस्करण भी कौलेण्ड ने छपवाया।

सामवेद के ऋत्विज का नाम 'उद्गाता' है। उद्गाता ऋग्वेद की ऋचाओं का शास्त्रीय तथा परम्परागत रूप में गायन करता था। उद्गाता के उपयोग के लिए इन ऋचाओं का संकलित रूप सामवेद है। सामवेद में केवल 75 मंत्रों को

छोड़ कर शेष ऋग्वेद से ज्यों के त्यों ग्रहण कर लिए गये हैं। सामवेद में केवल उन्हीं मंत्रों का संग्रह है जिनका गान सोमयाग में विहित है। इनमें अधिकांश मंत्र ऋग्वेद के अष्टम एवं नवम मण्डल से लिए गये हैं।

सामवेद के दो भाग हैं – आर्चिक तथा गान। इनमें आर्चिक शब्द का अर्थ ऋक् समूह है। इसके भी दो भाग हैं – पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक। पूर्वार्चिक में छः प्रपाठक हैं। प्रत्येक प्रपाठक में दो खण्ड, प्रत्येक खण्ड में दशति और प्रत्येक दशति में ऋचाएं हैं। इनमें प्रथम पॉच प्रपाठको की ऋचाएँ 'ग्रामगान' नाम से अभिहित हैं। षष्ठ प्रपाठक की ऋचाएं 'अरण्य गान' नाम से कथित हैं। इनमें मंत्रों की संख्या 650 है।

उत्तरार्चिक में 9 प्रपाठक हैं। प्रथम पॉच प्रपाठकों में दो–दो भाग हैं और अन्तिम चार प्रपाठको में तीन–तीन अर्धक हैं। उत्तरार्चिक की समग्र मंत्र संख्या 1225 है। दोनों आर्चिकों की सम्मिलित मंत्र संख्या 1875 है। श्री दुर्गादत्त त्रिपाठी का कथन है कि सामवेद के सभी मंत्र ऋग्वेद से नहीं लिए गये बल्कि उससे स्वतंत्र भी है और वे उतने ही प्राचीन हैं जितने ऋग्वेद के मंत्र। इस प्रकार सामवेद की स्वतंत्र सत्ता है।

पतंजलि ने सामवेद की एक सहस्र शाखाओं का उल्लेख किया है – 'सहस्रवर्त्मासामवेदः' [1] पुराण भी एक सहस्र शाखाओं का उल्लेख करते हैं।

1– महाभाष्य, पश्यशाह्निक

बौद्धग्रन्थ 'दिव्यावदान' में सामवेद के 1080 शाखाओं का उल्लेख है– 'साशीतिसहस्रधा भिन्ना'। [1] शौनक चरणव्यूह के अनुसार सामवेद की एक सहस्र शाखाएं थी, किन्तु इनमें से अनेक अनध्याय के दिन पढ़े जाने से इन्द्र के द्वारा वज्र प्रहार से नष्ट कर दिये गये – 'सामवेदस्य किल सहस्रभेदा भवन्ति। एष्वनध्यायेष्वधीयानास्ते शतक्रतु वज्रेणाभिहताः।' जैमिनिगृह्यसूत्र में तर्पण प्रकरण में 13 आचार्यों के नाम उपलब्ध हैं – जैमिनि, तवल्कार, सात्युग्र,राणायनि दुर्वासस, भागुरि, गौरुण्डि, गौर्गुलजि, औपमन्यव, कारडिं, सावर्णि, गार्ग्य, वार्षगण्य और देवन्त्य किन्तु इनमें से केवल तीन आचार्यों की शाखाएं सम्प्रति उपलब्ध हैं – कौथुमीय, राणायनीय और जैमिनीय।

जैमिनियोपनिषद् ब्राह्मण की प्रसिद्धि तवल्कार आरण्यक के रूप में भी है। सामवेद से सम्बद्ध यही एकमात्र आरण्यक ग्रन्थ हैं। इसमें चार अध्याय और 154 खण्ड हैं।

मुक्तिकोपनिषद के अनुसार 16 उपनिषदों का सम्बन्ध सामवेद से है, किन्तु सामवेदीय उपनिषदों के रूप में प्रसिद्ध दो ही हैं – छान्दोग्य तथा केन।

सामवेद से सम्बद्ध प्रमुख श्रौतसूत्रों में मशक, गार्ग्यकृत आर्षेयकल्प, क्षुद्रकल्प, लाट्यायन श्रौतसूत्र, द्राह्यायण श्रौतसूत्र एवं जैमिनीय श्रौतसूत्र हैं।

1– वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग–1

सम्प्रति सामवेद के तीन गृह्यसूत्र उपलब्ध हैं– (1) गोभिल गृह्य सूत्र (2) खादिरगृह्य सूत्र (3) जैमिनीयगृह्य सूत्र। इनमें से गोभिल का सम्बन्ध कौथुम से, खादिर का राणायनीय से और जैमिनि का जैमिनीय शाखा से है। 'गौतम गृह्यसूत्र' और 'छान्दोग्य गृह्यसूत्र' नामक दो सामवेदीय गृह्यसूत्र अद्यावधि अप्रकाशित बतलाये जाते हैं।

सामवेद से सम्बन्धित मात्र एक धर्मसूत्र 'गौतम धर्मसूत्र' है। कुमारिल ने इसे सामवेद से सम्बद्ध बतलाया है। गोभिल ने अपने गृह्यसूत्र में गौतम को उद्घृत किया है।

'पुष्पसूत्र' की गणना सामवेदीय प्रातिशाख्य ग्रन्थों के अन्तर्गत की जाती है। यह कौथुम और राणायनीय दोनों शाखाओं से सम्बद्ध माना जाता है।

'ऋकतंत्र' प्रातिशाख्य पाणिनीय व्याकरण से पूर्ववर्ती है और उस पर इसका विपुल प्रभाव परिलक्षित होता है।

सामवेद से सम्बद्ध तीन शिक्षाग्रन्थ उपलब्ध हैं – नारदीया, गौतमी और लोमशी शिक्षा। इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नारदीय शिक्षा ही है। सामगानगत स्वरों पर प्रकाश डालने की दृष्टि से यह अत्यन्त उपादेय है। इस पर भट्टभास्कर की व्याख्या है।

सामवेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों की संख्या –

सामवेद के आठ बाह्मण ग्रन्थों की मान्यता सुदीर्घकाल से है, जैसा कि सायणाचार्य का कथन है –

"अष्टौ ही ब्राह्मणग्रन्थाः, प्रौढं ब्राह्मणमादिमम्।

षडविंशाख्यं द्वितीयं स्यात् ततः सामविधिर्भवेत्।

आर्षेयं देवताध्यायो भवेदुपनिषद् ततः।

संहितोपनिषद् वंशो ग्रन्था अष्टावितीरिताः।।[1]

सायण से भी पूर्व, कुमारिल भट्ट ने भी सामवेद से सम्बद्ध आठ ही ब्राह्मण ग्रन्थ माने हैं –

" ब्राह्मणानि हि यान्यष्टौ सरहस्यान्यधीयते।

छान्दोगास्तेषु सर्वेषु न कश्चिन्नियतः स्वरः ।।[2]

इस प्रकार ताण्ड्य महाब्राह्मण के साथ ही षड्विंश, सामविधान, आर्षेय, देवताध्याय, छान्दोग्य तथा संहितोपनिषदाख्य ब्राह्मणों का भी सम्बद्ध कौथुम शाखा से बतलाया जाता है।

जैमिनीय शाखा से सम्बद्ध अब तक प्रकाशित ब्राह्मण ये हैं – जैमिनीय ब्राह्मण, जैमिनीयार्षेय ब्राह्मण तथा जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण।

1– सामविधान ब्राह्मण, भाष्य (वेदार्थ–प्रकाश) – उपक्रमणिका (6–7)

2– तन्त्रवार्तिक, 1, 3, 12,, आनन्दाश्रम–संस्करण – पृष्ठ 140

सामवेदीय ब्राह्मण और उनका विशिष्ट प्रतिपाद्य –

अन्य वेदों की अपेक्षा सामवेदीय ब्राह्मण–ग्रन्थों की संख्या सर्वाधिक है। सायण के मतानुसार सामवेद के आठ ब्राह्मण ग्रन्थ हैं – ताण्ड्य, षड्विंश, सामविधान, आर्षेय, देवताध्याय, उपनिषद्, संहितोपनिषद्, तथा वंश ब्राह्मण। 'काशिका' में सामवेदीय भाल्लवि, कालवव्रि, शैरूकि, शाट्यायन तथा पैंग्य आदि ब्राह्मण ग्रन्थों का नामोल्लेख मिलता है। ये ब्राह्मण ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं हो सके हैं। इनके उद्धरण अवश्य मिलते हैं। इनकी विषय–सामग्री की समता को देखकर आचार्य पं० बलदेव उपाध्याय का अभिमत है कि सम्भवतः इनमें से अनेक ब्राह्मण एक ही बड़े साम ब्राह्मण के विधि भाग थे जो आज स्वतंत्र रूप से उपलब्ध मिलते हैं। [1] सम्प्रति उपलब्ध सामवेदीय ब्राह्मणों का परिचय इस प्रकार है।

(1) ताण्ड्य महाब्राह्मण (पंचविंश ब्राह्मण) –

इस ब्राह्मण का सम्बद्ध सामवेद की ताण्डि शाखा से है। पचीस अध्यायों में विभक्त होने के कारण इसे 'पंचविंश ब्राह्मण' भी कहते हैं। सामवेद के ब्राह्मणों में प्रधान तथा विशालकाय होने के कारण इसे 'प्रौढ़ ब्राह्मण' तथा 'महाब्राह्मण' भी

1– आचार्य बलदेव उपाध्याय 'वैदिक साहित्य संस्कृति' पृष्ठ सं० 209

कहते हैं। इस ग्रन्थ के प्रणेता आचार्य 'ताण्डि' नामक ऋषि बताये जाते हैं। सामविधान ब्राह्मण में 'ताण्डि' नामक आचार्य का नामाभिधान मिलता है। [1]

'शतपथ ब्राह्मण में भी 'ताण्ड्य नामक ऋषि का प्रमाण मिलता है। [2] इस ब्राह्मण ग्रन्थ में 'उद्गाता' नामक ऋत्विक् के कार्यकलाप विस्तृत रूप से वर्णित है। विविध यज्ञों एवं अनुष्ठान – पद्धतियों का विशद् विवेचन इसका प्रमुख विषय रहा है। एक दिन से लेकर सहस्रों वर्षों तक चलने वाले यागों का विवरण देने एवं इतर विषय व्यापकत्व के कारण इसका 'महाब्राह्मण' नाम पूर्णतः चरितार्थ हो जाता है। ऐतरेयादि ब्राह्मणों के समान इसमें भी पॉच अध्यायों को 'पंचिका कहने की परम्परा है। इस प्रकार पंचविंश ब्राह्मण पंच पंचिकात्मक है।

विद्वानों का विचार है कि ऐतरेयादि अन्य वेदों के ब्राह्मणों केसमान सामवेदीय ताण्ड्य ब्राह्मण में भी मूलतः 40 अध्याय होने चाहिए। षड्विंश और उपनिषद् ब्राह्मणों को मिलाकर यह संख्या सम्पन्न भी हो जाती है। इसके अनुसार काशिकोक्त 'चत्वारिंश ब्राह्मण' शब्द ताण्ड्य ब्राह्मण के ही 40 अध्यायात्मक स्वरूप के ज्ञापनार्थ प्रयुक्त है। [3]

1– डा0 बे0 रामचन्द शर्मा–सामविधान ब्राह्मण–तृतीय प्रपाठक (9), 8 द्वारा सम्पादित, केन्दीय संस्कृत विद्यापीठ तिरूपति, 1980

2– 'शतपथ ब्राह्मण' – 6, 1, 2, 25

3– काशिका (वामन–जयादित्य) –5.1.62

—यद्यपि षड्गुरुशिष्य का मत इसके विपरीत है।[1] इस सन्दर्भ में सत्यव्रत सामश्रमी ने सर्वाधिक दृढ़ता से ताण्ड्य ब्राह्मण के चत्वारिंशदध्यायात्मक स्वरूप का समर्थन किया है।[2] षड्विंश तो स्पष्ट रूप से ताण्ड्य ब्राह्मण का भाग है। इस प्रकार ताण्ड्य महाब्राह्मण का स्वरूप पंचविंश, षड्विंश और छान्दोग्य ब्राह्मण को मिलाकर सम्पन्न होता है।

ताण्ड्य ब्राह्मण का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय सोमयाग है। अग्निष्टोमसंस्थ ज्योतिष्टोम से आरम्भ करके सहस्र संवत्सरसाध्य सोम याागों का इसमें मुख्यतः विधान किया गया है। इनके अंगभूत सामवेदीय स्तोत्र, स्तोम और उनकी विष्टुतियों के प्रकार एवं स्तोमभाग – ये इसमें विस्तार से विहित हैं। अध्यायानुसार विषयवस्तु का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–[3]

1— ऐत0 ब्राह्मण की सुखप्रदा व्याख्या

2— 'अध्यायानाम् संकलनया चत्वारिंशदध्यायात्मकम् कौथुम ब्राह्मणं सम्पद्यते ताण्ड्यनाम' —त्रयीपरिचय, पृष्ठ—12 तथा 'पंचविंशं षड्विंशं ब्राह्मणं च छान्दोग्योपनिषच्च मिलित्वा ताण्ड्य महाब्राह्मणं भवति' – सामवेदसंहिता की भूमिका, पृष्ठ 13, पारडी, 1956 ई0।

3— सायण ने तां0 ब्रा0 भाष्य की उपक्रमणिका में विषयवस्तु परिगणन इस प्रकार किया है– 'पंचविंशतिरध्याया महति ब्राह्मणे स्थिताः। आद्येऽध्याये श्रुतामंत्रा उद्गातुर्य्यजुरात्मकाः।। द्वयोरध्याययोः स्तोमप्रकारा बहुधाश्रुताः। चतुर्थाध्यायमारभ्य गवामयनिकादयः। क्रतूनां विधयः प्रोक्ता एषोऽस्मिन् ब्राह्मणे क्रमः।।

प्रथम अध्याय – उद्‌गाता के लिए पठनीय यजुषात्मक मंत्र।

2–3 अध्याय – त्रिवृत्–पंचदशादि स्तोमों की विष्टुतियाँ।

4–5 अध्याय – समस्त सत्रयागों के प्रकृतिभूत गवामयन का वर्णन।

6–9 (12 वें खण्ड तक) अध्याय – ज्योतिष्टोम, उक्थ्य तथा अतिरात्रसंस्थ यागों का वर्णन। नवमाध्याय के शेष खण्डों में विभिन्न प्रायश्चित –विधियाँ वर्णित हैं।

10–15 अध्याय – द्वादशाह यागों का वर्णन।

16–19 अध्याय – विभिन्न एकाहयागों का वर्णन।

20–22 अध्याय – अहीन यागों का निरूपण।

23–25 अध्याय – सत्र–यागों का विधान।

ताण्ड्य ब्राह्मण में मुख्यतः सोमयाग का वर्णन है किन्तु व्रात्य–स्तोम में व्रात्यों का विवरण प्राप्त है। प्रवास करने वाले आचार से हीन आर्य 'व्रात्य' कहलाते थे। इन व्रात्यों को आर्यों की समकक्षता प्राप्त कराने के लिए इसमें व्रात्य यज्ञ का विधान वर्णित है। व्रात्य यज्ञ में अग्निष्टोम साम का विधान किस मन्त्र पर हो ? कुछ आचार्यों का कथन है कि ' देवो वा द्रविणोदा' पर साम का विधान होना चाहिए। अन्य आचार्यों का मत है कि 'अदर्शि गातु वित्तम सतो वृहती' पर साम का विधान होना चाहिए। ताण्ड्य में इस मत का खण्डन कर पूर्व मत

का समर्थन किया गया है। [1] ताण्ड्य ब्राह्मण के सत्रहवें अध्याय में व्रात्यों के वेश–भूषा, आचार–विचार के सम्बन्ध में बहुत सा विषय निर्दिष्ट है। व्रात्य सिर पर पगड़ी धारण करते थे और काली धारी की धोती पहनते थे। गले में चांदी का कंठहार तथा हांथ में धनुर्दण्ड धारण करते थे। स्त्रियां वेणी बांधती थी। [2]

भौगोलिक दृष्टि से पर्यालोचन करने पर ज्ञात होता है कि उस समय आर्य केवल कुरूक्षेत्र तक ही नहीं, बल्कि सुदूर पूर्व के अनेक स्थानों तक पहुँच चुके थे। कुरूक्षेत्र से लेकर नैमिषारण्य तक का प्रदेश यज्ञभूमि के रूप में प्रसिद्ध था। सरस्वती और दृषद्वती के तटवर्ती प्रदेशों में अनेक यज्ञ हुए थे। कोशल तथा विदेह के राजाओं का उल्लेख इस बात को द्योतित करता है कि उस समय आर्य यहाँ से पूर्ण परिचित हो चुके थे। आचार–हीन आर्य व्रात्य कहलाते थे। उन्हें आर्य वर्ग में प्राप्त करवाने के लिए नानाविध यागों का वर्णन है। ताण्ड्य ब्राह्मण में रोहित नदी का उल्लेख है जिसके तटवर्ती प्रदेश को विश्वामित्र ने भरतों की सहायता से अपने अधिकार में कर लिया था। [3]

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 17/1/11–12

2– वही – 13/4/3 ; 4/1/1

3– ताण्ड्य ब्राह्मण – 14/3/13

सामवेद से सम्बद्ध होने के कारण इसमें साम के विशिष्ट प्रकारों तथा उनके नामकरण के औचित्य का विवेचन है। साम का नामकरण उनके द्रष्टा ऋषियों के नाम पर होता था। जैसे – वत्स ऋषि के द्वारा दृष्ट साम 'वात्स साम' मेघातिथि के द्वारा दृष्ट साम 'मेघातिथ्य साम' और वैखानस ऋषि से दृष्ट साम 'वैखानस साम' कहलाते थे। इसमें सामों के महत्त्व प्रतिपादन के लिए कई आख्यान दिये गये है। जैसे – मेघातिथि ने किसी समय वत्स को शूद्रपुत्र एवं अब्राह्मण कह दिया। इस पर दोनों अग्नि के पास पहुँचे और वत्स ने अपने को अग्नि में डाल दिया किन्तु उसका एक रोम भी नहीं जला (तस्य लोम च नौषत्) तब से वात्स साम 'कामसनि'(इच्छाओं का पूरक) नाम से प्रसिद्ध हुआ। [1] इसी प्रकार 'वीङ्कसाम' में च्यवन ऋषि के यौवन प्राप्ति का आख्यान वर्णित है। [2]

इस प्रकार ताण्ड्य ब्राह्मण का मुख्य निरूप्य विषय सोम याग एवं तद्गत सामगान की प्रविधि का प्रस्तवन है। विविध प्रकार के साम, उनके नामकरणादि से सम्बद्ध आख्यायिकाएँ और निरूक्तियाँ भी प्रंसगतः पुष्कल परिणाम में आई हैं। यज्ञ के विभिन्न पक्षों के सन्दर्भ में आचार्यों के मध्य प्रचलित विवादों और मत–मतान्तरों का उल्लेख भी है। ताण्ड्य ब्राह्मण में निरूपित व्रात्ययज्ञ सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ब्राह्मण युगीन भौगोलिक सामग्री

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 14/6/6

2– वही – 14/6/10

भी इसमें प्राप्य है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन दो भागों में सायण भाष्य सहित 'बिब्लियोथिका इण्डिका' में भी श्री आनन्दचन्द्र वेदान्त –वागीश द्वारा 1870 ई0 –1874 ई0 में किया गया।

(2) षड्विंश ब्राह्मण –

'षड्विंश ब्राह्मण' सामवेद का दूसरा महत्त्वपूर्ण ब्राह्मण है। इस ब्राह्मण का भी प्रधान विषय सोमयागों तथा अन्य कर्मकाण्डों का विवरण प्रस्तुत करना है। इसके प्रथम पॉच अध्यायों (प्रपाठकों) में सोम यागों से सम्बद्ध कर्मकाण्डों का विवेचन किया गया है जबकि छठे अध्याय में अमंगल एवं उत्पातों के निवारणार्थ शान्तिप्रदायिनी क्रियाओं का उल्लेख किया गया है। षड्विंश नाम का अर्थ ही 'छब्बीसवॉ' है। यह नामकरण इसलिए है, क्योंकि यह पंचविंश ब्राह्मण (पच्चीसवें) अर्थात ताण्ड्य ब्राह्मण के ठीक बाद आता है। 'षड्विंश ब्राह्मण', ताण्ड्य अथवा पंचविंश ब्राह्मण का ही आगे का पूरक अंश है। 'षड्विंश' ब्राह्मण की विषयवस्तु को देखने से यह धारण समर्थित होती है, क्योंकि इसके अन्तिम भाग को छोड़कर जिसमें शुभाशुभ का प्रतिपादन है, शेष समग्र ग्रन्थ में अनुष्ठानों एवं क्रियाओं के विवेचन से यही प्रतीत होता है कि यह ताण्ड्य अर्थात् पंचविंश के आगे का परिशिष्ट भाग है। इस प्रकार षड्विंश के छः अध्याय पंचविंश के बाद के समन्वित अध्याय मात्र प्रतीत होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्व में 'षड्विंश' में केवल पॉच अध्याय थे और अशुभ एवं उत्पात–शान्ति हेतु प्रायश्चित्तादि

क्रियाओं सम्बन्धी छठा अध्याय बाद में जोड़ दिया गया। ऐसी धारणा इसलिए बनती है कि केवल पंचम अध्याय ही एक ऐसा अध्याय है जिसके अन्त में 'इति' शब्द का प्रयोग [1] मिलता है। इस पर सायण ने अति समीचीन टीका की है कि 'इति' शब्द अध्याय की समाप्ति का सूचक है– 'इतिशब्दोऽध्याय परिसमाप्त्यर्थः।'

यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान पाँचवें अध्याय के अन्त तक समूचा विषय एक अध्याय था जो कि महाब्राह्मण का छब्बीसवाँ अध्याय (षड्विंश) था। 'षड्विंश' का अन्तिम अध्याय इस प्रकार आरम्भ होता है, 'अथातः (अथातोऽद्भुतानां कर्मणां शान्ति व्याख्यास्यामः 6.1.1)। उदाहरण के लिए ब्रह्मसूत्र और मीमांसासूत्र को लिया जा सकता है, जिनका आरम्भ क्रमशः 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' [2] तथा 'अथातो कर्मजिज्ञासा' [3] से हुआ है।

अध्यायानुसार षड्विंश ब्राह्मण की विषय–वस्तु इस प्रकार है –

प्रथम अध्याय –

इसमें कुल सात खण्ड हैं, जिनमें से प्रथम दो खण्डों में सुब्रह्मण्या निगद का वर्णन है। सर्गादि में ब्रह्म और सुब्रह्म दो ही के अस्तित्व सूचक अंशों से

1– इति, तस्यानुतृप्ति तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन ब्रह्मवर्चसेनेति।। षड्0 ब्रा0 – 5, 7, 3

प्रारम्भ षड्विंश ब्राह्मण सुब्रह्मण्या निगद की गौरवमयी प्रशंसा करके यजमान को परामर्श देता है कि सुब्रह्मण्या के सर्वविधिवेत्ता को ही सुब्रह्मण्य ऋत्विक् के पद पर नियुक्त करे। तृतीय खण्ड में में तीनों सवनों के साम और उनके छन्दों का निरूपण है। चतुर्थ खण्ड में ज्योतिष्टोम के सुत्याह के प्रातरनुवाक से पहले के कृत्यों तथा विश्वरूपागान का विधान है। पंचम खण्ड में वसिष्ठगोत्रोत्पन्न ब्राह्मण को ही ब्रह्मा के पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए कहा गया है। प्रजापति ने भूः, भुवः, स्वः इन तीन महाव्याहृतियों को क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद और साम-वेद से निस्सृत किया। इस खण्ड में तीन महाव्यहृतियों तथा प्रायश्चित्तपरक कृत्यों का विधान है। षष्ठ खण्ड में भी ज्ञात–अज्ञात त्रुटियों का प्रायश्चित विहित है। सप्तम खण्ड में अर्थवादपूर्वक सोमदेवविषयक अर्थात सौम्य चरू के निर्वाप का विधान है।

द्वितीय अध्याय –

इसमें भी सात खण्ड हैं । 1–3 खण्डों मेंअग्निष्टोमान्तर्गत बहिष्पवमान के रेतस्या और धूर्गानों का विधान है। इस फल कथन के साथ विधि का समापन है कि जो इस धूर्गान का ज्ञान रखता है, वह अपने ओर यजमान के लिए अपराजेय लोक की प्राप्ति कर लेता है, यजमान सहित स्वयं को मृत्यु के पार ले

जाकर स्वर्ग की प्राप्ति करा देता है।[1] चतुर्थ खण्ड में होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा, उद्गाता और सदस्य प्रभृति ऋत्विकों तथा होत्राच्छंसी और चमसाध्वर्यु आदि उपऋत्विकों के यागगत प्रकीर्ण धर्मों का सामान्य निरूपण है। 5–7 खण्डों मे तीनों सवनों में चमस–भक्षण हेतु उपहवादि का कथन है।

तृतीय अध्याय –

तृतीय अध्याय में नौ खण्ड है। प्रथम दो खण्डों में यह प्रदर्शित है कि होता आदि के द्वारा की गयी भूलें यजमान के लिए हानिकारक होती हैं, अतएव उन्हें अपने कर्त्तव्यकर्म का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके यज्ञ को अङ्ग–वैकल्य से बचाये रखना चाहिए क्योंकि यजमान की पशु, सम्पत्ति अध्वर्यु पर, कीर्त्ति होता पर, योगक्षेम ब्रह्मा पर और आत्मा उद्गाता पर आश्रित है। तृतीय खण्ड में ऋत्विक्–वरण, राजा से यान – भूमि की याचना और यागार्थ उपयुक्त भूमि का वर्णन है। चतुर्थ खण्ड में अवभृथ (स्नान) धर्म, यज्ञावशिष्ट द्रव्य का जल के समीप आनयन और रक्षोघ्न साम (अवभृथहेतुक) के गान–हेतुओं अदि का निरूपण है। 5–9 खण्डों में अभिचार यागों का विधान है, जिसके कारण इस ब्राह्मण का विशेष महत्त्व है। पंचम खण्ड में त्रिवृत स्तोम की दो विष्टुतियों, षष्ठ में पंचदश स्तोम की विष्टुति, सप्तम खण्ड में सप्तदश स्तोम की विष्टुति, अष्टम में एकविंशस्तोम की विष्टुति तथा नवम में त्रिणवस्तोम की विष्टुति का वर्णन है।

1– षड्0 ब्रा0 – 2.3.–5

चतुर्थ अध्याय –

इसमें छः खण्ड हैं । प्रथम खण्ड में व्यूढ द्वादशाह याग के धर्मों का, छन्दों के क्रम– परिवर्तन का कथन करते हुए निरूपण है। वस्तुतः यहॉ केवल नौ दिनों के कृत्यों का ही विधान है। क्योंकि प्रायणीयाख्य प्रथम दिन, उदयनीयाख्य 12वें दिन तथा 10वें दिन के कृत्य सभी यागों में समान होते हैं। द्वितीय खण्ड में श्येनयाग नामक अभिचार याग का निरूपण तथा उसके स्तोत्रगत स्तोमों और सामों का कथन है। तृतीय और चतुर्थ खण्डों में त्रिवृदग्निष्टोम और संदंश यागों में गीयमान सामों का वैशिष्ट्य प्रदर्शित है। षष्ठ खण्ड वैश्वदेवाख्य त्रयोदशाह के निरूपण से सम्बद्ध है।

पंचम अध्याय –

यह 7 खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में अग्निहोत्र–निरूपण करते हुए उसकी ज्योतिष्टोम से तुलना की गयी है। यजमान के पात्र से आज्य के गिर जाने पर प्रायश्चित्त का विधान है। हुतावशिष्ट हवि ही इसकी दक्षिणा बतलाई गई है। द्वितीय खण्ड में कहा गया है कि अग्निहोत्र के अनुष्ठान से ही अन्य यागसाध्य इष्ट भी साधित हो जाते हैं–इसके समर्थन हेतु एक आख्यायिका भी

प्रस्तुत की गयी है । तृतीय और चतुर्थ खण्डों में औदम्बरी और यज्ञ यूप का वैशिष्ट्य सहित निरूपण है। पंचम खण्ड में सन्ध्योपासनाविषयक विवरण प्राप्य है। इस सन्दर्भ में एक आख्यायिका के माध्यम से यह विवेचना की गयी है कि प्रातः और सायंकाल ही सन्ध्या का अनुष्ठान क्यों किया जाता है। षष्ठखण्ड में चन्द्रमा के घटने बढ़ने का निरूपण है। देवगण शुक्ल पक्ष में सोम–पान की दीक्षा लेते हैं और कृष्णपक्ष में सोम का भक्षण करते है। पृथिवि ,अन्तरिक्ष और धुलोक–ये सोम–पान के तीन पात्र हैं। चन्द्रमा की 15 कलाएँ उपर्युक्त पात्रों के द्वारा देवताओं के भक्षण में काम आ जाती हैं और 16वीं कला औषधियों में प्रविष्ट हो जाती है। सप्तम खण्ड में स्वाहा देवता की उत्पत्ति, पारिवारिक सम्बन्ध और उसके अक्षरादि का कथन है।

षष्ठ अध्याय –

इसमें कुल 12 खण्ड हैं। इस अध्याय में कर्मो– अनिष्टों तथा अपशकुनों की शान्ति का विधान है। प्रथम खण्ड में पलाश की समिधाओं से 1008 आहुतियों का विधान है। इन्द्र, यम, वरूण, धनद, अग्नि, वायु, सोम और विष्णु –इन आठ देवों के निमित्त आठ मन्त्र दिये गये हैं। अन्त में पठनीय स्वस्तिवाचन मन्त्र है। द्वितिय खण्ड में शत्रु–विजय के निमित्त होमविशेष का प्रतिपादन है। तृतीय खण्ड में इन्द्र विषयक अद्भुत होमविशेष का अनुष्ठान विहित है। यह तब करणीय है जब मणिनिर्मित आभूषणों, धटादि की क्षति हो, चित्त–पीड़ा हो,

राजकुल के साथ विवाद का प्रंसग हो, यान–छत्रादि अथवा गृह–भाग भंग हो जाये अथवा हाथियों या अश्वों में से किसी की मृत्यु हो जाये। चतुर्थ खण्ड में यम के निमित्त अद्भुत कर्मों का अनुष्ठाान विहित है। इस अनुष्ठान के निमित्त विशेष हैं – अपने, कुटुम्बियों अथवा पशुओं के शरीर में व्याधि हो। दुःस्वप्न, अनिद्रा अथवा क्षुधानाश की स्थिति हो, अलस्यादि से शरीर ग्रस्त हो, तब 108 बार 'नाके 0' [1] प्रभृत्त ऋचा का गान करके यम के निमित्त आहुतिपंचक प्रदेय है। पंचम खण्ड में वरूण से सम्बद्ध अद्भुतों की शान्ति का विधान है। यह क्षेत्रस्थ अथवा गृहगत अन्न को मूषकादि या अतिवृष्टि आदि से क्षति पहुँचने की स्थिति में करणीय है। उपर्युक्त कारणों के उपस्थित होने पर 'घृतवती' [2] ऋक् के गान तथा वरूण के निमित्त पॉच आहुतियॉ देने का विधान है। षष्ठ खण्ड में स्वर्ण, रजत, वैदुर्यादि की हानि होने पर किये गये उद्योग के निष्फल होने पर मित्रों के विद्वेष करने पर, पिशाचादिजन्य उद्वेग होने पर, कष्टकर पक्षियों के घर में बसेरा बनाने पर वैश्रवणदेव के निमित्त होम विहित हैं। इस कृत्य में वैश्रवण, यक्षादिपति, हिरण्यपाणि ईश्वर और सर्वप्रापघशमयिता – इन पॉच नामों के निमित्त आहुति पंचक देकर 'अभित्यं–देवम् [3] मंत्र गेय हैं।

1– साम0 सं0 – 320

2– वही – 368

3– वही – 464

सप्तम खण्ड में अग्नि से सम्बद्ध अपशकुनों के निवारण की विधि उल्लिखित है। जब पृथ्वी तड़–तड़ करके फटने लगे, उसमें कम्पन होने लगे, अग्नि के बिना ही धूम उत्पन्न हो, बिना वर्षा के जल गिरे, जल में प्रक्षिप्त पत्थर न डूबे और प्रक्षिप्त मृत शरीर डूब जाये, अकाल, पुष्प–फल उत्पन्न हों, तब ये अनुष्ठेय है। अष्टम खण्ड में वायुदेव से सम्बद्ध उत्पातों के शमन–हेतु होम विशेष विहित हैं। इसके निमित्त विशेष हैं – वायु का अतिरेक अथवा अभाव, पर्वतों का टूट–टूट कर गिरना, घर में वन्य पशुओं का प्रवेश, आकाश से मांस–खण्ड और रूधिरादि की वर्षा–इत्यादि। नवम खण्ड में यजमान के द्वारा स्वर्गाभिमुख होकर सोम के अद्‌भुतों की शान्ति का विधान है। इस होम के ये निमित्त – विशेष हैं –नक्षत्र टूटकर गिरने लगना, उल्कापात, अन्तरिक्ष में धूमकेतु का आविर्भाव, गायों के थनों से दूध के स्थान पर रक्तस्राव इत्यादि। दशम खण्ड में विष्णु जन्य अद्‌भुतों की शान्ति के निमित्त होम विशेष का सम्पादन विहित है। इसके निमित्त विशेष हैं – स्वप्न में अयाननद्ध अश्वादि का गमन दिखना, देव–प्रतिमाओं का हॅसना तथा पसीजना इत्यादि। इस कृत्य में स्वस्तिवाचन के साथ ब्राह्मण–भोजन तथा दक्षिण का भी विधान है। 11 वें खण्ड में रूद्र और 12वें में सूर्यदेवत्य अद्‌भुतों की शान्ति का विधान है।

'षड्विंश ब्राह्मण' का सायणभाष्य सहित प्रकाशन श्री सत्यव्रत सामश्रमी द्वारा सन् 1873 ई0 में किया गया था। तदनन्तर श्री जीवानन्द विद्यासागर ने 'देवताध्याय ब्राह्मण' सहित 'षड्विंश ब्राह्मण' को सम्पादित कर एक वाल्यूम में 1881 ई0 में प्रकाशित किया। इन दोनों ही प्रकाशनों के बहुत पहले ए 0वेबर ने 1859 ई0 पॉचवें प्रपाठक को जिसे कि अद्भुत ब्राह्मण की संज्ञा दी गयी है, जर्मन भाषा में अनूदित करते हुए सम्पादित व प्रकाशित किया था। इसके अतिरिक्त हरमन फ्रीड्रिक ईलसिंग ने 'षड्विंश ब्राह्मण' की रोमन लिपि में व्याख्या, जिसे उन्होंने विज्ञानयानभाष्य कहा है, के साथ उत्यन्त उपयोगी प्रकाशन लीडेन से सन् 1908 ई॰ में किया था। डब्ल्यू0 बी0 बोली ने सन् 1956 ई0 में ईलसिंग के संस्करण के आधार पर इस ग्रन्थ का उत्तम कोटि का अंग्रेजी रूपान्तरण किया था। सन् 1983 ई0 में बे0 रामचन्द्र शर्मा ने इसे सम्पादित करते हुए केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरूपति से प्रकाशित किया।

इस प्रकार यह ब्राह्मण ग्रन्थ श्रौतयागों के साथ ही लोक–विश्वासों के आधार पर चलने वाले समानान्तर धार्मिक विश्वासों से सम्बद्ध आनुष्ठानिक कृत्यों का भी श्रौतस्वरूप में ही प्रस्तावक है।

3– सामविधान ब्राह्मण –

'सामविधान' सामवेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों की श्रेणी में तृतीय अति महत्त्वपूर्ण ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। सामवेद के प्रथम दो ब्राह्मण ग्रन्थ, 'ताण्ड्य' एवं षड्विंश' अन्य संहिताओं के ब्राह्मणों की तरह अपने–अपने निर्धारित विषय–सीमा में व्यवस्थित हैं, किन्तु सामविधान ब्राह्मण प्रायः अपनी वर्ण्यवस्तु की सीमा का अतिक्रमण करता है। यज्ञ, कर्मकाण्डों के स्थान पर इस ग्रन्थ में जादू–टोना, शत्रु–उच्चाटन तथा उपद्रवों को शान्त करने आदि विषयों का भी प्रतिपादन किया गया है। अतएव प्रथम दो ग्रन्थों की अपेक्षा इसमें पर्याप्त विषयान्तर–बाहुल्य है। इसकी विषय सामग्री प्रायेण धर्मशास्त्रों में वर्णित सामग्री के अनुरूप है। इस ब्राह्मण में कुल तीन प्रकरण हैं। ये प्रकरण खण्डों में विभक्त हैं। प्रथम एवं द्वितीय प्रकरण में आठ–आठ खण्ड तथा तृतीय प्रकरण में नौ खण्ड हैं।

प्रकरण में कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र आदि स्मृतियों में बहुशः वर्णित व्रतों का वर्णन उपलब्ध होता है। पुराणों में वर्णित व्रतों का मूल इस ब्राह्मण में उपलब्ध है, जैसे किसी मन्त्र को जल में कमर तक खड़े होकर जपने से विशेष फल की प्राप्ति आदि। इन्हीं विषयों का ग्रहण धर्मशास्त्रो में विशेष रूप से उपलब्ध होता है। ध्यान देने की बात है कि अथर्ववेद के मन्त्रों का उपयोग तथा प्रयोग तान्त्रिक विधि–विधानों की दृष्टि से तो किया ही जाता था, परन्तु इस विशेषता तथा आवश्यकता की पूर्ति अन्य वेदों के मन्त्रों के द्वारा भी की जाने लगी।

'सामविधान' इसी वैशिष्टय का परिचायक है। इसमें काम्य प्रयोग तथा प्रायश्चित्तों का विधान विशेष रूप से किया गया है।

सामविधान (2/6/14) में किसी शत्रु को गॉव से भगाने के लिए चौराहे पर किसी चिता से भस्म को लाने तथा शत्रु के घर में या विस्तरे पर उसे फेंकने का वर्णन है। इसी प्रकार मणिभद्र (यक्ष–विशेष) की मांस बलि तथा साम–गायन के साथ पूजा का विधान सुवर्ण की प्राप्ति के लिए किया गया है। (3/3/3); पुराणों के प्रसिद्ध रूद्रानुचरों की शान्ति के लिए भी यहॉ साम का विधान कम कौतूहलवर्धक नहीं है। विनायक तथा स्कन्द की शान्ति दो सामों के द्वारा तथा रूद्र और विष्णु की शान्ति अन्य दो सामों के द्वारा विहित है (1/4/6–19)। शत्रु के मारने की एक विचित्र विधि का उल्लेख यहॉ मिलता है। शत्रु की आटे की मूर्ति बनानी चाहिए जिसका गला छूरे से काटना होता है तथा अंगो को काट– काट कर आग में डालना पड़ता है। (2/5/4) । राजयक्ष्मा एक भयानक रोग माना गया था जिसे दूर करने की विधि का वर्णन यहॉ उपलब्ध होता है (2/4/9)।

द्वितीय प्रकरण के आठवें खण्ड में सुन्दर तथा दीर्धायु पुत्र की प्राप्ति के लिए नाना प्रयोगों का वर्णन किया गया है।

तृतीय प्रकरण में ऐश्वर्य, नवीन गृह में प्रवेश तथा आयुष्य की प्राप्ति के लिए नाना अनुष्ठानों का वर्णन भिन्न–भिन्न साम–गायन के साथ किया गया है।

अभिषेक के अवसर पर 'एकवृष' साम से अभिषेक करने पर राजा सम्राट् हो जाता था। सेना के नाना अंगो–घोड़ा, हाथी आदि को मारने के लिए आटे की मूर्ति बनाकर छूरे से गला काटने का विधान बहुशः किया गया है। भूत–प्रेत गन्धर्व–अप्सरा तथा देवताओं के लिए सामों का प्रयोग किया गया है (3/7/6)। 'श्रुतिनिगादौ' ऐसे व्यक्ति को कहते हैं जो किसी मंत्र को एकबार में ही सुनकर उसका पाठ करने लगता है। इस सिद्धि की प्राप्ति के लिए भी साम–गायन का विधान है।

समाज में ऐसे भी व्यक्ति हैं जो यज्ञ करने के न तो अधिकारी होते हैं तथा न उनके पास सामर्थ्य है और न साधन ही हैं, किन्तु वे स्वर्गादि लक्ष्यसिद्धि की कामना अवश्य करते हैं। इस ब्राह्मण ग्रन्थ की रचना ऐसे ही लोगों के लिए की गयी थी जिससे कि वे इन अनुष्ठाान–विधानों का अध्ययन कर सकें। इसीलिए इसका 'सामविधान' नामकरण किया गया है अर्थात् वह ग्रन्थ जिसमें क्रियाओं में सामों के प्रयोग की विधि बतलाई गयी है। इस ग्रन्थ में अनेक व्रतों का विधान भी बतलाया गया है। यह ग्रन्थ सामवेदीय ब्राह्मण होकर भी अथर्ववेद के ब्राह्मण की भाँति तांत्रिक क्रियाओं आदि का प्रतिपादन करता है। इस दृष्टिकोण से सामविधान का विशष्ट महत्त्व है।

सर्वप्रथम 'सामविधान ब्राह्मण' का सम्पादन एवं प्रकाशन ए0 सी0 बर्नेल द्वारा रोमनलिपि में लन्दन से 1873 ई0 में तथा देवनागरी–लिपि में आचार्य सत्यव्रत सामश्रमी द्वारा 1895 ई0 में कलकत्ता में किया गया था।

यह ब्राह्मण ग्रन्थ धर्म-सूत्रों की पूर्व पीठिका है, क्योंकि धर्मसूत्रों में विस्तार से वर्णित दोष, अपराध तथा उनके प्रायश्चित इस ब्राह्मण में मुख्यतया प्रतिपादित हैं। उस समय समाज चार वर्णों में विभाजित था। तत्कालीन समाज में ब्राह्मण आदि चार वर्णे की हत्या, गोहत्या, ब्राह्मण का पशु तथा दुग्ध आदि पदार्थों का विक्रय करना, शुद्रों को वेद पढ़ाना, शुद्रा के साथ विवाह करना, ज्येष्ठ भाई से पहले विवाह करना, मद्यपान, गाली देना आदि अपराध प्रचलित थे। इन पापाचरणों से छुटकारा पाने के लिए इस ब्राह्मण में अनेक विधान वर्णित हैं। यहॉ तक की मारण, मोहन, रोगापनयन आदि की विधियॉ भी वर्णित हैं। इनके अतिरिक्त रूद्र एवं विष्णु की शान्ति दो सामों के द्वारा तथा विनायक एवं स्कन्द की शान्ति अन्य दो सामों द्वारा विहित हैं।[1] इस प्रकार ऐन्द्रजालिक एवं आभिचारिक विधि–विधानों के परिचय के लिए इस ब्राह्मण का विशेष महत्त्व है।

1– सामविधान ब्राह्मण – 1/4/6–19

4– आर्षेय ब्राह्मण –

सामवेदीय कौथुम शाखा का यह चतुर्थ ब्राह्मण ग्रन्थ है। यद्यपि 'आर्षेय' नाम से ही विदित होता है कि यह ग्रन्थ साम मंत्रों के ऋषियों का विवरण प्रस्तुत करता है, किन्तु वास्तविकता में सामगान के ऋषियों का उतना अधिक वर्णन नहीं करता और न ही यह 'उद्गाता' ऋषियों की प्रामाणिक सूची ही प्रस्तुत करता है। इसमें सामगानों के प्रामाणिक नाम अवश्य दिये हैं। ये सामगान प्रायेण अपने प्रणेता ऋषियों के नामों को अभिव्यक्त करते हैं। इस प्रकार इसका नाम सार्थक ही है, क्योंकि इसका प्रतिपाद्य विषय साम गीतों के गायक ऋषियों से सम्बद्ध है।

सामवेद की चार प्रकार की सामगीतियों में से प्रथम दो उदाहरणार्थ, ग्रामगेय एवं आरण्यक ही आर्षेय की प्रमुख गीतियॉ हैं। सामवेद संहिता के सम्पूर्ण पूर्वार्चिक में ये दोनों ही सामगान व्यवहृत हैं। इस ग्रन्थ में 'ऊह' एवं 'ऊह्य' अर्थात् रहस्य का प्रतिपादन नहीं किया गया है, जो कि उत्तरार्चिक पर आधृत है। 'आर्षेय ब्राह्मण' की वर्णन शैली सूत्र पद्धति पर है जो परवर्ती सामवेदीय ब्राह्मण –ग्रन्थों की विशिष्टता रही है। यह ग्रन्थ तीन प्रपाठकों में विभक्त है। प्रथम प्रपाठक में 28, द्वितीय प्रपाठक में 25 तथा तृतीय प्रपाठक में 29 खण्ड हैं।

अन्य सामवेदीय अनुब्राह्मणों के समान, विद्वानों का आर्षेय ब्राह्मण के विषय में भी विचार है कि यह स्वतंत्र ग्रन्थ न होकर विशालकाय सामवेदीय महाब्राह्मण का उसी प्रकार से एक भाग है, जैसे– विभिन्न पर्व महाभारत के भाग मात्र है। प्रो0 बे0 रा0 शर्मा का अभिमत [1] है कि कम से कम देवताध्याय ब्राह्मण और आर्षेय ब्राह्मण तो किसी एक ग्रन्थ के दो भाग हैं, जिनमें क्रमशः सामों के ऋषियों और देवों का निरूपण हुआ है। इसका द्योतन देवताध्याय ब्राह्मण के अन्तिम सूत्र से भी होता है– 'स्वस्ति देवऋषिभ्यश्च'। सायण ने यों तो अपनी भाष्य–भूमिकाओं में आर्षेय ब्राह्मण और देवताध्याय ब्राह्मण का उल्लेख पृथक्–पृथक् स्वतंत्र ग्रन्थों के रूप में किया है, किन्तु देवताध्याय के समापन के समय आर्षेय ब्राह्मण से एक सूत्र को उद्घृत करते हुए वे दोनों को दो खण्ड मात्र मानते हुए प्रतीत होते हैं – 'पूर्वस्मिन् खण्डे तत्सवितुरित्यास्यां साविनयां गायत्रं गीतम्। तस्य च देवता उक्ताः। आर्षेये च अथातयामत्वं ऋषयश्च प्रतिपादिताः गानप्रकारस्य च लक्षणमुक्तं प्रथमायां वा। [2] देवताध्याय ब्राह्मण की एक कारिका [3] पर भाष्य करते समय सायण पुनः दोनों की एकता का स्मरण कराते हैं– 'यद्वा साम्नाम् ऋषिदेवतयो

1– आर्षेय ब्राह्मण इन्ट्रोडक्सन – पृष्ठ 11, 13

2– आ0 बा0 1.5

3– ऋषीणां विषयज्ञो यः स शरीराद् विमुच्यते।

अतीत्य तमसः पारं स्वर्गे लोके महीयते।। देवता0 ब्रा0 324

रूभयोरप्यपेक्षितत्वात् तदुभयप्रतिपादकार्षेयदेवताध्यायाख्यग्रन्थद्वयस्य एकत्वाभिप्रायेण ऋषीणां विषयज्ञ इत्युपन्यास'।

देवताध्याय ब्राह्मण के विषय में प्रायः यह मान्यता रही है कि उसमें मात्र तीन खण्ड हैं विद्वानों का विचार है कि देवताध्याय ब्राह्मण के तृतीय और चतुर्थ खण्ड 'आर्षेय–देवताध्याय ब्राह्मण' नामक एक ही ग्रन्थ के, सामान्यतः 'आर्षेय– नाम से प्रसिद्ध रहा है और देवताध्याय जिसका एक अध्याय मात्र है, अन्तिम अध्याय है।

'आर्षेय' ग्रन्थ का मूल पाठ सन् 1874 में सत्यव्रत सामश्रमी ने प्रकाशित किया था।

तदनन्तर ए0 सी0 बर्नेल ने रोमन लिपि मे सन् 1876 में 'आर्षेय ब्राह्मण' का संस्करण सायण भाष्य के साथ निकाला था। केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरूपति से सन् 1984 में बे0 राम चन्द्र शर्मा ने सायण भाष्य सहित इस ग्रन्थ का प्रकाशन टिप्पणी आदि सहित किया है।

आर्षेय ब्राह्मण में ग्रामगेयगानों का उल्लेख संहितोक्त क्रम से है। आर्षेय ब्राह्मण के अनुसार साम–गानों के ऋषि – नामों और उनके गोत्रों के ज्ञान से स्वर्ग, यश, धनादि फलों की प्राप्ति होती है– 'ऋषीणां नामधेयगोत्रोपधारणम् स्वर्ग्यं यशस्यं धन्यं पुण्यं पुत्र्यं पशव्यं ब्रह्मवर्चस्यं स्मार्त्तमायुष्यम्' [1] ,इस ब्राह्मण

1– आर्षेय ब्राह्मण – 1.1.1–2.

का अध्ययन प्रातः प्रातराश से पूर्व होना चाहिए – 'प्राक् प्रातराशिकमित्याचक्षते' [1]

5 देवताध्याय ब्राह्मण –

'देवताध्याय ब्राह्मण' अथवा 'दैवत ब्राह्मण' सामवेदीय ब्राह्मणों में अति लघुकाय ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में कुल तीन खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में 26, द्वितीय खण्ड में 11 और तृतीय खण्ड में 25 कण्डिकाएं हैं। प्रथम खण्ड में देवताओं का वर्णन है। प्रथम कण्डिका के अनुसार साम–देवताओं का नाम –निर्देश इस प्रकार है – अंगिरस्, पूषा, सरस्वती और इन्द्राग्नी तथा इन देवताओं की प्रशंसा में गेय सामों के विशिष्ट नाम भी दिये गये हैं। द्वितीय खण्ड में छन्दों के देवता तथा वर्णों का विशेष वर्णन है। तृतीय खण्ड में छन्दों की निरूक्तियां दी गयी हैं। इन निरूक्तियों में से अनेक निरूक्तियॉ यास्क ने अपने निरूक्त में ग्रहण की है (7/12, 13) । यह खण्ड भाषा शास्त्र की दृष्टि से बड़े महत्त्व का है, क्योंकि छन्दों के नाम का निर्वचन बड़े ही प्रामाणिक ढंग से किया गया है। 'गायत्री' छन्द के नाम का अर्थ है– स्तुति अर्थ वाले गै धातु से निष्पन्न होने से देवताओं के प्रशंसक तथा वेद समुदाय को गाने वाले ब्राह्मण से उत्पन्न होने वाला छन्द। इसी प्रकार अन्य छन्दों के भी निर्वचन उपलब्ध होते हैं।

बर्नेल ने इसका प्रथम सम्पादन 1873 ई0 में कियाथा। तदन्तर 1881 में जीवानन्द विद्या सागर ने सायण भाष्य के साथ प्रकाशित किया और 1965 ई0

1– आर्षेय ब्राह्मण – 1. 1. 4

में केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरूपति से एक संस्करण प्रकाशित हुआ। सम्पूर्ण देवताध्याय ब्राह्मण में सूत्र–शौली का प्रयोग हुआ है।

6 – उपनिषद् ब्राह्मण –

'उपनिषद् ब्राह्मण' दो ग्रन्थों का मिश्रित नाम है। प्रथम ग्रन्थ 'छान्दोग्य ब्राह्मण' अथवा 'मंत्र ब्राह्मण' के नाम से जाना जाता है। इस ग्रन्थ में दो प्रपाठक हैं। प्रत्येक प्रपाठक में आठ–आठ खण्ड हैं। दूसरा ग्रन्थ 'छान्दोग्य उपनिषद्' है। इसमें आठ प्रपाठक हैं। 'मंत्र ब्राह्मण' को सत्यव्रत सामश्रमी ने कलकत्ता से सन् 1947 ई0 में प्रकाशित किया था। दुर्गामोहन भट्टाचार्य ने कलकत्ता से ही सन् 1958 ई0 में 'छान्दोग्य ब्राह्मण' का प्रकाशन किया था।

'मंत्र ब्राह्मण' में कुल 257 मंत्र हैं। गुणविष्णु ने गृह्यसूत्रों से 11 मंत्र लेकर इसमें और जोड़ दिये हैं। इस ब्राह्मण के प्रथम प्रपाठक में विवाह, गर्भाधान, मुण्डन, उपनयन आदि गृह्य संस्कारों में प्रयुक्त होने वाले मंत्रों का संग्रह है। द्वितीय प्रपाठक में दर्शपूर्णमास, अग्राह्यणी कर्म, भूतबलि, देवबलि, पिण्डदान, होम, नवगृह प्रवेश आदि से सम्बद्ध अनेक मंत्र दिये गये हैं। मंत्रों की भाषा सरल , सुबोध एवं प्रसाद पूर्ण है। इसके दो भाष्य हैं– गुणविष्णु और सायण भाष्य।

गुणविष्णु का भाष्य मंत्रों के गूढ़भाव को संक्षेप में प्रगट करने में सक्षम है। उन्होने ऋषि, देवता, छन्द और मंत्र का विनियोग सर्वत्र दर्शाया है। अर्थ् के

महत्त्व को दर्शाने के लिए उन्होने 'स्थाणुरयं भारहारः किलाभूत' (आर्षेय ब्राह्मण 3; निरू0 118) मंत्र को उद्घृत करते हुए अपने भाष्य का आरम्भ किया है और उसी के अनन्तर ऋषि, छन्द आदि के महत्त्व को दर्शाने के लिए 'यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दों दैवत ब्राह्मणेन मंत्रेण याजयति वाऽध्यापयति वा स्थाणुं वर्च्छति .... ; इत्यदि (आर्षेय ब्राह्मण 1/1) उद्घृत किया है। सर्वत्र उन्होंने अर्थ की स्पष्टता के साथ ऋषि, छन्द, देवता और विनियोग को संक्षिप्त रूप में ही बतलाने का स्तुत्य प्रयास किया है।

सायण का भाष्य गुणविष्णु के भाष्य का अनुर्वतन करता है; विशेषता उनमें यह है कि वह उतना संक्षिप्त न हो कर विषद् है।

छान्दोग्योपनिषद –

यह उपनिषद् ब्राह्मण का द्वितीय ग्रन्थ है। छा0 ब्रा0 में मंत्र भाग के अतिरिक्त आठ प्रपाठको अथवा अध्यायों में सुप्रसिद्ध छान्दोग्योपनिषद् है। छा0 उप0 और केनोपनिषद् के शान्ति पाठ एक हैं, इस आधार पर कतिपय अध्येताओं ने इसे तवलकार शाखीय बतलाया है। [1] किन्तु यह पूर्णतया कौथुम शाखीय है, क्योंकि शंकराचार्य ने इसे 'ताण्डिनामुपनिषद्' के रूप में ही उद्घृत किया है।

इस ग्रन्थ में उपनिषद् सम्बन्धी विषयों का विस्तृत विवेचन है। शंकराचार्य

1– द्रष्टव्य गीता प्रेस, गोरखपुर के संस्करण की प्रस्तावना।

ने इसपर भाष्य –प्रणयन किया है, जिसके कारण इसका महत्त्व स्वयमेव स्पष्ट है। उपनिषद् के प्रथम पॉच अध्यायों में विभिन्न उपासनाओं का मुख्यतया वर्णन है और अन्तिम तीन अध्यायों में तत्त्वज्ञान था। इसमें अनेक महत्त्वपूर्ण आख्यान और उपाख्यान आयें हैं, यथा–शिलक, दाल्भ्य और प्रवाहण का संवाद, उपस्ति का आख्यान, शौवसामसम्बन्धी उपाख्यान, राजा जानश्रुति और रैक्व का उपाख्यान, सत्यकाम का उपाख्यान, केकय अश्वपति का आख्यान इत्यादि।

सामगान की दार्शनिक अधिष्ठान–परक व्याख्या करते हुए ओङ्कार तथा साम के निगूढ़ स्वरूप का विवेचन किया गया है। शैव उद्गीथ मे भौतिक प्रयोजनो से प्रेरित होकर यज्ञानुष्ठान और साम–गान करने वालों पर व्यंग्य किया गया है। इसमें सम्भवतः सामविधान ब्राह्मण और षड्विंश ब्राह्मण के अद्भुत शान्ति प्रकरण में विहित विभिन्न अभिचार और काम्यकर्मो की ओर संकेत है।

7– संहितोपनिषद् ब्राह्मण –

साम मंत्रों के गूढ़ रहस्यों का प्रतिपादन करने वाला यह ब्राह्मण ग्रन्थ एक विशिष्ट ग्रन्थ है। इसमें एक प्रपाठक है जो पॉच खण्डों में विभक्त है और प्रतिखण्ड सूत्रों में विभक्त है। 'संहिता' का साधारण अर्थ है मंत्रों का समुदाय (जैसे–ऋक् संहिता आदि), परन्तु यहॉ इसका तात्पर्य है साम के गायनों की संहिता, क्योंकि इनमें भी सातत्य विद्यमान रहता है। इसी अर्थ में

यह शब्द यहाँ व्यवहृत किया गया है। प्रथम खण्ड में त्रिविध गान –संहिताओं के स्वरूप तथा फल का विवरण है। संहिता तीन प्रकार की होती है – (क) देवहू संहिता (ख) वाक्शबहू संहिता और (ग) अमित्रहू संहिता; जिनमें प्रथम संहिता कल्याणकारिणी होती है तथा अन्तिम दोनों अमंगलप्रदा हैं। द्वितीय और तृतीय खण्डों में गान संहिता के विधि, स्तोम, अनुलोम –विलोम स्वर और अन्यविध स्वरों का विस्तृत विवेचन है। यह विषय सातिशय वैज्ञानिक हैं और साम-गायन के मर्म का उद्धाटन यहाँ पूरे विस्तार के साथ किया गया है। तृतीय खण्ड के अन्तिम भाग में गुरु तथा की योग्यता का विवेचन तथा पात्र में दान की भूयसी प्रशंसा की गयी है। चतुर्थ तथा पंचम खण्ड का विषय पूर्वोक्त तथ्य का पूरक है। इस प्रकार साम गायन का रहस्य समझने के लिए यह ब्राह्मण महत्त्वपूर्ण है। इसीलिये इसके टीकाकार द्विजराजभट्ट की संस्तुति है– 'सामब्रह्मरसज्ञानां विशुद्ध ज्ञानहेतवे, अर्थात साम ब्रह्म के रस जानने वालों को इस ब्राह्मण के अध्ययन से अपने विषयों के विशुद्ध ज्ञान निश्चित रूप से होता है।

इस पर दो भाष्य प्राप्त होते हैं– (क) सायण भाष्य, केवल प्रथम खण्ड तक ही उपलब्ध हैं। (ख) विष्णु भट् के आत्मज द्विजराज भट्ट रचित भाष्य। सायण भाष्य संक्षिप्त है, लेकिन द्विजराजभाष्य विस्तृत है। विषम साम गायन के गम्भीर तत्वों का ज्ञान इन टीकाओं की सहायता से भलीभाँति कियाजा सकता

है।

डा0 बे0 रा0 शर्मा ने सायण –भाष्यगत अनेक त्रुटियों का उल्लेख करते हुए अभिमत व्यक्त किया है कि संहितोपनिषद् ब्राह्मण पर प्राप्त सायण–भाष्य वस्तुतः सायण–प्रणीत नहीं है। [1]

यह ब्राह्मण कभी बहुत ही प्रसिद्ध था। निरूक्तकार ने अपने ग्रन्थ (2/4) में 'विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम' आदि मंत्रों को इसी ब्राह्मण के तृतीय खण्ड में से उद्घृत किया है। इसी मंत्र का भावानुवाद मनुस्मृति (2/114) में मनु ने भीकिया है। इससे स्पष्ट है कि यह ब्राह्मण निरूक्त तथा मनुस्मृति से प्राचीनतम है।

8– वंश ब्राह्मण –

वंश ब्राह्मण सामवेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों में सर्वाधिक लघुकाय ग्रन्थ है। इसमें प्रपाठक नहीं है। सामवेद के इस ब्राह्मण में साम–सम्प्रदाय प्रवर्तक श्रषियों और आचार्यो की वंश – परम्परा दी गयी है। ग्रन्थारम्भ में ब्रह्मा, ब्राह्मणों, ऋषियों और देवों–वायु, मृत्यु, विष्णु और वैश्रवण को नमस्कार किया गया है। सायण के अनुसार ये सभी परापर गुरू हैं। तदनन्तर प्रथम दो खण्डों में शर्वदत्त गार्ग्य, जो परम्परा

1– ऐसा एक स्थल है – अथेतास्तिस्रः संहिताः भवन्ति।

देवहूरेका वाक्शवहूरेकात्रिहुरेका' – सायण ने यहॉ 'अमित्रहू' के स्थान पर 'मित्रहू' पाठ माना है– सन्धि पर बिना ध्यान दिये हुए। उसका अर्थ 'मित्राणामाह्वानशीला' है, जो अनुपयुक्त है।

की अन्तिम कड़ी है, से प्रारम्भ करके कश्यपान्त ऋषि–परम्परा है। कश्यप ने अग्नि से, अग्नि ने इन्द्र से, इन्द्र ने वायु से, वायु ने मृत्यु से, मृत्यु ने प्रजापति से, प्रजापति ने ब्रह्मा से सामवेद को उपलब्ध किया। इस प्रकार सामवेद की परम्परा वस्तुतः स्वयम्भू ब्रह्मा से प्रारम्भ हुयी, जो विभिन्न देवों के माध्याम से कश्यप ऋषि तक पहुँची तथा कश्यप ऋषि से प्रारम्भ परम्परा शर्वदत्त गार्ग्य तक गई।

इस प्रकार उस समय के समाज एंव वैदिक ऋषियों के जीवन के बारे में इस ग्रन्थ से पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है। सर्वप्रथम बर्नेल ने सन् 1873 ई0 में इसे प्रकाशित किया था। तदनन्तर सत्यव्रत सामश्रमी ने 1892 में प्रकाशित किया और 1965 ई0 में केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरूपति से इसका प्रकाशन हुआ।

9– जैमिनीय ब्राह्मण –

सामवेद की जैमिनीय शाखा के इस ब्राह्मण का दूसरा नाम तवल्कार ब्राह्मण है। इस ब्राह्मण का अंशतः सम्पादन बर्नेल ने 1878 ई0 में किया था और इसके छिन्न–भिन्न भागों को एकत्र कर डॉ0 अर्टल ने 1894 ई0 में अमेरिका से प्रकाशित किया। डॉ0 कैलेण्ड ने कुछ अंश जर्मन अनुवाद के साथ भी प्रकाशित किया। तदनन्तर डॉ0 रघुवीर ने 1954 ई0 में सम्पूर्ण अंश का एक विशुद्ध संस्करण निकाला। इस ब्राह्मण में कुल पॉच अध्याय हैं।ब्राह्मणों में शतपथ के सामान यह

ब्राह्मण भी विपुलकाय तथा यागानुष्ठान के रहस्य जानने के लिए नितान्त उपादेय तथा महत्वशाली है। "जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण" भी इस महान् ब्राह्मण–ग्रन्थ का ही एक अंशमात्र है, जो गायत्र्युपनिषद् के नाम से विख्यात है। इसका सम्पादन डॉ ओर्टल ने अमेरिकन ओरियन्टल सोसायटी के जर्नल (भाग 16, 1894) में रोमन अक्षरों में किया है। यह लाहौर से नागराक्षरों में भी प्रकाशित है। [1]

विविध यज्ञों एवं अन्य अनुष्ठानों का विनियोग सहित विवरण इस ग्रन्थ में उपलब्ध है। इसमें यज्ञों के रहस्यों की जानकारी करायी गयी है। प्राणो की उत्पत्ति, मनसचक्षु,श्रोत, एंव वाणी की उत्पत्ति, प्रजापति की सृष्टि, उनकी एक से अनेक होने की कामना, यज्ञ–ऋष्टि, अग्नि–सृजन, पशु–सृजन, सरीसृप, मत्स्य आदि का सृजन, लोक सृष्टि, विद्याओं की उत्पत्ति इन्द्र–सृजन, ग्रीष्म, वर्षा, हेमन्त, वसन्त आदि ऋतुओं का सृजन, अक्षर ऋष्टि, प्रकृति विधान तथा विश्व की अति विशाल ऋष्टियों का वर्णन इस ग्रन्थ में किया गया है।

'प्रपंचहृदय' नामक ग्रन्थ में इस ब्राह्मण ग्रन्थ का विस्तृत परिचय मिलता है। 'प्रपंच हृदय' ग्रन्थ के अनुसार जैमिनीय ब्राह्मण में 1348 खण्ड [2] हैं। इसके अतिरिक्त इसके आरण्यक में पृथक 150 हैं। इस ग्रन्थ का नामकरण सामवेद के आचार्य व्यास के शिष्य जैमिनि के नाम पर हुआ है। जैमिनि का 'तवल्कार' भी एक नाम था।

1– लाहौर सन् 1921 ई0 । दयानन्द महाविद्यालय, संस्कृत ग्रन्थमाला, संख्या 3 ।

2– प्रपंच हृदय – 'तत्प्रमाणम् सहस्रादधिकम् अष्टचत्वारिंशत् उत्तर तत्रयम्' ।

उनके स्तवन में परम्परा प्राप्त एक अतिप्रसिद्ध वाक्य है जिसमें जैमिनि के सुन्दर गीत राग की प्रशस्ति की गयी है।[1]

इस प्रकार सामवेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों में सोमयागों, अभिचार यागों, अन्य अनुष्ठानों और उनके विधि–विधानों के साथ ही विभिन्न उपासनापद्धतियों की भी विस्तार से मीमांसा की गई है। साथ ही सामवेद और उसकी गानप्रक्रिया से सम्बद्ध सूक्ष्मातिसूक्ष्म सैद्धान्तिक और व्यवहारिक दृष्टि से उपयोगी विवरण प्रस्तुत करते हुए महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक और दार्शनिक सामग्री भी संजोई गई है। जहॉ तक इनके विशिष्ट प्रतिवाद्य की बात है, वह सोमयाग और सामगान के चतुर्दिक ही विशेष सीमित हैं।

सामवेद के अनुपलब्ध ब्राह्मण –

डॉ0 बटकृष्ण घोष ने कतिपय ऐसे सामवेदीय ब्राह्मणों के उद्धरण उपलब्ध कराये हैं, जो यद्यपि मूलरूप में प्राप्त नहीं होते, किन्तु उनके उद्धरण विभिन्न ग्रन्थों में हैं[2] – (1) शाट्यायन ब्राह्मण (2) भाल्लवि ब्राह्मण। शाट्यायन ब्राह्मण के 70 उद्धरणों में से अधिकांश ऋग्वेद के सायणभाष्य[3] तथा ताण्ड्य

1– 'व्यक्तं' समस्तमपि सुन्दरगीतरागम् तं जैमिनिं तवलकारगुरुं नमामि।

2– Collection of fragments from lost Brahmanas, Calcutta. 1935 .

3– ऋ0 सं0 – 1.105.10,7.33.7; 891.1., 8.91.5 पर सायण–भाष्य

ब्राह्मण के सायण भाष्य [1] मिल जाते हैं। चार–पॉच उद्धरण ब्रह्मसूत्र के शाङ्कर भाष्य में भी हैं। [2] शाट्यायन ब्राह्मण के बहुसंख्यक उद्धरणों के जैमिनीय ब्राह्मण में उपलब्ध होने से प्रतीत होता है कि शाट्यायन और जैमिनीय ब्राह्मणों का कदाचित् एकीकरण हो गया। प्रो0 कालन्द ने भी इसी प्रकार की सम्भावना व्यक्त की है। [3] सम्भवतः सायण के सम्मुख भी शाट्यायन ब्राह्मण अपने सम्पूर्ण मूलस्वरूप में उपलब्ध नहीं रहा होगा, अन्यथा वे इसको 'शाट्यायनमुनिनां या शाट्यायनेन'–इस प्रकार के एकवचनान्त व्यक्तिवाचक नाम–निर्देश मात्र से

1– शाट्यायनेन स्पष्टमाम्नातम् ईमं इव वा एषा होत्राणां यदच्छावाकों यदच्छावाकमनुसन्तिष्ठेर्तेम इव तुष्टुवानाः स्युरिति।
अतएव शाट्यायनकं यदभ्यवर्त्तन्त तदभीवर्त्तस्याभीवर्त्तत्वम। 20 एतदेव शाट् यायनमुनिभिर्विस्पष्टमाम्नातम् 30 शाट् यायनकादिषु ....
ताण्ड्य ब्राह्मण : 4.2.10; 4.3.2; 4.5.14 और 4.6.23 पर सायण–भाष्य।

2– ब्रह्मसूत्र – 3. 3. 25; 3. 3.26; 4. 1. 16; तथा 4. 1. 17 पर शाङ्करभाष्य।

3– Perhaps the original Shatyayanaka, which is lost to us. was taken over by the Jaiminiyas, either a part or the whole of it and amplified with other pas -sages. Panchaviansha Brahamana, Introduction, Page 18.

उद्धृत नहीं करते।

भाल्लविब्राह्मण –

यह सामवेदीय शाखा का ब्राह्मण है जिसका निर्देश कतिपय श्रौतसूत्रों के अतिरिक्त व्याकरण महा भाष्य [1] तथा काशिका [2] में भी है।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ब्राह्मण साहित्य अत्यन्त विशाल रहा है और इस महती राशि में से अनेक आज उपलब्ध नहीं हैं। [3]

सामवेदीय अनुब्राह्मण –

सामवेदीय ब्राह्मणों का वर्गीकरण पारम्परिक रूप से दो कोटियों में किया जाता है –ब्राह्मण और अनुब्राह्मण। 'अनुब्राह्मण' शब्द पाणिनीय अष्टाध्यायी के 'अनुब्राह्मणादिनिः' [4] सूत्र में है, जिसका अभिप्राय है ब्राह्मण सदृश ग्रन्थ। आठ

1– व्याकरण महाभाष्य (पतंजलि) 4. 2. 104

2– काशिका (4. 2. 66; 4. 3. 105 सूत्रों पर)

3– Dr. V. Raghavan - It may be worth while to remember that Brahamana literature was vast and a good number of Brahamanas remain to be recovered - Foreward, Page 2 .

4– अष्टधायी, 4. 2. 62

सामवेदीय ब्राह्मणों में से 'सामविधान' आर्षेय, देवताध्याय, उपनिषद्, संहितोपनिषद् और वंश ब्राह्मणों को विद्वानों ने अनुब्राह्मण कहा है।[1]

सामवेदीय ब्राह्मणगत आख्यायिकाएँ –

यह निर्विवाद सत्य है कि ब्राह्मण साहित्य एक कर्मकाण्ड परक साहित्य है। इसमें याज्ञिक कर्मकाण्ड का ही प्राधान्य है। वैदिक कर्मकाण्ड की विस्तृत व्याख्या ब्राह्मण ग्रन्थों में भरी पड़ी है। ब्राह्मणों में हमें दो प्रकार की सामग्री मिलती है। एक तो वह जिसे हम विधि के अन्तर्गत स्वीकार करते हैं, दूसरी वह जिसे अर्थवाद कहा जाता है। विधि में यज्ञ–याग की गतिविधियों की व्याख्या एवं उन पर प्रकाश डाला जाता है। अर्थवाद के अन्तर्गत इतिहास, पुराण एवं आख्यान आदि मिलते हैं। वास्तव में आख्यान याज्ञिक क्रिया को सर्वसाधारण के लिए सुलभ एवं ज्ञेय बनाते हैं। साथ ही मानव चरित्र को नैतिकता का संदेश देते हैं। इनका प्रणयन तो प्रायः याज्ञिक विधियों की व्याख्या की दृष्टि से ही किया गया है। ऐसे उपाख्यान भी प्राप्त होते हैं, जिनमें वाक् को स्त्री के आदर्श का प्रतिनिधि बनाया गया है। वस्तुतः उपाख्यानों से दो कार्यों की पूर्णता देखने को मिलती है – एक तो यज्ञों के स्वरूप का स्पष्टीकरण और दूसरा चारित्रिक एवं सामाजिक आदर्शों की स्थापना।

1– सत्यव्रत सामश्रमी – (द्रष्टव्य आर्षेय ब्राह्मण का मुख पृष्ठ) तथा 'ताण्ड्यांश भूतानि ताण्ड्यपरिशिष्टभूतानि वा् अनुब्राह्मणानि वा अपराण्यपि सप्ताधीयन्ते – निरूक्तालोचन, पृष्ठ 197, कलकत्ता, 1907

वस्तुतः यदि हम सूक्ष्मता पूर्वक विचार करें तो यह ज्ञात होगा कि यज्ञ विधियॉ बहुत कठिन थीं। थोड़ी सी भी भूल पर यजमान एवं ऋत्विजों को प्रायश्चित करना पड़ता था। स्वल्प वाचन त्रुटि अथवा आहुति क्रम या मंत्र वक्ता को उसका रहस्यात्मक अर्थ विदित न होने पर यज्ञ नष्ट हो जाता था। इसका मूल्य यजमान के प्राणों तक की अन्तिम गति करने वाला भी हो सकता था। उस युग में वर्तमान की भॉति लेखन कला का इतना प्रचार नहीं था एवं मुद्रण कला से तो लोग सर्वथा अपरिचित ही थे। यही कारण है कि इतने क्लिष्ट और महत्त्वपूर्ण विषय के विवेचन एवं उसे बोधगम्य बनाने में उस युग के विद्वानों को आख्यानों का आश्रय लेना पड़ा था।

वैदिक साहित्य मे भी इन आख्यानों, उपाख्यानों का महत्त्व था। समस्त वैदिक साहित्य में इस प्रकार अनेक उपाख्यान विद्यमान हैं जिनकी विवेचना परवर्ती साहित्य में भी मिलती है। 'ब्राह्मण' साहित्य में यत्र–तत्र बिखरे ये आख्यान उसके शुष्क और नीरस विषय को अति रोचक एवं रमणीय बना देते हैं। इस प्रकार ये आख्यान पाठक के लिए मरूभूमि में उपलब्ध स्वल्प छाया के समान सहायक होते हैं। विधि–विधानों में इसके स्वरूप की व्याख्या ही इन आख्यानों की जननी है, ऐसा यदि कहा जाये तो अनुचित न होगा। लेकिन कभी–कभी इनसे भिन्न रोचक एवं मनोरम तथा सुखकर साहित्यक आख्यान भी प्राप्त होते

हैं जिनका कि यज्ञों के साथ बहुत कम ही सम्बन्ध होता है।

ये आख्यान कहीं–कहीं पर तो अत्यन्त लघु हैं, कहीं–कहीं दीर्धकाय और अन्य किसी–किसी स्थल पर केवल संकेत मात्र ही पाये जाते हैं। यज्ञ के विधि– विधानों को बताने के अतिरिक्त इन कथाओं से उस काल के सामाजिक एवं सांस्कृतिक दशा को जानने में भी सहयोग प्राप्त होता है। स्वल्पकाय लघु आख्यानों में उन कथाओं की गणना कर सकते हैं जो सद्यः विधि की सयुक्तिकता प्रदर्शित करने के लिए उल्लिखित हैं। वास्तव में ये आख्यान किंचिद् भेद से प्रायः सभी ब्राह्मणों में उपलब्ध होते हैं।

गायत्री द्वारा सोमापहरण की कथा प्रायः सभी ब्राह्मणों में पायी जाती है। 'वाणी' से सम्बन्धित अनेक कथाएँ आयी हैं जो बहुत ही रोचक और शिक्षाप्रद हैं। एक कथा के अनुसार गायत्री सोम को देवताओं के पास ले जा रही थी कि गन्धर्वो ने उसका अपहरण कर लिया। देवताओं ने वाक् को भेजा क्योंकि गन्धर्व लोग स्त्रीकामी होते हैं। गन्धर्वो ने स्तुति तथा प्रशंसा से उसे अपनी ओर आकृष्ट करना चाहा। उधर देवों ने गायन तथा वादन द्वारा अपनी ओर बुलाना चाहा। वाक् देवों के कार्य पर प्रसन्न होकर उन्हीं के पास चली गयी, इससे पता चलता है कि स्त्रियाँ आज भी स्तुति की अपेक्षा संगीत से अधिक आकृष्ट होती हैं। यह उनका स्वभाव है।[1]

1– शतपथ ब्राह्मण – 3/4/1/12, तैत्तिरीय ब्राह्मण – 1/1/3/10

'ताण्ड्य ब्राह्मण' [1] में कथा आयी है कि किस प्रकार एक बार वाणी देवताओं के पास से चली गयी और जल में प्रविष्ट हो गयी। देवताओं के बहुत मॉगने पर भी वृक्षों ने वाणी को नहीं लौटाया तब उन्होंने वक्षों को काट गिराया, परन्तु वाणी तब भी नहीं निकली। वह–'दुन्दुभि' 'वीणा' 'अक्ष' व तूण' में विभाजित हो गयी। इसी प्रकार की अनेक कथाएं आयीं हैं।

कुछ आख्यान देवताओं द्वारा सहस्र सूक्त के लिए 'आजि' करने एवं उसमें अश्विन कुमारों की विजय से सम्बन्धित है। 'यज्ञ में भाग प्राप्त करने के लिए 'आजि' का उल्लेख आया है।' [2] देवों और असुरों में छोटी–छोटी बात पर झगड़ा करने का वर्णन भी मिलता है। यज्ञ का अश्वरूप से देवताओं से दर्भमुष्टि के द्वारा उसका प्रत्यावर्तन [3], अग्नि मंथन के समय घोड़े को आगे रखने का प्राचीन इतिहास देवताओं द्वारा सोमापहरण की कथा वनस्थलों पर आयी जिसे गायत्री अथवा वाणी द्वारा लाये जाने का उल्लेख पाया जाता है।'' [4]

इन लघु आखयानों में कभी–कभी अत्यन्त गम्भीर तात्त्विक बातों का भी संकेत मिलता है जो बाह्मणों के कर्मकाण्डात्मक वर्णन से नितान्त पृथक् है। इनमें

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 6/5/10–13

2– ताण्ड्य ब्राह्मण – 7/2/1–2

3– ताण्ड्य ब्राह्मण – 6/7/18

4– ताण्ड्य ब्राह्मण – 9/5/4, शतपथ ब्राह्मण– 3/2/4/1–7

गूढ़ तथा गम्भीर अर्थ का वर्णन किया गया है 'जैमिनीय तथा ताण्ड्य बाह्मणों में अनेकों आख्यान मिलते हैं। वे प्रसंगतः किसी सामोत्पत्ति से सम्बन्धित हैं कि अमुक साम क्यों इस नाम से अभिहित हुआ और सामद्रष्टा ने किस परिस्थिति विशेष में उसका दर्शन किया। इन छोटी–छोटी संकेतात्मक कथाओं से उस काल की सामाजिक एवं सांस्कृतिक दशा के विषय में जानने में मदद मिलती है। उदाहरणतया 'अपास्य' द्वारा राजा 'सुदस' की घोड़ियों को बदल लेना।[1]

"ताण्ड्य ब्राह्मण"[2] में वर्णन मिलता है कि इन्द्र ने दधीचि ऋषि की अस्थियों को लेकर उनसे अपना वज्र बनाया था।" इस उपलब्ध संकेतात्मक कथा से उस पौराणिक कथा का सूत्र मिलता है, जिसमें इन्द्र ने दधिचि ऋषि से उनकी अस्थियों को माँगकर असुरों को मारने के लिए वज्र बनाया था।"

वैसे तो 'जैमिनीय ब्राह्मण' कथाओं का भण्डार है, इसमें कुछ कथाएँ अत्यन्त रोचक एवं कहानी कला की दृष्टि से अत्यन्त उच्चकोटि की हैं। इनसे उस युग की सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति को समझने में सहायता मिलती है। वास्तव में इन कथाओं का सम्बन्ध विभिन्न सामों से है जैसे – –विंशेक' साम से सम्बन्धित कण्व नार्षद की कथा, सौमित्र साम से सम्बन्धित दीर्घ जिह्वी और

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 11/8/8, जैमिनीय ब्राह्मण – 3/23

2– ताण्ड्य ब्राह्मण – 12/8/6

सुमित्र की कथा, सौत्रवस साम से सम्बन्धित इन्द्र और [1] कुत्स की कथा।

'कण्व नार्षद' के आख्यान से मालूम होता है कि उस युग में वर्ण व्यवस्था के बन्धन ढीले पड़ गये थे। आर्य और अनार्यों के मध्य वैवाहिक सम्बन्ध होने लगे थे। इसी प्रकार की अन्य अनेक कथाएँ मिलती हैं। [2]

षड्विंश ब्राह्मणगत आख्यान –

षड्विंश ब्राह्मण में मात्र 24 आख्यान प्राप्त होते हैं, जिनकी विषय–वस्तु सृष्टि–प्रक्रिया, यागानुष्ठान तथा देवतत्व आदि है। दो आख्यान इन्द्र के प्रणय प्रसंगों से अनुस्यूत हैं। इन्द्र की प्रेमिका और वृषणश्व मेन की पुत्री मेनका का आख्यान इनमें से प्रथम है। इन्द्र की दूसरी प्रेमाख्यायिका अहल्या के विश्रुत प्रंसग से सम्बद्ध है जो सर्वप्रथम सम्भवतः इसी ब्राह्मण में उपलब्ध होती है – (1. 1. 1. 20–23)। इन्द्र को अहल्या का जार कहा गया है। अहल्या मित्रा की पुत्री थी और कुशिक गोत्रोत्पन्न ब्राह्मण गौतम उनके पति थे। जार होने का अवसर उन्हें गौतम का वेश और रूप धारण करने पर प्राप्त हुआ जो उन्होंने असुर–भय प्रदर्शित कर गुप्तचर होने के निमित्त गौतम की अनुमति से धारण किया था। तब से लोक में उन्हें भी 'गौतम' कहा जाने लगा।

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 14/6/8

2– ताण्ड्य ब्राह्मण – 12/1/10–11, 13/2/12

अन्य आख्यायिकाओं का विवरण इस प्रकार है–

(1) सृष्टि–विषयिणी आख्यायिकाएँ –

सृष्टि से पूर्व ब्रह्म और सुब्रह्म का अस्तित्व – (1. 1. 1); प्रजापति के द्वारा तीन वेदों की सृष्टि और उनसे भूः आदि व्याहृतियों का अविर्भाव (1. 5. 7), तपोऽनुष्ठान से प्रजापतियों में देव–सृष्टि का विचार उदित हुआ–तदनन्तर उनके द्वारा दिन में देवों और रात्रि में असुरों की सृष्टि – (5. 1. 1), देवों की स्वर्ग–कामना से की गई तपस्या से लोकत्रयात्मक रस का उद्भव, तदनन्तर लोकों द्वारा की गई तपस्या से वेदत्रयी की उत्पत्ति, वेदों की तपस्या से गार्हपत्यादि अग्नियों की उत्पत्ति, अग्नियों की तपस्या से सहस्र शिर, सहस्र चरण और सहस्र नेत्रयुक्त पुरुष की उत्पत्ति, मृत्युरहित यह पुरुष ही अग्निहोत्र कहलाया – (5. 1. 2–5) – इत्यादि।

(2) प्रतीकात्मक आख्यायिकाएँ –

षड्विंश ब्राह्मण में उपर्युक्त आख्यायिकाओं अतिरिक्त इन्द्र के द्वारा कण्व के युवापुत्र मेद्यातिथि का हरण कर स्वर्ग ले जाने की प्रतीकात्मक आख्यायिका भी निबद्ध है। इन्द्र का गौरमृग होकर सोमपान करना भी प्रतीकात्मक प्रतीत होता है (1. 1. 19)।

(3) नैतिक आचारविषयिणी आख्यायिका –

षड्विंश ब्राह्मण में प्राप्त सन्ध्योपासनापरक आख्यान वस्तुतः अनृत–भाषण परित्याग, वेदानुशीलन, प्रणवोपासना और गायत्री–साधना का ही प्रतिपादक है। इसकी पृष्ठभूमि में यद्यपि देवासुर संग्राम ही विहित है – (5. 5. 1–4)।

जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मणगत आख्यायिकाएँ –

ब्राह्मण ग्रन्थों की सामान्य परम्परा के अनुसार प्रकृत ब्राह्मण में भी, प्रारम्भ में सृष्टिविषयक आख्यायिकाएँ हैं जिनमें प्रजापति के द्वारा वेदत्रयी, व्याहृतियों, देवों और लोकों के रस निकाल लेने तथा ओंकार का रस न निकालने की असामार्थ्य का उल्लेख है (1. 1. 1–4); गायत्री के आठ अक्षर उसी ओंकार के आठ अंग हैं – (1. 1. 5–6)। इन्द्र, चन्द्र, रुद्र और समुद्र की श्रेष्ठता उसी ओंकार के ही कारण है तथा वेदत्रयी का भी वही सार है (1. 2. 1)। ओंकार में प्रवेश के कारण ही देवगण मृत्यु और पाप से बच सके – इसका उपादान भी एक आख्यायिका से किया गया है – (1. 4. 4–11)।

कतिपय आख्यायिकाओं में साम–गान की हिङ्कारादि सात भक्तियों का विभिन्न वस्तुओं के साथ समीकरण किया गया है– (1. 3. 1; 1. 10. 1; 1. 11. 1; 1. 12. 1)।

सृष्टिविषयक इन आख्यायिकाओं में विशेष तथ्य यह नहित है कि इनमें वेदत्रयी का अस्तित्व सृष्टि से पूर्व भी प्रदर्शित है। यहाँ तक कि प्रजापति का

अस्तित्व भी वेदत्रयी से निगूढ़ शक्ति सम्पन्न नित्याक्षर ओम् के साक्षात्कार से ही वेदत्व प्राप्त किया।

सामों का विभाजन –

सामों के विभाजन पर सहमत होते हुए भी देवगण उसकी प्रक्रिया पर परस्पर विमत ही रहे। अन्त में प्रजापति के हस्तक्षेप से देवों के मध्य उनकी रूचि के अनुसार साम–विभाजन सम्पन्न हो सका (1. 162)।

देवासुर युद्ध –

देवों और असुरों के मध्य पारस्परिक स्पर्धा और विजय की अभिलाषा के मुख्य कथ्य के आधार पर जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण में अनेक आख्यायिकाएँ निबद्ध हैं (1. 15. 4; 1. 8. 5)।

ऋग्विहीन साम की शक्तिसम्पन्नता –

ऋग्विहीन और मात्र स्तोभाक्षर पर आश्रित साम के गान से देवगण ने स्वर्ग–प्राप्ति की (–1. 4. 1–2)। इस गान से उन्हें अपनी खोई हुई श्री भी प्राप्त हुई।

देवों के मध्य पारस्परिक श्रेष्ठता के लिए विवाद –

अग्नि, वायु, आदित्य, प्राण, अन्न और वाक्–इन छः देवों के मध्य पारस्परिक श्रेष्ठता के लिए विवाद हुआ। इनमें से प्रत्येक अपने को श्रेष्ठ बतला रहा था और

उसके लिए युक्तियाँ दे रहा था।

अन्त में उन्होंने अनुभव किया कि उनमें से प्रत्येक अन्योन्याश्रित है –

'एता वै किल सर्वा देवताः। एकैकामेवानुस्मः। स यन्नु नः सर्वासां देवतानामेकाचन न स्यात् तत् इदं सर्वं पराभवेत्।'

इस प्रकार उन्होंने साथ रहकर श्रेष्ठ बनने का निश्चय किया (4. 8. 1–3)।

सुदक्षिण क्षैमि, प्राचीनशालि और दो जाबालों की आख्यायिका –

ये सभी सहपाठी थे। इनमें से प्राचीनशालि और दो जाबालों के द्वारा बिना अर्थ–ज्ञान–पूर्वक वेद–पाठ करते रहने के कारण सुदक्षिण क्षैमि उनसे प्रायः यज्ञ विषयक विवाद करता रहता था, जिससे वे चिढ़ जाते थे। एक दिन तीनों ने सुदक्षिण क्षैमि को 'शूद्र दूरनूचान' कहकर अपमानित किया। सुदक्षिण ने कुरू–पांचालों की समिति के सम्मुख उन्हें शास्त्रार्थ करने की चुनौती दी। उस समिति के मान्य विद्वानों के सम्मुख उसने तीन जटिल प्रश्न रखे, जिनका सम्बद्ध जीवन–मृत्यु से था।

वहाँ उपस्थित विद्वानों में से कोई भी इनके उत्तर न दे सका। अन्त में एक विद्वान व्यक्ति काण्डविय की खोज की गई, जिन्होंने सभी प्रश्नों के समुचित उत्तर देकर विद्वन्मण्डली को सन्तुष्ट किया (3. 2. 2.5)।

यह आख्यायिका इस तथ्य की द्योतक है कि उस युग में ब्रह्मणों अथवा द्विजों के साथ अद्विज विद्यार्थी भी विद्या–संस्थानों में हुआ करते थे, यद्यपि अपनी योग्यता के प्रदर्शन के लिए उन्हें कठिन संघर्ष करना पड़ता था।

भगेरथ ऐक्ष्वाक की आख्यायिका –

राजा भगेरथ ऐच्छवाक किसी काम्ययाग के अनुष्ठान के लिए श्रेष्ठ ब्राह्मणों की खोज में थे। उसी अन्तराल में कुरु–पांचाल जनपदों के ब्राह्मण उनके पास गये, जिनसे सामान्य शिष्टाचार के अनन्तर राजा ने पॉच यागविषयक प्रश्न पूछे, जिनके समुचित उत्तर बक दार्भ्य ने दिए। दार्भ्य को कुरु–पांचाल जनपद के तत्कालीन ब्राह्मणों के मध्य श्रेष्ठ अनूचान समझकर राजा भगेरथ ऐक्ष्वाक ने अपने यज्ञ में उद्‌गातृ पद पर नियुक्त किया – (4. 6. 1. 3)।

जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण की इन आख्यायिकाओं के विवेचन से निम्नोक्त प्रमुख निष्कर्ष निकलते हैं –

(1) आख्यायिंकाओं का प्रमुख प्रतिपाद्य सामगानगत उद्‌गीथ तथा अन्य भक्तियों के बहुविध गौरव का प्रदर्शन है।

(2) इनमें अनेक महत्त्वपूर्ण धार्मिक तथा आध्यात्मिक विश्वासों की प्रस्तुति है।

(3) आख्यायिकाओं का अधिष्ठान रहस्यात्मक तथा दार्शनिक है।

छान्दोग्योपनिषद्गत आख्यायिकाएँ –

छान्दोग्योपनिषद् के प्रथम पॉच अध्यायों में ओंकार एवं अन्य साम भक्तियों तथा सामोपासनाओं का ही अत्यन्त विराट् अधिष्ठान पर विवेचन है, अतएव तद्गत आख्यायिकाओं में भी उद्गीथ एवं विभिन्न साम–भक्तियों के अधिदैवत एवं आध्यात्मिक दृष्टि से निरूपण की चेष्टा परिलक्षित होती है।

इन्द्रियों की अपेक्षा प्राण की भी उत्कृष्टता का प्रदर्शन आख्यायिकाओं में अत्यन्त संरम्भपूर्वक हुआ है (1.2–13)। शिलक, दाल्यभ्य और प्रवाहण से सम्बद्ध आख्यायिका मे साम की गति से प्रारम्भ कर आकाशसंज्ञक उद्गीथ की परम उत्कृष्टता का निरूपण हुआ है (1. 8–9)।

छान्दोग्योपनिषद् की अन्य प्रमुख आख्यायिकाएँ इस प्रकार हैं –

उषस्ति का आख्यान – (1.10–11)

कुरुजनपद के इभ्यग्रामवासी विद्वान उषस्ति चाक्रायण को दुर्भिक्ष की अवस्था में महावत के उच्छिष्ट उड़द खाकर प्राण रक्षा करनी पड़ी। आख्यायिका का प्रमुख कथ्य साम–गान की विभिन्न भक्तियों के तात्त्विक ज्ञान की आवश्यकता का निरूपण है। कथा में देश, काल का अच्छा चित्रण है, जिससे सम्पूर्ण कथात्मक परिवेश अच्छा उभरा है और आख्यायिका अत्यन्त सप्राण हो उठी है।

राजा जानश्रुति और रैक्व की आख्यायिका –

श्रद्धालु एवं उदारदानी राजा जानश्रुति पौत्रायण ने अपने प्रासाद के पटल

से मल्लाक्ष नामक हंस के मुख से तत्कालीन प्रमुख तत्वज्ञानी रैक्व की प्रंशसा सुनकर उनकी खोज कराई। विजन के छकड़े के नीचे बैठकर खाज खुजलाते हुए रैक्व को स्वर्णादि भूयसी दक्षिणा के साथ अपनी कन्या को भी समर्पित कर जानश्रुति ने उनसे संवर्ग विद्या का ज्ञान प्राप्त किया।

सत्यकाम जाबाल की आख्यायिका – (4. 4–9)

छान्दोग्योपनिषद् की यह अत्यन्त प्रसिद्ध आख्यायिका है, जिसका प्रयोजन शांकर भाष्य के अनुसार ब्रह्मोपासना में श्रद्धा और तपस्या की अंगरूपता का प्रदर्शन है–

'श्रद्धातपसोर्ब्रह्मोपासनाङ्गत्वप्रदर्शनायाख्यायिका।'

इस आख्यायिका में जननादिगत श्रेष्ठता की अपेक्षा सत्य–भाषणादि नैतिक गुणों पर आधृत श्रेष्ठता को महत्त्व दिया गया है। सत्यकाम की सत्यनिष्ठा से जहाँ उनके आचार्य प्रसन्न हुए, वहीं उनकी श्रद्धा और तपस्या से प्रसन्न होकर वृषभ, अग्नि, हंस और मृद्‌गु ने उन्हें चतुष्पादसम्पन्न ब्रह्मतत्त्व का उपदेश दिया।

उपकोसल और श्वेतकेतु की आख्यायिकाएँ (4. 10) –

शांकरभाष्य के अनुसार उपकोसल की आख्यायिका का प्रयोजन भी ब्रह्मविद्या में श्रद्धा और तप की साधनारूपता का प्रतिपादन है। 15 वर्ष तक

निरन्तर आचार्यकुल में रहने पर भी सत्यकाम ने अपने शिष्य उपकोसल को समावर्तन की अनुज्ञा नहीं दी। उनकी पत्नी ने भी उन्हें एतदर्थ प्रेरित किया, तथापि जब आचार्य द्रवीभूत नहीं हुए, तब उपकोसल ने अनशन प्रारम्भ किया। अन्त में उपकोसल की परिचर्चा से प्रसन्न होकर अग्नियों ने उसे ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया।

आरूणि का पुत्र श्वेतकेतु जब पांचाल सभा में गया तो वहॉ वह राजर्षि जैबलि प्रवाहण के द्वारा पृष्ट परलोकविषयक प्रश्नों के उत्तर न दे सका और पिता के पास लौट आया। तदनन्तर पिता और पुत्र दोनों प्रवाहण के पास गये और परलोकविषयक तत्त्वज्ञान प्राप्त किया (5. 3)।

इनके अतिरिक्त अन्य बहुत सी लघु आख्यायिकाऍ छान्दोग्योपनिषद् में प्राप्त हैं जिनका मूल प्रयोजन तत्त्वज्ञान का सरलता से प्रतिपादन है।

सामवेदीय ब्राह्मणों के उक्त कथाओं तथा आख्यानों के अनन्तर विभिन्न ब्राह्मण ग्रन्थों में निम्न आख्यान देखे जा सकते हैं –

(1) शुनःशेष आख्यान – ऐतरेय एवं शतपथ ब्राह्मण

(2) पुरूरवा–उर्वशी – शतपथ ब्राह्मण

(3) दुष्यन्त–शकुन्तला – शतपथ ब्राह्मण

(4) जल–प्लावन आख्यान – शतपथ ब्राह्मण

(5) वाणी एवं सोम – शतपथ ब्राह्मण

'वशिष्ठ–विश्वामित्र' 'च्यवन भार्गव', 'रात्रि उत्पत्ति' 'सृष्टि उत्पत्ति' एवं 'पर्वत कथा' आदि अन्य उपाख्यान भी क्रमशः शतपथ एवं बृहदारण्याकादि में मिलते है।

उपयोगिता –

इस प्रकार सामवेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों में आख्यायिकाओं की राशिराशि निधि उपलब्ध होती है जिसमें इतिहास, पुराण, लोकतत्त्व और तत्त्वज्ञान की अत्यन्त रोचक प्रस्तुति है।

वस्तुतः आख्यानों में भारतीय विचारधारा के विकास की गाथा निहित है। अनेक आख्यान रहस्यात्मक हैं। याज्ञिक व्याख्याओं को स्पष्ट करते हुए तत्कालिक धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक चित्र ये आख्यान प्रस्तुत करते हैं। इनका अभिप्राय क्या है? यह विषय सोचनीय है। वैदिक व्याख्याकारों की दृष्टि में ये आख्यान रहस्यवादी हैं, किन्तु पं0 बलदेव उपाध्याय ने ''आख्यानों को उनके मानवीय मूल्य से वंचित करना कथमपि न्यायसंगत और उपयुक्त नहीं प्रतीत होता है।'' ऐसा मत व्यक्त किया है। वही सही भी है। यह लिखकर 'उपाध्याय' जी ने रहस्यवादी विचारों का खण्डन किया है।

वस्तुतः आख्यान साहित्य मानवीय कल्याण की भावभूमि पर प्रतिष्ठित है। इन आख्यानों को समाजशासत्रीय निष्कर्ष पर देखने पर हम कह सकते हैं कि

याज्ञिक क्रियाकाण्डों को सर्वसुलभ तथा सर्वज्ञेय बनाने के साथ–साथ नैतिकता का उपदेश देना इनका मूल उद्देश्य रहा है। इन आख्यानों का उद्देश्य मानव को मानवता की शिक्षा देना, राष्ट्र मंगल की कामना, आचार–विचार परिशुद्धि, ईश्वर में आस्था तथा अनैतिकता का दुःखदायी परिणाम प्रदर्शन आदि है। भावी मानव इन्हीं उच्च आदर्शों एवं भावनाओं से युक्त हो, जीवन में प्रतिष्ठा प्राप्त करे, यही शिक्षा एवं विशेषता इन आख्यान साहित्य की अमूल्य निधि है।

इस प्रकार सम्पूर्ण ब्राह्मण साहित्य पर विहंगम दृष्टि डालते हुए हम यह कह सकते हैं कि ये ब्राह्मण साहित्य आख्यानों के विपुल भण्डार हैं। यद्यपि ये कथाएं किसी विशिष्ट कथाक्रम से सम्बद्ध नहीं हैं, तथापि ये लघु एवं दीर्धकाय सम्पूर्ण साहित्य में विकीर्ण कथाएँ एक ही विषय–विशेष यज्ञ की किसी विशिष्ट क्रिया–पद्धति अथवा किसी ऋषि की महत्ता या साम विशेष के महत्त्व एवं उसके उद्गम की कथा से सम्बन्धित हैं। रोचक एवं मनोहारी ये आख्यान ब्राह्मणों के दुरूह विषय को बोधगम्य बनाने में सहायक ही नहीं हैं, अपितु परवर्ती महाभारत, पुराणों एवं लौकिक संस्कृत साहित्य में उपलब्ध होने वाले विशद आख्यान साहित्य के आदिसूत्र भी हैं, इनकी महत्ता अक्षुण्य है, रहेगी भी। अतः ब्राह्मण ग्रन्थों को सरस, रोचक तथा आकर्षक बनाने का बहुत कुछ श्रेय इन्हीं आख्यानों को दिया जाना चाहिए।

तृतीय

अध्याय

'सामवेदीय ब्राह्मणों में यज्ञ–विधान'

'सामवेदीय ब्राह्मणों में यज्ञ–विधान'

''यज्ञ की सामान्य पृष्ठभूमि''

वैदिक यज्ञ अपनी महानता के साथ–साथ अपनी जटिलता में अनुपम है। वास्तव में यह जटिलता सिर्फ कर्मकाण्ड की विधियों में ही नहीं, अपितु विधियों में प्रयुक्त मन्त्रों में भी दिखाई पड़ती है। सामान्य क्रियाओं को भी विधिपूर्वक करना यज्ञ की प्रमुख विशेषता है। किस क्रिया में कौन सा मन्त्र विनियुक्त हो, इसका निर्देश सूत्र ग्रन्थों में है, पर अमुक मन्त्र का विनियोग क्यों किया गया इसका स्पष्टीकरण ब्राह्मण ग्रन्थों में है।

चूँकि ब्राह्मण साहित्य में इन यज्ञों की विस्तृत विवेचना की गई है, साथ–साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से ब्राह्मणयुग में इसकी विवेचना होने से इस शोध निबंध में यज्ञ पर सामान्य प्रकाश डालने का प्रयास शोधकर्त्री द्वारा किया जा रहा है, जो सांस्कृतिक अध्ययन के अन्तर्गत आवश्यक भी है, वही शोधकर्त्री का मुख्य विषय भी है। इसलिए इसकी अवहेलना तो की नहीं जा सकती। यज्ञ ही उस युग के धर्म का प्राण है। इसलिए बिना इनके स्वरूप को समझे, उस युग के धर्म तथा संस्कृति का अध्ययन सर्वांग सम्पन्न भी नहीं हो सकेगा।

महावैयाकरण पाणिनी ने यज्ञ का अर्थ देवपूजा, संगतिकरण और दान

किया है अर्थात् प्राणरूप देवताओं की पूजा या इनका प्रसादन यज्ञ है, दो तत्त्वों को मिलाकर नया तत्त्व बनाना संगतिकरण है। संसार के सभी पदार्थों में आदान–प्रदान की प्रक्रिया चल रही है, यह भी यज्ञ है। इसके प्रवर्तनकर्त्ता देवता हैं, जिनका नाम है– अग्नि और सोम। अग्नि को अन्नाद और सोम को अन्न कहा गया है। 'यज् विस्तारे' धातु से यज्ञ शब्द की उत्पत्ति होती है जिसका अर्थ है– सृष्टि का विस्तार, यही कारण है कि यज्ञ को सृष्टि का मूल भी कहा गया है। देवता भी यज्ञ से शरीर धारण करते हैं।

ऋग्वैदिक होता ऋत्विक् ऋचाओं का पाठ करता था, यजुर्वेदीय अध्वर्यु कर्मकाण्ड देखता था, उद्गाता सामगान करता था और अथर्ववेदी ब्राह्मा यज्ञ कर्म का अध्यक्ष होता था। प्रमुख ऋत्विजों के तीन–तीन सहायक होते थे। स्मार्ताग्नि और श्रौताग्नि– अग्नि के दो भेद थे। स्मार्ताग्नि के अन्तर्गत औपासन होम, वैश्यदेव, पार्णव, अष्टका मासिक, श्राद्ध, श्रावण, शूलमय सात यज्ञ थे। हविर्यज्ञ और सोमयज्ञ श्रौत यज्ञ के दो प्रमुख भेद थे। अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य आग्रयण, निरूढपशुबन्ध, सौत्रामणी, पिण्डपितृयज्ञ आदि हविर्यज्ञ के अन्तर्गत आते थे। सोमयाग के अधीन अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र अप्तोर्याम और पुरुषमेघ थे। राजसूय और अश्वमेघ यज्ञ राजनैतिक महत्त्व के कारण बहुत महत्त्वपूर्ण सोमयाग थे।

यह वैदिक धर्म का मेरूदण्ड अगर कहा जाये तो ज्यादा उचित है।

ब्राह्मणग्रन्थों में यज्ञ संस्था का तो साम्राज्य सा दिखायी देता है। इसमें यज्ञों के नाना प्रकार के अनुष्ठानों का सूक्ष्म तथा विस्तृत विवेचन है। यज्ञों का पूर्ण वर्णन या विवेचन श्रौत तथा गृह्य सूत्रों की सहायता से ही हो सकता है। इसका पूर्ण वैभव वहीं दृष्टिगोचर होता है। यज्ञ को अगर ब्राह्मण धर्म का भी मेरूदण्ड कहा जाये तो कुछ ज्यादा अच्छा है।

किसी भी युग का रहन–सहन, सामाजिक संगठन, आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था को ही समझ लेने मात्र से उस काल का सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन पूर्ण नहीं हो जाता, बल्कि उस युग के निवासियों के धार्मिक विश्वास ध ारणाओं, उनके देवता और उपासना की प्रचलित प्रणाली को भी जानना आवश्यक है। इससे उस युग के लोगों के वैवाहिक विकास के बारे में जानकारी मिलती है। इसलिए इस अध्याय में यज्ञों पर सामान्य जानकारी देने का छोटा सा प्रयास शोधकर्त्री कर रही है।

भारतीय संस्कृति में यज्ञ का स्थान महत्त्वपूर्ण है। यह इहलोक में साक्षत्–ऐश्वर्यरूप [1], पापों और रोगों का नाशक [2] तथा परलोक में स्वर्ग प्राप्ति का साधन [3] एवं अमरत्व को प्राप्त कराने वाला है। [4] इसलिए यही श्रेष्ठतम् कर्म है। [5] इस सर्वोत्तम कर्म को प्रजापति ने सृष्टि के प्रारम्भ में ही देवों और मनुष्यों के पारस्परिक निःश्रेयस के लिए उत्पन्न किया था। [6] इस तरह यज्ञ की महत्ता का वर्णन सर्वत्र देखने को मिलता है।

यज्ञों की परम्परा ब्राह्मण की महान उपलब्धि है। ब्राह्मण युग में यज्ञ का सम्पादन ही धर्म का मूल ध्येय था। यह पुरोहित वर्गो द्वारा प्रचलित यज्ञवाद, समाज के जनजीवन के काफी नजदीक भी था। पुरोहितो नें लोक प्रचलित विचारों और अनुष्ठानों को कर्मकाण्ड के साथ निकाल कर एक नया स्वरूप प्रदान किया। यह यज्ञवाद मानव जीवन के प्रत्येक पहलू पर छाया था। पाक

1– शतपथ ब्राह्मण – 1/7/1/9/14

2– मैत्रायणी संहिता – 1/10/10/14, गीता 3/13, कौशीतकि ब्राह्मण – 5/1

3– तैत्तिरीय संहिता – 6/34/7, शतपथ ब्राह्मण – 1/7/3/1 ऐतरेय 1/19

4– मैत्रायणी संहिता – 1/10/17, तैत्तिरीय संहिता – 1/6/8

5– शतपथ ब्राह्मण – 1/7/1/5

6– गीता – 3/10

यज्ञों के अन्तर्गत हुत, प्रहुत और आहुत नामक संस्थाओं में विवाह से लेकर समावर्तन संसकारों की गणना की गयी है। ये सभी गृह्य यज्ञ हैं जिनका प्रत्येक व्यक्ति के जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध भी है। भौतिक जीवन में नाना प्रकार की अन्न, पशु, प्रजा रूपी समृद्धि की प्राप्ति के लिए अनेक यज्ञों का आज भी अनुष्ठान किया जाता है। सोम, हवि तथा पाक तीनों ही संस्थाओं से सम्बन्धित यज्ञ यजमान को भौतिक सम्पदा से सम्पन्न बनाते हैं।

ऋग्वेद में तीन अग्नियों का उल्लेख स्पष्ट रूप से पाया जाता है। [1] एक दूसरी जगह तीन स्थानों पर अग्नि प्रज्ज्वलित करने का वर्णन आया है। [2] गार्हपत्याग्नि का भी स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है। [3] प्रतिदिन किये जाने वाले तीनों सवनों –प्रातः सवन माध्यन्दिन एवं सायं सवन का वर्णन पाया जाता है। [4] वस्तुतः ब्राह्मण साहित्य इस प्रकार के यज्ञों के वर्णनो से परिपूर्ण है।

1– ऋग्वेद– 2/36/4

2– ऋग्वेद– 1/15/5, 5/11/2

3– ऋग्वेद– 1/15/12

4– ऋग्वेद– 3/28/1–3

यज्ञ का उत्स एवं विकास –

'यज्ञ' के उत्स एवं विकास पर विहंगम दृष्टि डालने से यह धारणा बनती है कि यज्ञ उतना ही प्राचीन है जितना कि धरती पर मानव का जन्म। जिस प्रकार प्रजापति अथवा अजन्मा परमेश्वर के मन में 'एकोऽहं बहुस्याम्' का जन्म हुआ जिसके फलस्वरूप जीवात्मा पांचभौतिक कलेवर में प्रस्फुटित हो गया ठीक उसी प्रकार से उस जीवात्मा के भी मन में सनातन परमेश्वर स्वरूप ही बीजरूप में सोया हुआ आध्यात्मिक यज्ञ तत्त्व स्थूल अथवा भौतिक रूप में प्रस्फुटित होकर दृष्ट हुआ।

प्रो0 हाग का अभिमत है कि ऋग्वेद काल में ही यज्ञ न केवल पूर्णतया विकसित हो गये थे, बल्कि उनके प्रतीकात्मक एवं रहस्योद्घाटक अर्थ भी निर्धारित हो चुके थे। उन्होंने अवेस्ता से तुलना करते हुए यज्ञ–विकास प्रक्रिया को स्वीकार किया है। ब्लूमफील्ड का कथन है कि वैदिक कविता यज्ञ–प्रधान है तथा ऋग्वेद के पूर्व ही एक विस्तृत एवं संश्लिष्ट यज्ञ विधान विकसित हो चुका था।[1] आर्थर ए0 मैक्डानल का कहना है[2] कि ऋग्वेदकाल का यज्ञ –विधान ब्राह्मण गन्थों में वर्णित यज्ञ विधान के समान ही था। वह यह भी मानते

1– 'द रेलिजन आफ द वेद', 1908 पृष्ठ 65

2– इनसाइक्लोपीडिया आफ रेलिजन् एण्ड इथिक्स, खण्ड 8 पृष्ठ 312–321 तथा खण्ड 12, पृष्ठ – 610–612

हैं कि ऋग्वेद काल में सोमयज्ञ की प्रर्याप्त जानकारी थी। उनके अभिमत का अनुसरण पी0एस0 देशमुख ने भी किया है जो यह भी मानते हैं कि ऋग्वेद–काल में सोम–यज्ञ पूर्ण रूप से परिचित यज्ञ था।[1] प्रो0 कीथ का कथन है कि ऋग्वेद मे यज्ञ–विधान सम्बन्धी प्रतिपादन अधूरा है जो परवर्ती संहिताओं एवं ब्राह्मण ग्रन्थों से पूर्ण होता है।[2] एच0 ओल्डेन वर्ग ने ऋग्वेद को मुख्यतया यज्ञपरक स्वीकार किया है।

इस प्रकार यद्यपि ऋग्वेद काल में यज्ञ क्रिया पूर्णतया विकसित हो गयी थी, किन्तु कर्मकाण्ड का बहुविध वैशिष्ट्य एवं विभिन्न धार्मिक कृत्यों में निहित तत्त्वों पर व्याख्या करना ब्राह्मणों की ही देन है। यज्ञ में 'ऋत' का सन्निवेश भी ऋग्वेद का एक महत्त्वपूर्ण वैशिष्ट्य है। स्पष्ट है कि यज्ञ न केवल मानव समाज अपितु सम्पूर्ण ब्राह्मण में नित्यता एवं शाश्वतता के अमरतत्त्वों को उद्घाटित करता है। 'ऋत' का दर्शन ब्रह्माण्ड सत्ता का दर्शन बन गया। इस पृष्ठभूमि में समूचे बह्माण्ड में यज्ञ का ही विराट्तम एवं सूक्ष्मतम रूप देखने में ऋषियों की दृष्टि भी समझ में आ जाती है। इस प्रकार यज्ञ के द्वारा देवत्व प्राप्त करने का प्रत्यक्ष मार्ग ज्यों–ज्यों प्रशस्त हो गया त्यों–त्यों हमारी संस्कृति की आध्यात्मिक ऊॅचाइयॉ और ऊर्ध्वमुखी होती गयीं।

1– 'रेलिजन इन वैदिक लिट्रेचर' डॉ0 पी0 एस0 देशमुख

2– 'रेलिजन एण्ड फिलासफी आफ द वेद एण्ड उपनिषद्स', पृष्ठ 39

सामवेदीय ब्राह्मणों के अनुसार यज्ञ संस्था का उद्भव –

यज्ञ संस्था के उद्भव और विकास की दृष्टि से सामवेद के ब्राह्मणों में अनेक महत्त्वपूर्ण संकेत प्राप्त होते हैं। यह कर्म के सुसम्पादन की दृष्टि से गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनीयाग्नि की स्थापना का प्राथम्य सर्वविदित है। षड्विंश ब्राह्मण में कहा गया है ऋग्वेद से गार्हपत्य, यजुर्वेद से दक्षिणाग्नि और सामवेद से आहवनीयाग्नि की उत्पत्ति हुयी – 'ऋग्वेदाद्गार्हपत्यो यजुर्वेदाद्–दक्षिणाग्निः सामवेदादाहवनीयः।' [1] इन्हीं अग्नियों से आगे यज्ञ पुरुष की उत्पत्ति हुयी, जो सहस्र शिरों वाला, सहस्र नेत्रों वाला और सहस्र चरणों वाला था। [2] सामविधान ब्राह्मणगत एक आख्यायिका के अनुसार देवगण प्रजापति के पास गये। उनसे उन्होनें प्रश्न किया कि हमें स्वर्ग–प्राप्ति कैसे हो सकती है? इसपर प्रजापति ने उन्हें यज्ञानुष्ठान का निर्देश देकर कहा कि इससे तुम स्वर्ग–प्राप्ति कर सकते हो – 'ते देवाः प्रजापतिमुपाधावन्। तेऽब्रुवन्। 'कथं नु वयम् स्वर्गं लोकमियाम्' इति। तेभ्य एतान् यज्ञक्रतून् प्रायच्छत्–'एतैः लोकमेष्यथ।'

1– षड्0 ब्रा0 – 5.1.2

2– वही, इस यज्ञ पुरुष से पुरुषसूक्त में उल्लिखित विराट्पुरुष तुलनीय है।

यज्ञ पद्धति के प्रमुख तत्त्व –

वेद सम्मत यज्ञानुष्ठान में दीक्षा, ऋत्विक्गण, वेद, अहिंसा, दक्षिणा, प्रायश्चित्त, शूचिता आदि तत्त्वों का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। अतएव यहॉ संक्षेप में इन पर विचार कर लेना उपयोगी होगा।

(1) दीक्षा– याग प्ररम्भकरने के पूर्व यजमान को कतिपय पवित्र करने वाली कियाएॅ करनी होती हैं । यह किया दीक्षा कहलाती है। यजमान अपनी धर्मपत्नी के साथ ही यज्ञ करने का अधिकारी होता है 'अर्धो वा एव आत्मनः यत्पत्नी' तै0 ब्रा0 (3.3.3.1) अर्धो हवा एष आत्मनो यज्जाया। श0 ब्रा0 (5.1.6.10)। ऐतरेय ब्राह्मण में (32.9–20) बिना पत्नी के यजमान को भी यज्ञ करने का पात्र माना गया है–'तदाहुः अपत्नीको अपि अग्निहोत्रमाहरेत् नाहरे ̄त् इति। आहरेदित्याहुः।. ....अपत्नीको

"अग्निहोत्रं कथं जुहोति। श्रद्धा सत्यं तदिति उतमं मिथुनम्।

श्रद्धया सत्येन मिथुनेन सर्वान् लोकान् जयतीति।।"

सपत्नीक यजमान भी तभी यज्ञ कर सकता है जब वह दीक्षा [1] की क्रिया पूर्ण कर लेता है। दीक्षा के संस्कार से यजमान का एक प्रकार से सुसंस्कृत नया जन्म होता है, जो उसे पवित्र कर आध्यात्मिक क्षेत्र में ऊॅचा उठा देता है। जिससे कि वह देवताओं को हविष् देने योग्य हो जाये। वास्तव में दीक्षा के माध्यम से यजमान

1– यज्ञादु हवा एष पुनर्जायते यो दीक्षते। ऐतरेय ब्राह्मण 34.22

स्वयं को समर्पित कर देता है, 'सर्वाभ्यो वा एष देवताभ्य आत्मानं आलभते यो दीक्षते' (ऐ0 ब्रा0 6.3)। 'हविषी एष भवति यो दीक्षते' शत0 ब्रा0– 3. 3 .4. 21 ।

दीक्षा के परिणाम स्वरूप यजमान (दीक्षित) को पत्नी सहित क्रिया के अतिरिक्त पराङ्मुख रहना पड़ता है। यज्ञ इसलिए आवश्यक माना जाता है जिससे कि दीक्षित यजमान और उसकी धर्म–पत्नी एकाग्रचित्त होकर पवित्र निष्ठा से देवताओं के निमित्त समस्त यागादि क्रियायें निर्विघ्न [1] सम्पन्न कर सकें। जब कभी उन्हें अपरिहार्य कारणवश बोलना पड़ता है तो वे अत्यन्त विनीत एवं सुसंस्कृत वाणी में बोलते थे। इसी प्रकार यजमान को निश्चलभाव से बिना घूमे–फीरे बैठना पड़ता है। वह केवल लघुशंका एवं दीर्घशंका निवारणार्थ ही उठ सकता था। याग की अवधि में वह सामान्य आहार भी नहीं ग्रहण कर सकता था, केवल दूध पी सकता था।

(2) ऋत्विज –

यजमान द्वारा आहूत यज्ञ को सविधि सम्पन्न कराने वाला, दक्षिणाप्राप्त, विद्वान् ऋत्विक् कहलाता है। [2] ऋत्विज बनने का अधिकार केवल ब्राह्मणों को

1– अथवाच यच्छति। वाग्वै यज्ञोडविश्रुब्धो यज्ञं तनवाइत्यथ श0 ब्रा0 1. 1. 2. 2

2– 'ऋतुषु यजतीति ऋत्विक् ऋतापरपर्यायस्य संवत्सराग्नेः पंचमो भागः ऋतुरिच्यते। तान् यजति तैर्वा यजतीति ऋत्विक् यज्ञमधुसूदन, पृष्ठ 3

प्राप्त है यज्ञानुष्ठान को यजमान एवं उसकी पत्नी ही सम्पन्न कर सकती है। नित्य का अग्निहोत्र उनके अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति नहीं कर सकता है। अन्य यागादि क्रियायों के सम्पादन हेतु यजमान को ऐसे व्यक्तियों की सहायता लेनी पड़ती है जो यागादिक कर्मकाण्ड में निष्णात व तपोनिष्ठ हों। ऐसे तपोनिष्ठ व्यक्तियों को ऋत्विक् कहा जाता है। ऋत्विक्गण यज्ञ में सीधे भाग ले सकतें हैं। ऋत्विज अथवा पुरोहित यजमान एवं उसकी पत्नी को यज्ञ में मात्र सहायता ही पहुॅचा सकतें हैं, जबकि यज्ञ करने का अधिकार व दायित्व सीधा यजमान व उसकी पत्नी का होता है। इष्टियों में ऋत्विक्गण [1] अध्वर्यु, होता, ब्रह्मा एवं आग्नीध्र यजमान की मदद करते हैं। पशुयाग में प्रतिप्रस्थाता, प्रशस्ता अथवा मैत्रावरूण नामक दो अन्य ऋत्विजों की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार पशुयाग में उपर्युक्त छः ऋत्विजों के अतिरिक्त निम्नांकित दस अन्य ऋत्विजों को लेकर कुल 16 ऋत्विजों की आवश्यकता पड़ती है–नेष्टा, उन्नेता, अच्छावाक, ब्राह्मणाच्छंसी, पोता, ग्रावास्तुत्, उद्गाता, प्रस्तोता, प्रतिहर्त्ता एवं सुब्रह्मण्य। कभी–कभी

1– चत्वारो ह्येते हविर्यज्ञस्य ऋत्विजः। ब्रह्मा होता है अध्वर्युरग्नीत् । तै0 ब्रा0 3. 3. 8. 7

सत्रहवें सदस्य नामक ऋत्विक् एवं अठारहवें उपद्रष्टा नाम के ऋत्विक् का भी उल्लेख मिलता है।[1]

उपर्युक्त 16 ऋत्विजों को निम्नांकित चार वर्गों में बाटा जा सकता है–

1– अध्वर्युगण – अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा एवं उन्नेता।

2– होतागण – होता, प्रशस्ता अथवा मैत्रावरूण, अच्छावाक एवं ग्रावास्तुत्।

3– उद्गातागण – उद्गाता, प्रस्तोता, प्रतिहर्त्ता एवं सुब्रह्मण्य।

4– ब्रह्मागण – ब्रह्मा, ब्रह्मणाच्छंसी, आग्नीध्र एवं पोता।

ऋत्विजों का संक्षिप्त परिचय तथा उनके कर्त्तव्य इस प्रकार हैं–

अध्वर्यु –

अध्वर्यु यज्ञ क्रिया में प्रमुख ऋत्विक होता है। यह यजुर्वेद का ज्ञाता होता है तथा यजुर्वेद से सम्बद्ध कार्य सम्पादित करता है। शतपथब्राह्मण में अध्वर्यु को मस्तिष्क कहा गया है। उसके मुख्य कार्य यज्ञकर्ता के लिए ग्रहों को ले जाना, हवनादि सामग्रियों को ले जाना तथा यज्ञियघृत का प्रेक्षण करना आदि हैं। वस्तुतः वही यज्ञ का प्रमुख कार्यकर्ता होता है। शतपथब्राह्मण में अध्वर्यु को यज्ञ

1– तस्मा एतस्मै सप्तदशाय प्रजापतये एतत् सप्तदशं अन्नं समस्कुर्वन। य एव सोम्योऽध्वरः। अथ या अस्य ताः षेडशकलाः। एते वै षोडशर्प्विजः। तस्मान्न सप्तदशं ऋत्विजं कुर्वीत। नेत् अतिरेचयानीति। शत0 ब्रा0 10. 2. 8. 19

का पूर्वाद्ध [1] कहा गया है। वही यज्ञ का विस्तार करता है। वह यज्ञ की मुख्य प्रतिष्ठा [2] है। षड्विंश ब्राह्मण के अनुसार वह सूर्य के समान कान्तिमान होता [3] है।

प्रतिप्रस्थाता –

यह अध्वर्यु का प्रथम सहायक होता है। यह निरन्तर अध्वर्यु के साथ रहता है तथा उसी के संकेत पर कार्य करता है। अध्वर्यु तथा प्रतिप्रस्थाता को 'अध्वर्यू' (द्विवचन का रूप अर्थात अध्वर्युयुग्म) कहा जाता है। यज्ञ में अध्वर्युयुग्म का वही स्थान है जो मानव शरीर में दो हाथों का होता [4] है।

उन्नेता –

उन्नेता का कार्य सोम रस को छानकर उसे सोम चषकों में भर कर होम के लिए देना है। होम के बाद वही चषकों को साफ कर भावी यज्ञ के लिए तैयार भी रखता है। द्वादशाह याग में उन्नेता नेष्टा, आग्नीध्र, सुब्रह्मण्या एवं ग्रावास्तुत् को दीक्षित [5] करता है।

1– शा0 ब्रा0 –1. 9. 2. 3

2– तै0 ब्रा0 – 3. 3. 8. 10 'प्रतिष्ठा वा एष यज्ञस्य यदध्वर्यु।'

3– षड्0 ब्रा0 – 2. 5. 3

4– 'अश्विनोः बाहुभ्याम्' तै0 ब्रा0 – 3. 2 2. 1

तदनन्तर स्नातक या ब्रह्मचारी उन्नेता को दीक्षित करते [1] हैं। जैमिनि ब्राह्मण में उन्नेता को विष्णु का स्वरूप माना गया है। [2] इसे प्राण की संज्ञा दी गयी है। [3]

ब्रह्मा—

जो ऋत्विक् व्याहृतियों को जानता है वह ब्रह्मा होने के लिए पात्र है। [4] सम्पूर्ण यज्ञ क्रिया का यह अधीक्षक होता है। सामान्यतया वह यजमान के समीप बैठता है तथा यज्ञ का रक्षक होने के नाते वह समस्त कर्मकाण्ड पर कड़ी दृष्टि रखता है। [5] गोपथ ब्राह्मण के-अनुसार ब्रह्मा अथर्ववेद से सम्बद्ध होता है। [6] सामान्यतया ब्राह्मणों के अनुसार ब्रह्मा को तीन वेदों का ज्ञानी होना चाहिए। [7] वेदि के एक कोनों में ऐसी जगह बैठने हेतु उसका स्थान नियत रहता है जहॉ

1— श0 ब्रा0 12. 1. 1. 10

2— जै0 ब्रा0 — 2. 68

3— श0 ब्रा0 — 12. 1. 1. 11

4— श0 ब्रा0 — 12. 6. 1. 41

5— अथ अध्वर्युः प्रोक्षणीरादाय उपोत्तिष्ठन् आह ब्रह्मन्प्रचरिष्याम ......। ब्रह्मा वै यज्ञस्य दक्षिणत आस्ते अभिगोप्ता। तमेवैतदाह अप्रमत्त आस्स्व इति। श0 ब्रा0 — 14. 1. 3. 2

6— गो0 ब्रा0 — 1. 2. 19; 1. 5. 24

7— ऐ0 ब्रा0 — 5. 33, श0 ब्रा0 — 11. 5. 8. 7, जै0 ब्रा0 — 1. 8. 3. 5. 8. 1

से कि वह सम्पूर्ण यज्ञशाला पर दृष्टिपात कर सके। वह त्रुटि हेतु प्रायश्चित करता है। प्रवर्ग्य इष्टि में अनुमंत्र पड़ता है। वाजपेय भाग में वाजिन साम का गान करता है। सम्पूर्ण यज्ञकर्म ब्रह्मा पर आधृत होता है, उसे सर्वविद् कहा गया है। उसके बिना यज्ञ अधूरा रहता है।

होता –

ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार होता यज्ञ में 'अमुक देवता का आवाहन करो', 'अमुक देवता का आवाहन करो' [1] वाक्य कहता रहता है ' अतएव इसी कारण उसका नाम होता दे दिया गया। होता विविध मंत्रोचार से अग्नि को प्रज्ज्वलित करता है। [2] सोम यज्ञ में वह प्रातरनुवाक का गान करता है तथा यज्ञान्त में तृष्णीशंस सूक्त उच्चरित करता है। [3] रासूय यज्ञ में वह राजा कोउपदेश करता है। [4] ताण्ड्य – ब्राह्मण में होता को सत्य का नाम दिया गया है। [5] होता का कार्य मंत्रो

1– ऐ0 ब्रा0 1. 2 कस्मात् तं होतेत्याक्षत इति यद्वावसतत्रआवाह्यति तदेव होतुः होतृत्वम्।

2– श0 ब्रा0 – 1. 3. 5. 1

3– ऐ0 ब्रा0 – 2. 15 तथा 2. 31

4– ऐ0 ब्रा0 – 7. 18

एवं शास्त्रों का सस्वर उच्चारण करना है।

प्रशस्ता अथवा मैत्रावरूण –

अध्वर्यु के निर्देश पर प्रशस्ता यज्ञ का नियंत्रण करता है। यह 'होतृ' वर्ग के छोटे ऋत्विजों का प्रणेता होता है।[1] इसे यज्ञ के मनस् की संज्ञा दी गयी है।[2] होता के समीप वेदि के बीचोबीच प्रशस्ता औदुम्बर लेकर खड़े होकर अपना कार्य सम्पादित करता है औदुम्बर (गूलर की छड़ी) ही उसकी पवित्र पहचान है। होता की ही भाँति वह भी मंत्रोचार करता है।

अच्छावाक –

इस ऋत्विक् का भी कार्य होता के कार्यकलाप की ही भाँति होता है। यह भी होता का सहायक होता है।[3]

पोता –

इसका भी कार्य होता के कार्य की ही भाँति होता है। यह भी होतृक कहलाता है सोमयाग में यह प्रातः एवं मध्याह्न सवन में मंत्रोच्चारण करता है।[4]

1– ऐ० ब्रा० – 6. 6

2– ऐ० ब्रा० – 2. 5

3– गो० ब्रा० – 1. 4. 6, शत० ब्रा० – 12. 1. 1. 8

4– ऐ० ब्रा० – 6. 16 – 11; कौ० ब्रा० 28. 3

ब्राह्मणाच्छंसी –

यह ऋत्विक् भी होता की ही तरह के कार्यकलाप वाला होतृक कहलाता है। इसका भी मुख्य कार्य मंत्रपाठ करना है। यह तृतीय सवन में इन्द्र और वृहस्पति के मंत्रों का उच्चारण करता है। यह यज्ञशाला में दक्षिण भाग में बैठता है। देवों को असुरों से होने वाले विघ्नभय से बचाने के निमित्त ही यह दक्षिण में आसीन होता [1] है।

नेष्टा –

नेष्टा भी अध्वर्यु की सहायता के लिए होता है। यह सोम याग में पशु के संज्ञपन के बाद यजमान की पत्नी को लाता है। [2] वह त्वष्टा का मंत्र पाठ करता है। [3] वाजपेय याग में वह ग्रहों में रस उड़ेलकर उन्हें यथा स्थान रखता है। वह यज्ञ कर्म में प्रतिप्रस्थाता, पोता, प्रतिहर्त्ता तथा अच्छावाक को दीक्षा देता है। [4]

आग्नीध्र –

आग्नीध्र ब्रह्मा का सहायक ऋत्विक् है। [5] यह अग्नि की देखभाल तथा

1– श0 ब्रा0 – 4. 6. 6. 1–4

2– श0 ब्रा0 – 3. 8. 2. 1

3– ऐ0 ब्रा0– 6. 10

4– श0 ब्रा0 – 12. 1. 1. 7–8; गो0 ब्रा0– 1. 4. 6

5– गो0 ब्रा0 – 1. 4. 6; श0ब्रा0 – 12. 1. 1. 9

विभिन्न वेदियों पर अग्नि को पहुँचाने का कार्य सम्पादित करता है। वह अग्नि को प्रज्ज्वलित करता है।[1] आग्नीध्र को अग्नि का स्वरूप माना गया है।

ग्रावास्तुत –

ग्रावास्तुत होता का सहायक ऋत्विक् होता है।[2] सोमयाग में जिन पत्थरों द्वारा सोमलता को पेरकर सोमरस निकाला जाता है उन पत्थरों की प्रशस्ति –स्तुति में मंत्र पढ़ना ग्रावास्तुत का मुख्य कार्य होता है। वह ऑखों में पट्टी बॉधकर पत्थरों की स्तुति में मंत्रोच्चार करता है।[3]

उद्गाता –

सोमयाग में साम ऋचाओं का गान करने वाले ऋत्विजों का प्रधान गायक उद्गाता कहलाता है। जैमिनीयोपनिषद्, ब्राह्मण के अनुसार वह यजमान की मृत्यु से रक्षा करता है।[4]

प्रस्तोता–

यह उद्गाता का सहायक है। यह भी सामवेद से सम्बद्ध ऋत्विक् है।

1– कौ० ब्रा० – 28.3

2– गो० ब्रा० – 1. 4. 6; श० ब्रा० – 12. 1. 1. 9

3– कौ० ब्रा० – 29. 1

4– जै० ब्रा० – 3. 7. 1. 1

प्रस्तोता साम ऋचाओं का पाठ आरम्भ करता है, उद्गाता ऋचाओं का मध्यभाग गाता है तथा प्रतिहर्त्ता अन्तिम भाग का सस्वर गान करता है। सोमयाग में साम गान हेतु उपर्युक्त क्रम से ये तीनों ऋत्विज बैठते भी हैं। अश्वमेघ यम में अश्व के संज्ञपन के समय वह यम से सम्बद्ध सामगान करता है। [1] इसकी तुलना वाणी से की गयी है। [2] प्रस्तोता वागेव यज्ञः।" इसे प्रजापति का स्वरूप कहा गया है। [3]

सुब्रह्मण्य –

यह उद्गाता का सहायक है। [4]-सोमयाग के प्रारम्भिक दिनों में सुब्रह्मण्य ही इन्द्रदेवता का आवाहन साम ऋचाओं के गान द्वारा करता है। उसका कार्य सुब्रह्मव्याह्वान कहलाता है। ऐतरेय ब्राह्मण में सर्वाधिक वृद्ध व्यक्ति को सुब्रह्मण्य ऋत्विक् बनाया जाता है। [5] यज्ञकर्म में इसे वृषभ की दक्षिणा दी जाती है। [6]

1– तै0 ब्रा0 – 3. 9. 20

2– श0 ब्रा0 – 5. 2. 5. 3

3– ताण्ड्य महाब्राह्मण – 18. 9. 11

4– गो0 ब्रा0 – 1. 4. 6 ; श0 ब्रा0 12. 1. 1 9

5– ऐ0 ब्रा0 – 6. 3

6– ऐ0 ब्रा0 – 6. 3

प्रतिहर्त्ता –

यह भी उद्‌गाता का सहायक ऋत्विक् होता है।[1] इसका मुख्य कार्य प्रतिहार साम गान करना है। यह ऋत्विक् ऋचाओं का अन्तिम भाग गाता है। यह गायों की देखभाल करता है जिससे वे सुरक्षित रहती हैं।[2] प्रतिहर्त्ता को यज्ञ का व्यान कहा गया है।[3] शतपथब्राह्मण इसे भिषक् कहता है।[4]

सदस्य, उपद्रष्टा –

इन्हें वैकल्पिक व्यवस्था में यज्ञ की सहायता एवं निर्देश हेतु चुना जाता है। सूत्रकारों ने इनके कार्य कलाप गिनाया तों है, किन्तु इन्हें ऋत्विक् की पदवी प्रदान नहीं करते।

उपगातागण –

इन्हें उपगाता इसलिए कहा जाता है कि ये भी यज्ञ–क्रिया में सीधा भाग लेते हैं तथाा सामगायकों का साथ देकर साम गायन में सहायता पहुॅचाते हैं।

चमसाध्वर्यु –

सोमरस छानकर नौ अथवा दस प्यालों (कटोरों) आहुति हेतु सुरक्षित रखा

1– गो० ब्रा० – 1. 4. 6; श० ब्रा० – 12. 1. 1. 8

2– श० ब्रा० – 4. 3. 4. 22

3– कौ० ब्रा० – 17. 7

4– श० ब्रा० – 4. 2. 5.3

जाता है। केवल दो ही ऋत्विक् अध्वर्यु एवं प्रतिप्रस्थाता होम करते हैं। अग्नि में सोम की आहुति देने में उक्त सभी प्यालों (कटोरों) से सोम–रस एक साथ निकालना होता है, अतएव उन प्यालों को हॉथ में पकड़े रखने के लिए जिन सहायकों की आवश्यकता पड़ती है, वे चमसाध्वर्यु कहलाते हैं।

शमिता –

जो यज्ञाहुति के निमित्त पशु को प्राणसंयमन द्वारा जीवनाहुति कराने का कार्य करते हैं, वह 'शमिता कहलाता है। 1

(3) वेदि –

यज्ञशाला में वह स्थान जहॉ विभिन्न अग्निकुण्ड स्थित होते हैं, वेदि कहलाता है। पाश्चात्य धाराणाओं के अनुसार वेदि साधारण भूमि से कुछ उन्नत भूमि पर स्थित मानी जाती है। स्पष्टरूप से वेदि का यह अर्थ वैदिक कालीन (वेदि) के अर्थ से भिन्न है। वैदिक कालीन धारणा के अनुसार वेदि वह भूस्थल है जो एक निश्चित माप का तथा शुद्धीकृत होता है। यही भाव 'अमरकोश' में भी सन्निहित है– 'वेदिः परिष्कृता भूमिः' । अमरकोश – 2. 423।

यज्ञ की तीनों विधाओं इष्टि, पशुबन्ध एवं सोमयाग की अपनी अलग–अलग

1– पूर्वमीमांसा सूत्र के अनुसार शमिता अध्वर्यु ही होता है .... 'शमिता च शब्दभेदात्। प्रकरणात् या उत्पत्त्यसंयोगात्' 3. 7. 28, 29 शबरस्वामिन् तस्मात् शमनात् अध्वर्युः।

वेदि होती है। इष्टि में प्रयुक्त की जाने वाली वेदि 'दार्शिकी वेदी' ही अन्य सभी तरह की वेदियों की मानक स्वरूप होती है। अन्य सभी वेदियॉ दार्शिकी की रूपान्तर अथवा संशोधित रूप में हुआ करती हैं। सभी वेदियॉ पूरब –पश्चिम स्थित होती हैं।

दार्शिकी वेदि –

इस वेदि पर नित्य के अग्निहोत्र एवं दर्शपूर्णमासेष्टि सम्पन्न किये जाते हैं। यह सबसे सरल ढंग की वेदि होती है। उस स्थान पर जहॉ यह वेदि निर्मित की जाती है, सर्वप्रथम गार्हपत्य का स्थान चिह्नित किया जाता है। गार्हपत्य कुण्ड गोलाई में होता है। यह ध्यान देने कि बात है की ब्राह्मणों में कहीं भी 'कुण्ड' शब्द का उल्लेख नहीं मिलता, बल्कि उनमें 'आयतन' शब्द का प्रयोग मिलता है। गार्हपत्य के केन्द्र से थोड़ी दूरी पर आहवनीय कुण्ड स्थित होता है। आहवनीय कुण्ड चौकोर होता है। गार्हपत्य के समीप ही दक्षिणाग्नि का स्थान होता है। यह कुंण्ड आकार में अर्द्धगोलाकार होता है। गार्हपत्य एवं आहवनीय के बीच की भूमि दो बन्धों से सीमित कर दी जाती है। यह बन्धा आहवनीय के पश्चिमी किनारे से आरम्भ होता है तथा गार्हपत्य के पूर्वीछोर तक जाता है। परवर्ती लौकिक संस्कृत साहित्य में वेदि को उपमान बनाकर वर्णन किया गया है। महाकवि कालिदास ने कहा है, ' मध्येन सा वेदिविलग्नमध्या' .... (कुमारसंभवम्–1. 37)। कुण्डों की

गहराई चार अंगुलि प्रमाण होती है। वेदि पूर्व अथवा उत्तर की तरफ ढालू होती है। [1]

वरूण प्रघास वेदि –

दार्शिकी वेदि के दक्षिण गार्हपत्य एवं दक्षिणाग्नि के कुण्डों के बिना एक अन्य दार्शिकी वेदि का निर्माण किया जाता है जो वरूणप्रघास वेदि कहलाती है।

सौमिक वेदि –

सौमिक वेदि एक चौकोर आकार की वेदि होती है जो कि यजमान के घुटनों तक ऊँची होती है।

पशुबन्ध वेदि –

आकार में पशुबन्ध वेदि सौमिक वेदि की तरह ही होती है। इसमें उत्तर वेदि तथा महावेदि पर यूप गड़ा होता है, किन्तु कोई मण्डप नहीं होता।

(4) प्रवर्ग्य –

प्रवर्ग्य की क्रिया सोमयाग के प्रारम्भिक दिनों में सम्पन्न की जाती है। प्रवर्ग्य में उबले हुए घी को बकरी तथा गाय के दूध में मिलाकर आहुति दी जाती

प्राचीमुदीचीं प्रवणांकरोति .... दक्षिणतो वर्षीयसी करोति। (तै0 ब्रा0 3. 2. 9. 8–11)

शतपथ ब्राह्मण – 1. 2. 5. 17

है। यही मत प्रो0 कीथ ने अपने ग्रन्थ 'रेलिजन एण्ड फिलासफी आफ वेद एण्ड उपनिषद्स' 2 में पृ0 332 पर व्यक्त किया है। सोमयाग में यह दिन में दो बार किया जाता है। प्रतिदिन प्रातः प्रवर्ग्य के बाद उत्तर–वेदि की एक परत रखी जाती है। उत्तर वेदि में पॉच परते रखी जाती है, अतएव प्रवर्ग्य निरन्तर पॉच दिन तक किया जाता है। प्रवर्ग्य को धर्म भी कहा जाता है। इस क्रिया में वह पात्र जिसमें घृत उबाला जाता है, महावीर कहलाता है। 'वीर' का अर्थ 'अग्नि' है, अतएव महावीर का अर्थ है महा (विशाल) अग्नि। सम्भवतः यही क्रिया 'महा अग्नि' के नाम से ज्ञात रही होगी। तदनुसार पात्र का नाम पड़ गया। यह पात्र विशिष्ट ढंग से निर्मित होता है। जैसे ही पात्र में उबलते, उफनते हुए घी में दूध डाला जाता है, अग्नि की अति विशाल लपटें उत्पन्न होती हैं।

उपसद –

प्रवर्ग्य की महाग्नि की क्रिया के बाद जो क्रिया महाग्नि के शमन हेतु सम्पन्न की जाती है, उपसद कहलाती है।

(5) अंहिसा –

वेदविदों ने यज्ञों में हिंसा एवं अहिंसा विषय पर भी विचार किया है। चार्वाक एवं नास्तिक अति प्राचीनकाल से ही यह मानते आये हैं कि वैदिक यज्ञों में अहिंसा का कोई स्थान नहीं है। कतिपय दार्शनिकों ने भी इस मत का समर्थन

किया है। प्रो0 कीथ ने तो यहाँ तक कहा [1] है कि वैदिक युग में कभी अहिंसा की पूर्ण मान्यता नहीं रही है।

ब्राह्मणों में अनेक यज्ञों का वर्णन किया गया है। इनमें विशिष्ट यज्ञ–पशुओं के वर्णन से यह प्रतीत होता है कि वैदिक यज्ञों में 'अहिंसा' अज्ञात वस्तु थी। 'हिंसा' का विषय बारम्बार जीवन एवं स्थिति के सन्दर्भ में आया हैं। समग्र ब्रह्माण्ड जड़ एवं जंगम तत्त्वों से परिपूर्ण बताया गया है। ये ही स्थिति एवं जीवन को गतिमान् करते हैं।

अश्वमेध यज्ञ में आरण्य–पशुओं का पर्यग्नि–कर्म के बाद अहिंसा के कारण ही छोड़ दिया जाना वर्णित है– 'पर्यग्निकृतं पुरुषं चारण्यांश्चोत्सृजन्त्यहिंसायै'। [2] वेदि का निर्माण करते समय 'स्फया' से भूमि खोदनी पड़ती है। शतपथब्राह्मण में कहा गया है कि भूमि खोदते समय स्फया और भूमि के बीच घास रखकर भूमि

1– **'The use of animals for food was the basis of this slaughter and the doctrine of ahimsa is one which never even in India received full sanction.**

– ए0 बी0 कीथ : रेलिजन आफ फिलासफी आफ वेद एण्ड उपनिषद्स 2 पृ0 476

2– तै0 ब्रा0 – 3. 9. 9. 3

खोदनी चाहिए ताकि भूमि की हिंसा न हो।[1] वेदिकरण (वेदिनिर्माण) कर्म को ही क्रूर कर्म माना गया है।[2] इष्टि विधान में पुरोडाश बनाने हेतु जब चावल के लिए धान कूटा जाता है तो उलूखल को कृष्णाजिन पर रखा जाता है जिससे कि उलूखल एवं पृथ्वी को चोट न पहुँचे।[3] एक कर्मकाण्ड में स्वधिति चाकू को सम्बोधित कर कहा गया है 'हे स्वधिति! इसे चोट न पहुचाओ' 4 यह बात नितान्त उपाहासास्पद ही लगती है कि जब कोई वस्तु काटी जा रही है तो काटने वाले चक्कू से यह कहा जाता है कि वह किसी वस्तु को चोट न पहुँचाये आश्चर्यजनक अवश्य लगता है। किन्तु इन सबसे यह तथ्य अवश्य सामने उभर कर आया है कि इस प्रकार के वर्णनों से प्राकृतिक जीवों एवं पदार्थो के प्रति दया, संवेदना एवं सहानुभूति के भावों को सृजित किया गया है। साथ ही यह भी

1– अथ तृणमन्तर्धाय प्रहरति। नेदनेव वज्रेण संशितेन पृथिवीं हनसानीति । श0 ब्रा0 – 1. 2. 4. 15

2– क्रूरमिव वा एतत् करोति। यद्वेदि करोति। धा असि .... स्वधा असीति योयुप्यते शान्त्यै– तै0 ब्रा0 3. 2. 9. 13

3– श0 ब्रा0 – 1. 1.4. 5–7

4– 'ओषधे त्रायस्वैनं स्वधिते मैनं हिंसीः इत्याह हिंसन । ...... आम्नायवचनात् अहिंसा पतीयेत्र' निरुक्त – 1. 52

व्यक्त करने का प्रयास किया गया है कि चीरफाड़ एवं काटपीट करने वाले पदार्थों के निर्माण का एक महत्त्वपूर्ण तथा पवित्र प्रयोजन हुआ करता है।[1] यहाँ यह भी स्मरणीय है कि यज्ञ के पुरोडाश के निर्माण के लिए अन्न को कूटे पीसे जाने की क्रिया को भी हिंसात्मक मारण क्रिया के रूप में लिया जाता था। स्पष्टतः अन्न को जीवन से संयुक्त ही माना गया है। इसी प्रकार सोमलता को रस हेतु जब पेरा जाता था तो उस क्रिया से उसका मरण ही परिकल्पित किया गया। 'शतपथ ब्राह्मण' का कथन है कि यज्ञ कर्मो से स्वयं यज्ञ का ही मारण किया जाता है (ध्नन्ति) उलूखल एवं मुसल से हविर्यज्ञ का मारण किया जाता है।[2] इन सभी उदाहरणों से इस एक मात्र तथ्य को उजागर किया गया है कि जीवन की आहुति देना लेना मात्र पशुओं के लिए ही नहीं है, प्रत्युत प्रकृति के हर क्षेत्र व उपादान में यह लागू होता है। मानव के ज्ञान के लिए यही तथ्य अभिव्यक्त किया गया है।

1– शल्य चिकित्सा द्वारा उपचार का उदाहरण यहाँ उल्लेखनीय है। कालिदास के 'शाकुन्तल' में धीवर की उक्ति – 'पशुमारणकर्म दारूणो अनुकम्पा मुदुरेव श्रोत्रियः' इसी विचार धारा की पोषिका है।

2– ध्नन्ति वा एतद्यज्ञं यदेनं तन्वते। यन्नेव राजानंअभिषुण्वन्ति। तत्तं ध्नन्ति। यत्पशु संज्ञपयन्ति विशासति तत्तं ध्नन्ति उलूखलमुसलाभ्यां दृषदुपलाभ्यां हविर्यज्ञं ध्नन्ति। शतपथ ब्राह्मण 2. 2. 2. 1

वेदों में हिंसा पर विचार करते समय 'अध्वर' शब्द पर दृष्टि गड़ जाती है। 'ध्वर' शब्द का अर्थ हिंसा है। अतएव जिनमें हिंसा न हो वही अध्वर है। हिंसा वहीं होती है जहॉ चोट वा पीड़ा पहुॅचाने वाला व्यक्ति वैरभाव से चोट या पीड़ा पहुॅचाता है – 'अध्वर इति यज्ञनाम। ध्वरतिः हिंसा¯कर्म तत्प्रतिषेधः। निरूक्त–21. 15. 16 – द्वेषपूर्वको प्राणविधो हिंसा।' द्वेषपूर्वक प्राणि वध करना हिंसा है। अतएव वैदिक अध्वर या यज्ञ में हिंसा के लिए कोई स्थान नहीं होता, क्योंकि वहॉ द्वेषपूर्वक प्राणिवध नहीं किया जाता। इस सिद्धान्त से कायिक पीड़ा पहॅचाना हिंसा का कृत्य माना जाता सकता है, अन्यथा नहीं। यह वैदिक सिद्धान्त कितना आधुनिक है यह तथ्य हमें विस्मयमुग्ध कर देता है।

वैदिक यज्ञ में जब कर्मकाण्ड का परिणाम सुखात्मक हो तो उस कर्म को हिंसात्मक नहीं कहा जा सकता, भले ही आहुति देते समय पीड़ा का अनुभव किया जाये, अन्यथा जीवन ही संभव नहीं होगा। यदि यह सिद्धान्त न माना जाये तो शल्य चिकित्सा करने वाले चिकित्सक का चीरफाड़ कृत्य भी हिंसा की श्रेणी में गिना जाने लगेगा। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त जीवन में अनेक ऐसे अवसर आते हैं जिनमें किये गये कृत्य हिंसा की परिधि में आ जायेगें।

(6) दक्षिणा –

किसी अनिवार्य देवविषयिणी सेवा हेतु सम्मानपूर्वक दिया गया उपहार

अथवा पारिश्रमिक दक्षिणा कहलाता है। यास्क ने दक्षिणा का अर्थ समृद्ध करना लगाया है – दक्ष धातु समृद्ध करने के अर्थ में ली गयी है।[1] शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि जब यज्ञानुष्ठान किया जाता है तो यज्ञ को आघात पहुँचता है, जब सोमरस पेरा जाता है तो उसको आघात पहुँचता है, जब पशु का संज्ञपन किया जाता है तो उसको आघात पहुँचाया जाता है, ऊखल, मूसल तथा चक्की के दो पत्थर हविष् को आघात पहुँचाते हैं। इस प्रकार आघात पहुँचाया हुआ यज्ञ आहत हो जाता है। देवों ने दक्षिणा देकर यज्ञ को दक्ष (शक्तिमान्) बनाया। इसलिए इसका नाम दक्षिणा पड़ गया। यज्ञ की समृद्धि हेतु दक्षिणा दी जाती है।[2] यास्क की एक अन्य व्युत्पत्ति के अनुसार चूँकि अग्निष्टोमादि में दक्षिणा को वेदि के दक्षिण भाग में रखा जाता है, अतएव दिशावोध कराने के कारण यज्ञसम्पादन के बदले पारिश्रमिक के रूप में दिये गये पदार्थ भी दक्षिणा कहलाये।[3]

प्रत्येक देवता विषयक अनुष्ठान या कर्मकाण्ड में नकद रूप में दक्षिणा देने का निश्चित विधान होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में दक्षिणा का सविस्तार वर्णन मिलता है। इनमें स्पष्ट रूप से प्राविधानित किया गया है कि किस कर्मकाण्ड में किस ऋत्विक् को क्या दक्षिणा दी जानी चाहिए। ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ में दक्षिणा देना

1– 'दक्षिणा दक्षतेः समर्धयति कर्मणः व्यृद्धं समर्धयतीति।' –निरूक्त, 1.7

2– 'यज्ञो भवति तस्माद् दक्षिणाददाति।' श0 ब्रा0 – 2. 2. 2. 1–2

3– निरूक्ति–1, 7

अनिवार्य कृत्य माना गया है। जैसे– बिना बैलों के बैलगाड़ी चालक के लिए कष्टकारक होती है वैसे ही बिना दक्षिणा के यज्ञ भी यष्टा के लिए हानिकारक होता है।[1]

ब्राह्मणों में प्रयुक्त दक्षिणा शब्द अतिजटिल है। मोनियर विलियम्स ने दक्षिणा का अर्थ यज्ञिय शुल्क दान पुरस्कार आदि माना है।[2] शतपथ ब्राह्मण में यह कहागया है कि दक्षिणा केवल ऋत्विजों को ही दी जाती है। ऋक् यजुः साम तथा आहुतिमय यज्ञ से यजमान का नवीन आत्मा बनाया जाता है। देहत्याग के अनन्तर परलोक में उसका यही आत्मा होता है। इस अपर आत्मा का निर्माण ऋत्विज ही करते हैं। इसलिए दक्षिणा ऋत्विजों को ही देय है। जो ऋत्विक नहीं हैं, उन्हें दक्षिणा देय नहीं हैं।[3] इससे यह स्पष्ट है कि दक्षिणा ऋत्विजों को यज्ञ सम्पादन के बदले पारिश्रमिक के रूप में दी जाती थी। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि यजमान अध्वर्यु को इसलिए दक्षिणा देता है कि अध्वर्यु ने उसके लिए ग्रहों को थामा, परिक्रमा की तथा आहुतियाँ डालीं, उद्गाता को यह जानकर दक्षिणा देता है कि उद्गाता ने उसके लिए मंत्रो का गान किया है, होता को यह

1– ऐ0 ब्रा0 – 6. 35

2– मोनियर विलियम्स – 'संस्कृत–अंग्रेजी शब्कोश' पृ0 – 466

3– श0 ब्रा0 – 4. 3. 4. 5

जानकर कि उसने अनुवाक याज्य और शास्त्रों का पाठ किया है तथा ब्रह्मा को यज्ञ की चिकित्सा करने हेतु दक्षिणा देता है। इन वर्णनों से यह आभास नहीं मिलता कि पुजारीगण दक्षिणा के लिए बहुत लालायित रहा करते थे।

कतिपय विद्वानों की दक्षिणा 1 के बारे में अति तुच्छ राय है। ये विद्वान जिनमें मोनियर विलियम्स सम्मिलित हैं दक्षिणा को 'शुल्क' की संज्ञा देते हैं, शुल्क अर्थात कृत कर्मकाण्ड में निहित श्रम के बदले मॉगा गया पारिश्रमिक अथवा धन। इस प्रकार ये महानुभाव 'पौरोहित्य' कर्म को ही गर्हणा की दृष्टि से देखते हैं। उनकी प्रायः यह धारणा रही है कि ब्राह्मण पुरोहित पारिश्रमिक अथवा 'शुल्क' के ही पीछे भागते रहते थे। किन्तु दक्षिणा के बारे में ऐसी धारणा एकांगी ही कही जायेगी। ब्राह्मणग्रन्थ इस विषय पर स्पष्ट अभिधान करते हैं।

शतपथ ब्राह्मण में मुख्यतया स्वर्ण, गाय, वस्त्र तथा अश्व को दक्षिणा के रूप में दिये जाने का विधान है।[2] – 'चतस्रौवै दक्षिणा। हिरण्यं गौर्वासोऽश्वो.........। '

1– उदाहरणार्थ :– 'Very fine poetry marred by references to the sacrifice and the priestly fee ...... disgusting char acter of Dakshina of later Hinduism. Deshmukh -' Religion in Vedic Literature' Page 348

2– श0 ब्रा0 –4. 3. 4. 7; 4. 3. 4.24

ब्राह्मण ग्रन्थों में दक्षिणा का अत्यधिक महत्त्व बतलाया गया है। दक्षिणा को यज्ञ की धुरी कहा गया है।[1] दृष्टान्त से स्पष्ट है कि जैसे बिना धुरी के चक्का चल ही नहीं सकता वैसे ही बिना दक्षिणा के यज्ञ कर्मकाण्ड सम्पन्न होना सम्भव ही नहीं है और जब यज्ञकर्म ही अपूर्ण रहेगा तो यजमान का अभीष्ट कैसे पूर्ण हो सकता है ? शतपथ ब्राह्मण की मान्यता है कि यज्ञ तथा दक्षिणा चूँकि ये दोनों ही देवलोक को जाते हैं, अतएव यजमान देवलोक जाने की लालसा से यज्ञ करता है।[2] इस प्रकार दक्षिणा देवलोक पहुँचाने हेतु माध्यम मानी गयी है। इसी आशय का भाव व्यक्त करते हुए गोपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि दक्षिणा एक सेतु के समान है जिस पर चढ़कर यजमान स्वर्ग लोक में उतर जाता है।[3] प्रकारान्तर से गोपथ ब्राह्मण में एक और दृष्टान्त दिया गया है जो दक्षिणा के माहात्म्य पर प्रकाश डालता है। इसमें यज्ञ को नाव बतलाया गया है।[4] यज्ञ सम्पादन में यदि मंत्र प्रयोग, कर्मकाण्ड तथा दक्षिणा में कोई त्रुटि रह जाती है तो वह यज्ञ रूपी नाव में एक छेद के रूप में रह जाती है जिसके कारण नाव डूब जाती है। ब्राह्मण ग्रन्थों मे दक्षिणा का माहात्म्य अनन्त हैं।

1– ता0 म0 ब्रा0 – 16. 1. 13

2– श0 ब्रा0 – 4. 3. 4. 6

3– गो0 ब्रा0 – 2. 3. 17

4– गो0 ब्रा0 – 2. 2. 5

दक्षिण के पीछे ऋत्विक् के न भागने के पक्ष में अन्य कारण यह भी तो था कि प्राचीन मान्यताओं में दक्षिणा पाने वाला व्यक्ति सौभाग्यशाली नहीं माना जाता था, बल्कि दक्षिणा देने वाला व्यक्ति अशीर्वाद एवं सौभाग्य का वास्तविक पात्र होता था। दक्षिणा देने में श्रद्धा अनिवार्य बतलायी गई है। शतपथ ब्राह्मण में अग्न्याधान हेतु निर्दिष्ट दक्षिणा के अतिरिक्त श्रद्धा के अनुसार दक्षिणा देने का उल्लेख किया गया है।[1] शतपथ ब्राह्मण में श्रद्धा को दक्षिणा की प्रतिष्ठा कहा गया है।[2]

(7) प्रायश्चित्त

ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रायश्चित्त विषय पर उपलब्ध सामग्री का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि कर्मकाण्ड में याग क्रियाओं को नियमित करने वाले सिद्धान्तों एवं प्राविधानों का कड़ाई एवं अनुशासनयुक्त ढंग से पालन कराये जाने पर बहुत बल दिया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थ इस तथ्य की ओर पूर्णतया जागरूक है कि नियम, आचारसंहिता, आदेश तथा स्पष्टीकरण चाहे जितने कट्टर हों तथा उनका अनुपालन कराने वाले ऋत्विक् एवं यजमान चाहे जितनी निर्भीकता से शुद्धमन से जागरूक एवं विवेकी होकर यज्ञानुष्ठान सम्पन्न करायें, जाने अनजाने उनमें कहीं न कहीं कोई न कोई कमी या त्रुटि अवश्यमेव रह जाती है। इतने

1— श0 ब्रा0 – 2. 2. 2. 5

2— श0 ब्रा0 – 14. 6. 9. 22

व्यापक क्षेत्र के यज्ञानुष्ठान में त्रुटि का रह जाना मानव सुलभ है। ये त्रुटियॉ या कमियॉ, चाहे यजमान की अनवधानता के कारण रह जाये या उससे साक्षात् अथवा परोक्षरूप से सम्बद्ध व्यक्तियों द्वारा रह जाये, अतएव इन कमियों या त्रुटियों का प्रायश्चित अथवा मार्जन आवश्यक हो जाता है।जिस प्रकार शरीर के टूटे–फूटे [1] अंगो को शल्योपचार के माध्यम से जोड़कर पुनः एक संयुक्त रूप दिया जाता है ठीक उसी प्रकार प्रायश्चित्त द्वारा त्रुटि का मार्जन किया जाता है। प्रायश्चित्त कर्म जप अथवा मार्जन (मंत्रोच्चार सहित शरीर पर पवित्र जल का छिड़काव) अथवा होम करके किया जाता है। प्रायश्चित्तकर्म अत्यन्त स्वाभाविक कृत्य होता है जिसके द्वारा देवों का स्तवन कर त्रुटि के लिए उनसे क्षमा मॉगी जाती है। प्रायश्चित्त सदैव कर्मकाण्ड के अन्त में अत्यन्त विनीत भाव से किया जाता है ताकि त्रुटि की माफी मिल जाय और सम्पद्यमान कृत्य सफल हो जाये। ब्राह्मणों में त्रुटियों के स्वरूपों के अनुरूप ही प्रायश्चित्तों [2] की भारी संख्या दी

1– तद्यथात्मनात्मानं सन्दध्याद्यथा पर्वणा पर्व यथा श्लेष्मणा चर्मण्यं वान्यद्वा विश्लिष्टं संश्लेषयेदेवमेव एतभिर्यज्ञस्य विश्लिष्ट सन्दधाति। ऐ0 ब्रा 25. 32 तद्यथा शीर्ण तत्पर्वण पर्वसन्धाय मिषज्येत् एवमेवैनं विद्वान् त सर्वविभिषज्यति। .... तस्मादु हैवं विदं एव प्रायश्चितिं कारयेत। जै0 ब्रा0 1. 3. 85 ।

2– तै0 ब्रा0 – 1. 4. 3

गयी है। ये प्रायश्चित्त कर्मकाण्ड की गरिमा, महत्ता एवं उसके फल के अनुरूप हुआ करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थ यज्ञानुष्ठानों को सार्थक एवं निर्दोष बनाने के लिए आवश्यकतानुसार नियमित करते हैं। स्थान, पात्र, ऋतु एवं अन्य को दृष्टि में रखते हुए इन ग्रन्थों में वैकल्पिक व्यवस्थाएं दी गयी हैं। इनमें इस प्रकार की विधियों का उल्लेख किया गया है जिनसे कर्मकाण्ड में पुनरावृत्ति अथवा अनावश्यक श्रम से बचा जा सके। उदाहरणार्थ एकाह यज्ञ में समस्त कृत्य एक ही दिन में सम्पादित किये जाते हैं। इस प्रकार के श्रमसाध्य दिवसव्यापी कर्मकाण्ड – संकुल वातावरण में यजमान की मानसिक प्रसन्नता बनाये रखने हेतु ब्राह्मण ग्रन्थ उसे 12 कमलों वाली माला प्रदान किये जाने की संस्तुति करते हैं।[1] कृत्यों को सरल एवं आयासरहित बनाने हेतु वर्णित इस प्रकार के विचारविमर्श, विधियॉ एवं व्यवस्थाएँ यही इंगित करती हैं कि परिस्थितियों के अनुसार यज्ञों के विधान एवं प्रक्रिया में संशोधन–परिवर्धन सम्भव था। यज्ञों के सम्पादन हेतु ब्राह्मणों में बनाये गये कठोर नियम – विधान सामान्य निर्देश के रूप में लिए जाने चाहिए, उनका शब्दशः अनुपालन सर्वथा अनिवार्य नहीं था। उनमे परिस्थितिवश यत्र–तत्र हेर–फेर सम्भव था।

1– जामि वा एतत्कुर्वन्ति। यत् सद्यो दीक्षयन्ति सद्यस्सोमं क्रीणन्ति। पुण्डरिस्रजां प्रयच्छति अजामित्वाय। तै0 ब्रा0 – 1. 8. 2. 1

(8) कर्मकाण्ड में पवित्रता –

प्रत्येक यज्ञाचरण में भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार की पवित्रता अथवा शुचिता का अत्यन्त महत्त्व है। यज्ञानुष्ठान में प्रत्येक वस्तु स्वच्छ रखी जाती है। उपयोग में लाने के पूर्व बर्तनों को पानी से धोया व आग पर तपा कर पवित्र किया जाता है। 'आज्यावेक्षणम्' (आज्य में दृष्टि डालना) एक सटीक उदाहरण है जिसमें यजमान की पत्नी को आहुति देने के पूर्व आज्य में दृष्टि डालकर देखना पड़ता है। यह केवल यह सुनिश्चित करने हेतु किया जाता है जिससे कि यह जाना जाये कि आज्य में किसी इतर अपवित्र वस्तु की मिलावट तो नहीं है।

यज्ञों में प्रतीक एवं उनका महत्त्व –

वेदों के अध्येता को यह भली–भाँति समझ लेना चाहिए कि वैदिक यज्ञ कर्मकाण्डों एवं विभिन्न धार्मिक कृत्यों के संकलन मात्र नहीं हैं। वस्तुतः यज्ञ वह दिव्य, चैतन्यपूर्ण कृत्य है जिससे ऊर्जा उद्भूत होती है। यज्ञ का विनियोग अत्यन्त व्यापक होता है। यज्ञ विधान के अपने अन्तर्निहित मूल्यों के अतिरिक्त यज्ञ हमें मानव जीवन तथा संसार के अपरिहार्य दैनिक कर्त्तव्य–कर्मों की व्यावहारिक शिक्षा देता है। यह दैनिक कृत्यों की सूक्ष्म एवं स्पष्ट प्रक्रिया बतलाता है। याग क्रिया के अन्तरंग कृत्यों के साथ–साथ जीवन में इसके भौतिक पक्ष के उपयोग का भी ज्ञान होता है। अतएव यज्ञ केवल कर्मकाण्ड मात्र नहीं होता, प्रत्युत ब्रह्माण्ड में कार्यरत प्रकृति की अनन्त शक्तियों में परस्पर समन्वय एवं सामंजस्य स्थापित करने के लिए ऊर्जा प्रदान करता है। सभी शक्तियों के अधिष्ठात्री देवता यज्ञ कर्म से सन्तुष्ट होते हैं, तभी उनमें समरूपता आती है। इसी प्राकृतिक समरूपता अथवा सामंजस्य के फलस्वरूप ही विश्व का वातावरण शान्त व जीवनोपयोगी बन सकता है। इन महाशक्तियों के विस्फोटक रूप धारण करने पर महाप्रलय का प्रभंजन आ सकता है। यदिऐसा हुआ तो सृष्टि की जड़े हिल जायेंगी। यही तो कारण है कि वेदों में इन्द्रादि के स्वस्तिगान गाये गये हैं। मानव शरीर पृथ्वी, जल, पावक, आकाश एवं वायु तत्त्वों की महाशक्तियों से

निर्मित हुआ है, अतएव मानव तथा मानव जगत् में सुख–शान्ति तभी रह सकती है जब इन शक्तियों में परस्पर समन्वय रहे तथा ये निरन्तर हमारे अनुकुल बनी रहें। इन विराट् महाशक्तियों को अनुकुल एवं परस्पर बॉधे रखने का मूल उद्देश्य यज्ञ–सम्पादन से ही सम्भव होता है। अग्नि में डाली गयी आहुतियॉ भस्म होकर कदापि नष्ट नहीं होती। अग्नि की महाशक्ति तत्तद्देवताओं के निमित्त डाली गयीं इन आहुतियों की गन्ध को सूक्ष्म रूप में तत्तद्देवताओं तक पहुॅचाती हैं। हविष् की गन्ध पाकर इन महाशक्तियों के अधिष्ठात्री देवता प्रसन्न हो उठतें हैं जिसके परिणामस्वरूप ब्रह्माण्ड में तनाव नहीं रहता वातावरण शान्त एवं अनुकूल बनता है, यह संसार जीने योग्य स्थान बनता है और जड़–जंगम की प्रगति होती है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेक स्थलों से यज्ञ के प्रतीकात्मक स्वरूप पर प्रर्याप्त प्रकाश पड़ता है। वेदों में बाह्य यज्ञ के तत्त्वों को आभ्यन्तर यज्ञ एवं आत्मोत्सर्ग के प्रतीक (Symbol) की तरह प्रयुक्त किया गया है। यह ज्ञात्यव्य है कि इस विषय पर सूक्ष्म गवेषणा की आवश्यकता है जिससे कि यौगिक विनियोग को जो ब्रह्माण्ड के सूक्ष्म एवं विराट् क्षेत्रों के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है, सम्यक रूप से समझा जा सके। याग, कर्मकाण्ड एवं इतर धार्मिक देवविषयक कृत्य– ये सभी जन सामान्य की पूजा है। ये वे विधाऍ हैं जिससे व्यक्ति को मूला प्रकृति

के वास्तविक स्वरूप, पदार्थों की प्रकृति, उनके पारस्परिक सम्बन्ध एवं ब्रह्माण्ड और ईश्वर की याद दिलाई जाती है।[1]

तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार उस व्यक्ति द्वारा किया गया होम जो आश्रावित प्रत्याश्रावित, ब्रह्मा एवं वषट्कार जानता है, वास्तविक होम होता है। ब्राह्मण ग्रन्थ की उक्तियों से स्पष्टरूप से विदित होता है कि यज्ञों में प्रयुक्त विशिष्ट शब्द न केवल तकनीक एवं पारिभाषिक शब्दावली का परिचय कराते हैं, बल्कि ब्रह्माण्ड तत्त्व, आत्मतत्त्व, जीवन एवं परमतत्त्व के गूढ़ार्थ के बारे में भी जानकारी देते हैं तथा तत्तद्विषयक अपने उन अर्थों का बोध कराते हैं। ब्राह्मण साहित्य से ज्ञात होता है कि प्राण आश्रावित है, अपान प्रत्याश्रावित है, मन होता है, चक्षु, ब्रह्मा है तथा निमेष वषट्कार है।[2]

यज्ञ के वास्तविक स्वरूप की विराट्ता का अन्दाज इस कथन से लगाया जा सकता है कि वेदि को पृथ्वी के समान ही विशाल स्वरूप वाली कहा गया है।[3]

1– विशेष अध्ययन के लिए देखें ऑल्डस हक्सले – 'पेरेनियल फिलासफी' पृ0 314

2– यो वा अग्निहोत्रस्याश्रवितं प्रत्याश्रावितं होतारं ब्रह्माणं वषट्कार वेद। तस्य त्वेव हुतम्। प्राणो वा अग्निहोत्रस्याश्रावितम्। अपानः प्रत्याश्रावितम्। मनो होता। चक्षुर्ब्रह्मा। निमेषो वषट्कारः। य एवं वेद। तस्य त्वेव हुतम्। तै0 ब्रा0 2. 1. 5. 9

3– एतावती वै पृथिवी यावती वेदिः ।। तै0 ब्रा0 – 3. 2. 9. 12

यज्ञ की अर्थ सीमा भौतिक कर्मकाण्ड सीमा मात्र नहीं है। वह इस सीमा के बहुत आगे निकल गयी है। यज्ञ का प्रतीकात्मक अर्थ कुछ और ही है। वैसे देखा जाये तो तैत्तिरीय ब्राह्मण की युक्ति 'एतावती पृथिवी यावती वेदिः'– पृथ्वी उतनी बड़ी है जितनी कि वेदि' आपाततः गलत लगे, किन्तु ऐसा नहीं है। इस उक्ति का अर्थ प्रकारान्तर से लगाना उचित होगा – वेदि उतनी बड़ी है जितनी की पृथिवी। अर्थात् यह सम्पूर्ण पृथिवी वेदि है। वदि के रूप में पृथिवी उसी (तत्त्व) की महिमा की वृद्धि करती है। [1]

यज्ञ ब्राह्माण्ड का केन्द्र विन्दु एवं उद्भव स्थल है। [2] यज्ञ से निखिल ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ है तथा वह सदैव यज्ञ में ही प्रतिष्ठित रहता है। [3] यज्ञ ही विश्व का भरण–पोषण करता है, यही विश्व को सत्ता में रखता है तथा यही सृष्टि के अन्त तक स्थित रहता है।

1– (वेदिः) भूमिभूत्वा महिमानं पुपोष।। तै0 ब्रा0– 3. 7. 6. 4 पृथिवी वेदिः।। 3. 3. 6. 8 वेदेन वेदिं विविदुः पृथिवीम् तै0 ब्रा0 – 3. 3. 9. 10; 3. 7. 4. 12

2– यज्ञः बभूव भुवनस्य गर्भः। तै0 ब्रा0 – 2. 4. 7. 5

3– "In the same manner that the world originated through sacrifice" - जंग– साइकॉलोजी आफ द अन्कान्शस" पृष्ठ – 259

यज्ञ अध्वर है [1] देवतागण एवं मनुष्य अध्वर के विभिन्न मार्गो एवं विधियों पर जीवनधारण करतें हैं। [2] यज्ञ उनका जीवन है, भोजन उनका रक्षक है। [3] यज्ञ देवताओं के जीवन का साधनभूत ही नहीं, प्रत्युत उनकी चेतना एवं उनकी साक्षात् आत्मा है। शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ को ऋत का स्रोत [4] कहा गया है।

यज्ञ स्वयं पुरुष (माप हेतु मानक स्वरूप) है जिससे पृथ्वी पर स्थित समस्त वस्तुयें मापी जाती हैं [5] यज्ञ देवताओं का वह आवास है [6] जो असुरों द्वारा कभी पराजित नहीं हो सका। यज्ञ को दैवी रथ (देवरथ) के रूप में प्रकल्पित

1— यज्ञ एव अन्ततः प्रतितिष्ठति।। तै0 ब्रा0—1. 8. 1. 2 अध्वरो वै यज्ञः।। श0 ब्रा0 — 1. 3. 3. 38—40

2— देवा अन्यां वर्त्मनिमध्वरस्य मानुषास उपजीवन्ति अन्याम। जै0 ब्रा0 1. 2. 77

3— द्रष्टव्य शतपथ ब्राह्मण—8. 6. 1. 10 यज्ञमेव प्रजापतिं संस्करोति। आत्मानमेव तत्संस्करोति। तै0 ब्रा0 3. 2. 7. 4 यज्ञो वा आयुः। यज्ञा वा अवतिः। पं0 ब्रा0 6. 4. 4; 5 यज्ञो हि देवानां अन्न्म्। श0 ब्रा0 11. 1. 8. 2. 4

4— यज्ञो वा ऋतस्य योनिः। श0 ब्रा0 1. 3. 4. 16

5— पुरुषो वै यज्ञः। तेनेदं सर्वमितम्।। श0 ब्रा0 — 10. 2. 1. 2

6— एतत् खलु वै देवानामपराजितमायतनम्। यद्यज्ञः।। तै0 ब्रा0 — 3. 3. 7. 7

किया गया है, विभिन्न साम इसके अंग हैं।[1] यज्ञ के महात्म्य एवं सार्वभौमरूप पर चिन्तन करने से यह स्पष्ट होता है कि जीवन के विविध कर्म एवं कर्त्तव्य यज्ञ के ही अंग है, रूप हैं। जीवन का ताना–बाना यज्ञमय है। इस विराट्तम एवं अणुतम आकृति वाले यज्ञ का भौतिक लघु रूप वैदिक याग कर्मकाण्ड है जिसमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का प्रतिनिधित्व निहित होता है। यज्ञ कर्मकाण्ड में विभिन्न प्राकृतिक महाशक्तियों में पारस्परिक बन्धन का अनुभव हो जाता है। यज्ञ में ही भुवनों में परिव्याप्त क्षण–क्षण की प्राकृतिक लीलाओं की झॉंकी मिल जाती है तथा निरन्तर गतिशील जीवनचक्र का दर्शन होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक काल में यज्ञ को ब्रह्माण्ड–नियन्ता की ऊँचाई तक उठा दिया गया था। समस्त विश्व एक यज्ञ है। यज्ञों के ही माध्यम से देवतागण अपना कार्यकलाप सम्पादित करते हैं। ब्रह्मण्ड के जनक स्वयं प्रजापति अपनी विराट् प्रजननक्षमता को यज्ञ के ही द्वारा प्राप्त करते हैं। यज्ञ न केवल अपने समष्ट्यात्मक व्यक्तित्व में ब्रह्माण्ड के मूल में है, अपितु उसके अंग–प्रत्यंग जैसे, प्रारम्भिक अनुष्ठान एवं कृत्य, दीक्षा, व्रतोपवास, स्नानादि क्रियाएं, उपासना–पूजा के समय एवं स्थान, ऋत्विजों की संख्या एवं उनके कृत्य, पशु, वनस्पति, पुरोडाश, हविष् आदि सबके सब उसी विराट्ता में अन्तर्भूत होते हैं।

1– यज्ञो। वै देवरथः वहिष्पवमानमेव यज्ञमुखम्। वृहद्रथन्तरे अश्वौ। .... एष वै देवरथः।।

जै0 ब्रा0 1. 129– 130, 343

सामवेदीय ब्राह्मणों में निरूपित श्रौतयाग –

ताण्ड्यादि सामवेदीय ब्राह्मणों में कुछ अपवादों को छोड़कर प्रधानतः सोमयागों का ही निरूपण हुआ है। ताण्ड्य में केवल अग्निष्टोमसंस्थ ज्योतिष्टोम से लेकर सहस्र संवत्सर साध्य सोमयागों का ही विस्तृत विधान प्राप्त होता है। जैमिनीय ब्राह्मण और षड्विंश में हविर्यज्ञान्तर्गत अग्निहोत्र का विवेचन भी प्राप्त होता है। कुछ इष्टियों का मात्र नाम्ना उल्लेख सामविधान में भी है। [1]

सोमयागों का वैशिष्ट्य –

सोमयागों का सर्वोपरि महत्त्व निरूपित करते हुए ताण्ड्य में कहा गया है कि देवों ने हविर्यज्ञों–आग्रयण, चातुर्मास्य, निरूढपशुबन्ध, सौत्रामणी, पिण्डपितृयज्ञादि से भूलोक पर विजय प्राप्त की, पशुयागों से आन्तरिक्ष को जीता, किन्तु स्वयं पर विजय उन्हें तभी प्राप्त हुई, जब उन्होंने सोमयागों का अनुष्ठान किया – 'हविर्य्यज्ञैवै देवा इमं लोकमभ्यजयन्नन्तरिक्षं पशूमद्भिः सोमैरमुम्। [2]

सामवेदीय ब्राह्मणों में अग्निहोत्र निरूपण –

षड्विंश ब्राह्मण में शीघ्र सम्पन्न हो जाने के कारण अग्निहोत्र की विशेष प्रशंसा की गयी है – 'सद्यो ह वा एष यज्ञः संस्थामुपैति। [3]

1– सामवि0 ब्रा0 – 1. 3. 3; 4–6; 8 इत्यादि

2– ताण्ड्य ब्रा0 – 17. 13. 18

3– षड्0 ब्रा0 – 5. 1. 5

इसे ज्योतिष्टोम के अनेक सदृश बतलाया गया है। एतदर्थ ज्योतिष्टोम के अनेक कृत्यों की अग्निहोत्र के कृत्यों से एकरूपता प्रदर्शित की गई है; कहा गया है कि अग्निहोत्र के सम्पादन से सभी यज्ञ स्वयमेव अनुष्ठित हो जाते हैं, सबसे प्राप्य फल प्राप्त हो जाता है – 'अग्निहोत्रे सर्वैर्ह वा एतस्य यज्ञक्रतुभिरिष्टं भवति'।[1] इस सन्दर्भ में एक प्रजापति ने मनुष्य की आयु सौ वर्ष की देखकर सहस्र संवत्सरात्मक यज्ञ को विभिन्न यागों के क्रम से, जिनमें गवामयन, द्वादशाह, अतिरात्र, षोडशी, उक्थ्य और अग्निष्टोमादि है, अग्निहोत्र में प्रतिष्ठित कर दिया। इसलिए अग्निहोत्र के अनुष्ठान से अन्य यज्ञ – साध्य इष्ट भी सिद्ध हो जाते हैं। जैमिनीय ब्राह्मण में भी अग्निहोत्र की भूयसी स्तुति प्राप्त होती है। उसमें इसका वर्णन प्रथम प्रपाठक के पूरे पैंसठ खण्डों मेंबड़े विस्तार से किया गया है। एक अनुच्छेद में वहॉ इसे सहस्रसंवत्सरसाध्य सोमयाग से भी उत्कृष्ट बतलाया गया है।[2] साम वेदीय छान्दोग्योपनिषद् में अग्निहोत्र की प्ररोचना करते हुए कहा गया है कि जैसे क्षुधातुर बालक सर्वथा माता के समीप जाते हैं, वैसे ही प्राणी अग्निहोत्र की उपासना करते हैं– 'यथेह क्षुधिता बाला मातरं पर्युपासत एवं सर्वापि

1– षड् 0 ब्रा0 – 5. 1. 6–9 तथा 5. 2. 1

2– जैमि0 ब्रा0 – 1, 3 – इस प्रसंग में प्रो बोडेवित्स का जैमिनीय ब्राह्मणगत अग्निहोत्र–निरूपण पर लिखित ग्रन्थ उल्लेखनीय है।

भूतान्यग्निहोत्रमुपासत ।[1]

इन अंशों से सामवेदीय अनुष्ठाताओं की दृष्टि में अग्निहोत्र की कितनी अधिक महिमा थी, इस पर प्रकाश पड़ता है। अन्य स्थलों पर भी इसके न करने से प्रत्यवाय होने की बात कही गयी है। श्रौतसूत्रों के अनुसार अग्निहोत्र अग्नि को उद्दिष्ट करके सायं प्रातः क्रियमाण एक विशिष्ट कर्म है जिसमें द्रव्य है दुग्ध, यवागू, तण्डुल और धृतादि से वे आहुतियाँ दे सकते हैं जिनका कोई काम्य प्रयोजन है। सायंकालीन अग्निहोत्र का मुख्य देव अग्नि है और प्रातः साध्य का सूर्य।

अग्निहोत्र के अनुष्ठान स्वयं आहुतियाँ डालनी चाहिए, क्योंकि अन्यों के द्वारा प्रदत्त 100 आहुतियों से शिष्य प्रदत्त एक आहुति श्रेष्ठ है, शिष्य प्रदत्त 100 आहुतियों से पुत्रकृत एक आहुति श्रेष्ठ है और पुत्रकृत 100 आहुतियों से आत्मप्रदत्त एक आहुति श्रेष्ठ है।[2] शोभन तो यह है कि यजमान आहुत्यर्थ दुग्ध–दोहन भी स्वयं करे– 'स्वयं होता स्वयं दोही स्वयमेवोपतिष्ठेताग्निहोत्रम्।[3]

1– छा0 उप0 – 5.24

2– अन्यैः शतहुतान् होमानेकः शिष्यहुतो वरम्।

शिष्यैः शतहुतान् होमानेकः पुत्रहुतो वरम्।

पुत्रैः शतहुतान् होमानेकोव ह्यात्महुतो वरम्।।

3– षड्0 ब्रा0 – 5. 1. 12

ताण्ड्यादि में सोमयाग निरूपण –

ताण्ड्यादि ब्राह्मण मुख्यतः सोमयागो के ही प्रस्तावक हैं। वस्तुतः सोमयाग के सम्पादन में तीनों वेदों और उनके ऋत्विकों की आवश्यकता होती है। इस विषय में 'आपस्तम्ब परिभाषा' का यह कथन है महत्त्वपूर्ण है – 'यज्ञं व्याख्याास्यामः। स त्रिभिर्वेदैर्विधीयते ऋग्वेदयजुर्वेदसामवेदैः। ऋग्वेदयजुर्वेदाभ्यां दर्शपूर्णमासौ। यजुर्वेदनाऽग्निहोत्रम्। सर्वैरग्निष्टोमः। [2] इनका विवरण इस प्रकार है –

विभिन्न ऋत्विक् और उनके सामान्य कार्य –

सोमयागों में यजुर्वेद से सम्बद्ध और यजुषों से साध्य अध्वर्युगणकर्तृक कार्य इस प्रकार हैं – दीक्षा, सोमक्रय, वेदि–निर्माण, दक्षणीया – प्रायणीयेष्टि प्रवर्ग्य एवं उपसद्, अग्नीषोमीयादि पशुयाग, सोमाभिषव, ग्रह–चमसादिग्रहण, तदङ्गमन्त्रपाठ और विभिन्न होम। अध्वर्युगण में सम्मिलित ऋत्विकों के नाम इस प्रकार हैं – 1–अध्वर्यु, 2–प्रतिप्रस्थाता, 3– नेष्टा और 4– उन्नेता। ऋग्वेद के द्वारा विधीयमान कृत्यों में याज्या, पुरोनुवाक्या, आज्य, प्रउग, निष्केवल्य तथा मरूत्वतीयादि शस्त्रों के अतिरिक्त तदङ्गभूत प्रतिगर आदि भी समाविष्ट हैं। ऋग्वेदीय होतृगण में ये ऋत्विक् हैं – (1) होता (2) मैत्रावरूण (नामान्तर–प्रशास्ता) (3) अच्छावाक तथा

1– छा0 उप0 – 5.24

2– आपास्तम्ब परिभाष – 1. 1–7

(4) ग्रावस्तुत। हौत्रकर्म का ऋग्वेदीय ब्राह्मणों तथा श्रौतसूत्रों में विस्तृत विधान प्राप्त होता है। सामवेद से सम्बद्ध क्रिया–कलाप के अनुष्ठान का दयित्व उद्गातृगण पर होता है, जिसमें चार ऋत्विक् सम्मिलित हैं – 1. उद्गाता 2. प्रस्तोता 3. पतिहर्त्ता और 4. सुब्रह्मण्य। उद्गातृगण का कार्य मुख्यतः श्रोतसूत्रोक्त क्रम से सदस् में बैठकर साम–गान करना है। गणत्रयी के कार्य–कलाप की न्यूनता अतिरेकता तथा अन्य सम्भावित दोषों का निरीक्षण करने वाला एक निरीक्षक मण्डल भी होता है जो ब्राह्मण कहलाता है। षड्0 ब्रा0 में ब्रह्मा के लिए मौन रहने का विशेषतया उल्लेख है। जिस समय होता, अध्वर्यु और उद्गाता अपने–अपने कार्य में संलग्न हों, उस समय ब्रह्मा के लिए वाग्यमन ही श्रेयस्कर है – 'यावदृचा यजुषा साम्ना कुर्युस्तावद् ब्रह्मा वाचंयमो बुभूषेत्। [1] इसमें ये ऋत्विक् सम्मिलित होते हैं – 1– ब्रह्मा 2– ब्राह्मणाच्छांसी 3– आग्नीध्र (नामान्तर – अग्नीत्) तथा `4– पोता। इनके अतिरिक्त कुछ चमसाध्वर्यु भी होते हैं जो ऋत्विको के सहायक के रूप में कार्य करते हैं। इन्हीं 16 ऋत्विजों की सहायता से सोमयाग का अनुष्ठान सम्पन्न हो पाता है। षड्विंश (1. 3. 16) मे उन्हीं को ऋत्विक् के रूप में नियुक्त करने का निर्देश है, जो अर्थ ज्ञानपूर्वक वेद के प्रवक्ता हों – 'यज्ञों वा अथ जज्ञ इत्याहुरेष वाव जात एषोऽवलुप्तजरायुरेष आर्त्विजीनो य एतं वेदमनुब्रूते।' तथा 'तस्मादेवंविदं सुब्रह्मण्यं कुर्वन्ति नानेवंविदम्' (षड्0 ब्रा0 1. 2. 13)। इसी योग्यता को ध्याान में रखकर ब्रह्मा के पद पर वशिष्ठ गोत्रोत्पन्न

व्यक्ति को नियुक्त करने का आग्रह षड्विंश में है – 'अपि हैवंविदं वा वासिष्ठं वा ब्रह्माणं कुर्वीत (1. 5. 3)।

षड्विंश में ही यह भी कहा गया है कि प्रत्येक ऋत्विक् को अपने कर्म का सम्पादन बड़ी कुशलता से करना चाहिए। होता से यदि कोई कृत्य छूट जाता है, तो उससे यजमान को वाणी की हानी होती है, अध्वर्यु से कृत्य छूटने पर चक्षु की, ब्रह्मा से मन की, उद्गाता से करणीय कृत्य छूट जाने पर श्रोतेन्द्रिय की तथा चमसाध्वर्युओं से अज्ञानवश कृत्य छूट जाने पर लोमादि की हानि यजमान को होती है (षड्0 ब्रा0 3. 1)। यदि सभी ऋत्विक् अपने–अपने अनुष्ठेय कृत्यों को प्रमादरहित होकर सुसम्पन्न करते हैं, तो यजमान को उपर्युक्त अंगों का लाभ होता है। इसी संदर्भ में कहा गया है कि यजमान की पशु–सम्पत्ति अध्वर्यु पर कीर्ति होता पर, स्वयं वह और सन्तानें उद्गाता पर और योगक्षेम ब्रह्मा पर अवलम्बित है – 'पशवो हाध्वर्युमनुकीर्तिर्होतारं योगक्षेमों ब्रह्माणमात्मा च प्रजाचोद्गातारम्' (षड्0 ब्रा0 3. 1. 10)।

अतएव सभी को अपने कर्तव्य का निर्वाह बड़ी सावधानी से करना चाहिए।

सोमयाग में सोमलता तथा उसके विकल्प –

सोमयाग करने के इच्छुक अधिकारी व्यक्ति (सपत्नीक आहिताग्नि त्रैवर्णिक) के द्वारा सोमलता को खरीदकर उसका अभिषवन किया जाता है। तत्पश्चात्

ग्रहचमसादि तदर्थ विहित पात्रों में उस रस को भरकर, अग्न्याधान के अन्तर्गत गार्हपत्यादि तीनों अग्नियों का आधान किया जाता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक युग में ही नहीं, ताण्ड्य ब्राह्मण के रचनाकाल में भी सोमलता दुर्लभ हो गयी थी। इसीलिए ताण्ड्यब्राह्मणकार ने सोम के स्थान पर 'पूतीक नाम्नी लता के प्रयोग का विधान किया है – 'यदि सोमं न विन्देयुः पूतीकानभिषुणुयुः। [1] और यदि पूतीक भी न प्राप्त हो सके तो उसके स्थान पर अर्जुनतृणों का अभिषवन करना चाहिए – 'यदि न पूतीकानर्ज्जुनानि। [2]

इस सन्दर्भ में एक आख्यायिका दी गई है, जिसके अनुसार पूतीक लता सोमांशु से ही उत्पन्न हुई है। देवों को पूतीक से वही तृप्ति और तुष्टि प्राप्त हुयी थी, जैसी सोम–सेवन से हो सकती है। [3]

सोमयागों का वर्गीकरण –

यज्ञानुष्ठान में लगने वाले समय मुख्यतः सुत्या–दिनों के आधार पर अर्थात् सोमलता के निष्कासित रस का आह्वानीयाग्नि में आहुति–प्रदान जितने दिनों में सम्पन्न हो जाता है उतने ही दिनों की संख्यानुसार सोमयाग तीन प्रकार के हैं 'एकाह, अहीन और सत्र। जिसमें एक ही दिन में सोमरस का सम्प्रदान

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 9. 5. 3

2– ताण्ड्य ब्राह्मण – 9. 5. 3

3– ताण्ड्य ब्राह्मण – 9. 5. 4

सम्पन्न हो जाता है, वह 'एकाह' है। 'अहीन' वह है जिसमें एकाह के पश्चात् 12 दिनों से पूर्व तक सोमरस से याग होता है। 'अहीन' के भी दिनों की संख्यानुसार 'द्वयहः', 'त्र्यहः', 'षडहः', 'द्वादशाह' प्रभृति अवान्तर भेद होते हैं। अहीनयाग में तीनों वर्णो का अधिकार रहता है, दक्षिणा होती है, अन्त में अतिरात्र का अनुष्ठान होता है तथा एक, दो, तीन, चार या अनेक यजमानों के द्वारा निष्पन्न होता है – 'त्रैवर्णिकाधिकारिकः सदक्षिणोऽतिरात्रसंस्थाकः एकद्विचतुराधनेकयजमानकर्तृकः सोमयागोऽहीनः'। -'सत्र वह याग है जिसमें 13 दिनों या इससे अधिक दिनों में प्रतिदिन सोमरस का समर्पण होता है। इसमें सभी यजमान होते हैं, इसीलिए सभी को समान रूप से सत्रजन्य फल प्राप्त होता है और दक्षिणा नहीं दी जाती। सत्र भी दो प्रकार का होता है – रात्रि सत्र और अयनसत्र। 100 दिनों से न्यून अवधि में जब सोमयाग सम्पन्न होता है, तो वह 'रात्रिसत्र' है; उसके अनन्तर सम्पद्यमान सोमयाग 'अयनसत्र' कहलाता है।

'एकाह' सोमयाग में यद्यपि अग्नि में सोमरस का प्रदान एक ही दिन में हो जाता है, तथापि उससे पूर्व चार दिनों में कुछ अंगयागों का अनुष्ठान होता है। इस प्रकार अंगयागों के साथ 'एकाह' सोमयाग पॉच दिनों में निष्पन्न होता है, किन्तु शीध्रतावश अंगयागों के साथ अनेक दिन–साध्य सोमयाग एक ही दिन में भी किया जाता जा सकता है। उस समय वह 'साद्यस्क्र' कहलाता है।

ताण्ड्यमहाब्राह्मण और सामवेदीय श्रौतसूत्रों में अनेक प्रकार के – 'एकाह' उल्लिखित हैं, जिनमें से एक है 'ज्योतिष्टोम'। ज्योतिष्टोम के नामाकरण का हेतु यह है कि 'ज्योति' त्रिवृत्, पंचदश, सप्तदश और एकविंश स्तोमों का पारिभाषिक नाम है; 'ज्यातिष्टोम' इन्हीं त्रिवृत् प्रभृति स्तोमरूप ज्योतियों से निष्पन्न होता है'।[1]

समाप्ति भेद से वस्तुतः ज्योतिष्टोम की तीन ही संस्थाएँ हैं – अग्निष्टोम, उक्थ्य और अतिरात्र; जैसा कि लाट्यायन का कथन है – 'स्वतन्त्रस्य ज्योतिष्टोमस्य संस्था–विकल्पाः। अग्निष्टोम्यमुक्थ्यतातिरात्रगिति।[2] 'ज्योतिष्टोम के सात भेद हैं – अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अरित्र और अप्तोर्याम। जिन सामों–स्तोत्रों से इनका समापन होता है, प्रायः उन्ही के आधार पर इनका नामकरण हुआ है; इस प्रकार अग्निष्टोमसंस्थ सोमयाग अग्निष्टोम साम से पूर्ण होते हैं; उक्थ्यसंस्थ सोमयाग उक्थस्तोत्रों से समाप्त हैं, जो अग्निष्टोम के अनन्तर प्रयोज्य होते हैं; षोडशियाग षोडशि साम से और अतिरात्र संस्थ याग सन्धि सहित रात्रिस्तोत्रों से समाप्त होते हैं। अग्निष्टोमचमस–भक्षण के अनन्तर जब षेडशिस्तोत्र का विधान पूर्ण करके ज्योतिष्टोम सम्पन्न किया जाता है; तब वह अत्यग्निष्टोम कहलाता है। कुछ के नामकरण दूसरे आधारों पर भी हुए हैं। उदाहरण के लिए 'अप्तोर्याम का नामकरण ताण्ड्य ब्राह्मण के अनुसार इस दृष्टि से हुआ है कि इसके द्वारा

1– त्रिवृत्पंचदश सप्तदश एकविंश एतानि ज्येतिषि यत् एतस्य स्तोमा–;तैत्तिरीय ब्राह्मण।

2– ला० श्रौ० सू० – 8. 1. 17

अभीष्ट की प्राप्ति होती है।[1]

अग्निष्टोम की विविधरूपता –

समाप्ति–भेद से ज्योतिष्टोम के सात प्रकारों पर सभी श्रौतसूत्रकार सहमत नहीं है। आपस्तम्ब[2] तथा सत्याषाढ़[3] के अनुसार उक्थ्य, षोडशी, अतिरात्र एवं अप्तोर्याम केवल अग्निष्टोम के परिष्कृत रूपमात्र हैं। शतपथ[4] तथा तैत्तिरीय[5] ब्राह्मणों का मत है कि अग्निष्टोम उक्थ्य, षोडशी एवं अतिरात्र ज्योतिष्टोम के ही विविध रूप हैं।

सोमयाग – हेतु यज्ञ – स्थान (देव–यजन) की रूप रेखा –

सोम–यज्ञ के सम्पादन–हेतु विस्तीर्ण स्थान की आवश्यकता होती है, इसलिए यह गृहाङ्गण में नहीं किया जा सकता। यथार्थ गृह से बाहर कहीं किसी विस्तृत स्थान का सन्धान किया जाता है। षड्विंश (3. 3. 11–25) में देवयजन के लिए उपयुक्त भूमि के अनेक लक्षणों और विशेषताओं का उल्लेख किया गया है, जैसे वह उन्नत न हो, उसर न हो तथा औषधियों से युक्त हो,

---

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 20. 3. 4. 4–5

2– आप0 श्रौ0 सू0 – 14. 1. 1

3– सत्या0 श्रौ0 – 9. 7

4– शत0 ब्रा0 – 4. 6: 3. 3

5– तै0 ब्रा0 – 1. 3. 2

वह स्थान सर्वाधिक उपयुक्त है। किन्तु यदि इस प्रकार का स्थान न प्राप्त हो सके, तो जिस स्थान पर यजमान की श्रद्धा हो, वही देवयजन के लिए उपयुक्त है – वहीं भजन करने से उसे समृद्धि प्राप्त होती है– 'अप्युहैक एवमाहुर्यस्मिन्नेव कस्मिंश्चिद् देशे श्रद्दधानों यजनं ऋध्नोत्येवेति' (3. 3. 25)।

अग्निष्टोम

नामकरण और अनुष्ठान का फल –

सर्वप्रकृतिभूत अग्निष्टोम का नामकाण 'यज्ञायज्ञा वो अग्नये' [1] इस आग्नेयी ऋचा में उत्पन्न 'यज्ञायज्ञीय–अग्निष्टोम' साम से समाप्त होने के कारण हुआ है। [2]

'अग्निष्टोम' के अनुष्ठान से सभी फल प्राप्त हो जाते हैं, इसीलिए यह मुख्य है, अन्य उक्थ्यादि से एक–एक फल की ही प्राप्ति होती है – 'एष वाव यज्ञो यदग्निष्टोमः। एकस्मा अन्यो यज्ञः कामायाह्नियते सर्व्वेभ्योऽग्निष्टोमः'। [3]

1– ग्राम0 – 1. 4. 35–4

2– यज्ञायज्ञीय इत्यस्यामाग्नेय्यामुत्पन्नेनाग्निष्टोमसाम्ना समाप्तेरस्याग्निष्टोम इति नाम सम्पन्नम् – (ताण्ड्य ब्रा0 6. 1. 1 पर सायण –भाष्य)

3– ताण्ड्य ब्राह्मण – 6. 3. 1–2, इस पर सायण–भाष्य का यह अंश द्रष्टव्य है – 'अग्निष्टोम इति सर्वफलसाधनत्वाज्जधन्या इत्यर्थः।

'ज्योतिष्टोम' शब्द से भी मुख्यतः अग्निष्टोम ही विवक्षित होता है, जैसा कि सायण का कथन है– 'यद्यपि सर्वेषामपि ज्योष्टोमत्वमस्ति तथापि उक्थ्यातिरात्रसंस्थयोः पृथक वक्ष्यमाणत्वात् अग्निष्टोमसंस्थैव 'ज्योतिष्टोम' शब्देन उच्यते। [1]

ताण्ड्य ब्राह्मण में अग्निष्टोम को 'ज्येष्ठयज्ञ' की गरिमा से विभूषित किया गया है – 'ज्येष्ठयज्ञों वा एष यदाग्निष्टोमः'। [2] यह श्रेष्ठता प्राप्त करने का साधन है। [3]

काल –

श्रौतसूत्रों और पद्धतियों के अनुसार अग्निष्टोम का आरम्भ किसी भी शुभ दिन हो सकता है। प्रायः शुक्लपक्ष की एकादशी को प्रारम्भ कर पूर्णिमा को समाप्त करने की परम्परा है।

षड्विंशब्राह्मणोक्त विशिष्ट श्रौतयाग –

षड्विंश के प्रथम चार अध्यायों की अधिकांश यागविषयक सामग्री ताण्ड्योक्त यागों की पूरक है; किन्तु उसमें अद्भुतों के अतिरिक्त पॉच याग ऐसे हैं, जिनका निरूपण केवल इसी ब्राह्मण ग्रन्थ में है। ये इस प्रकार हैं–श्येन, त्रिवृदग्निष्टोम (इषु याग), संदंश, वज्र और वैश्वदेव त्रयोदशाह। इनमें से वैश्वदेव त्रयोदशाह को

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 4. 1. 6 पर भाष्य

2– ताण्ड्य ब्राह्मण – 6. 3. 8

3– ताण्ड्य ब्राह्मण – 6. 3. 9

छोड़कर शेष चारों अभिचार फल युक्त हैं।

वैश्वदेव त्रयोदशाह –

यद्यपि कुछ त्रयोदशाह सत्रों का वर्णन पंचविंश में भी है, किन्तु यह भिन्न है, जैसा कि सायण का कथन है– 'पंचविंशब्राह्मणोक्ताभ्यां त्रयोदशाभ्यां विलक्षणं त्रयोदशाहं वैश्वदेवाख्याम्। [1]

राजा सोम को गृहपति बनाकर विश्वेदेवों ने इस सत्र का अनुष्ठान किया था। [2] अन्य सत्र–यागों की भाँति यह भी गवामयन की विकृति है। इसके अनुष्ठाता पुत्र–पौत्रादि के साथ शतवर्षीय आयुष्य–लाभ भी करते हैं। [3] इसकी अनुष्ठानक्लृप्ति इस प्रकार है – अरित्र, चतुर्विंशस्तोमयुक्तप्रायणीयमहः, अभिजित्, तीनस्वरसाम, दिवाकीर्त्यमहः, तीन स्वरसाम, विश्वजित्, महाव्रत और अतिरात्र।

षड्विंशोक्त अभिचार याग –

अभिचार का उल्लेख तो ताण्ड्य ब्राह्मण में ही दिखता है, [4] किन्तु षड्विंश में उसे अनावृत रूप में स्थान मिला।

1– षड्0 ब्रा0 – 4. 6 की उपक्रमणिका।

2– षड्0 ब्रा0 – 4. 6. 2

3– षड्0 ब्रा0 – 4. 6. 5

4– ताण्ड्य ब्राह्मण – 8. 1. 1

श्येनयाग –

शत्रु–हिंसा के प्रयोजन से यह अनुष्ठेय है। [1] श्येन के नाम पर इसके नामकरण का आधार बतलाया गया है कि वह पक्षियों में क्षेपिष्ठ अर्थात् सर्वाधिक तीव्रगामी होता है। श्येन (बाज) जैसे पक्षि–समूह पर टूटकर उन्हें मारने के लिए दबोच लेता है, वैसे ही यह याग भी यजमान के शत्रु को दबोच लेता है। इसके सभी पवमानस्तोत्र त्रिवृत्स्तोमयुक्त होते हैं। अन्य सोमयागों में हविर्धान शकटाकार होते हैं, किन्तु इसमें रथ होते हें। [2] श्येनयाग में प्रयोज्य विशिष्ट साम इस प्रकार हैं – वषट्कारणिधन ('पुनानः सोमधारया' [3] पर आधृत), बृहत्, रथन्तर, वार्षाहर, सफौपगव इत्यादि। आर्षेयकल्प के व्याख्याकार वरदराज के अनुसार श्येनयाग के ऋत्विक् श्रमिकों और योद्धाओं के पुत्र होते हैं किन्तु उन्हें अनूचान अर्थात् वेदानुशीली होना चाहिए [4] दक्षिणा में प्रत्येक ऋत्विक् को प्रतिवर्ग की नौ गायें प्राप्त होती हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है– काण (एकऑख वाली), खोर (लॅगड़ी), कूट (टूटे

1– षड्0 ब्रा0 – 4. 2. 2

2– षड्0 ब्रा0 – 4. 2. 6

3– साम0 सं0 – 511

4– व्रातीनां यौधानां पुत्रा अनूचाना अभिचारणीयायामृत्विजः प्रचरन्ति।। अर्हतामेव पुत्रा इति धानंजय्यः। ते च लोहितोष्णीषा लोहितवाससो निवीताः प्रचरन्ति। आर्षेयकल्प – 3. 15

श्रंगो वाली), वाण्ड (छिन्नपुच्छ)। इस प्रकार प्रत्येक ऋत्विक् को 36 गायें प्राप्त होती है। दक्षिणा में हिरण्यादि भी योग्यतानुसार प्रदान किये जाते है। कात्यायन श्रौतसूत्र से विदित होता है कि यह साद्यस्क्र है और इसके सभी अनुष्ठान एक ही दिन में सम्पन्न कर लिए जाते हैं। [1]

इषुयाग अथवा त्रिवृदग्निष्टोम –

इसका नामकरण त्रिवृदग्निष्टोम की 'इषु' नाम्नी विष्टुतियों के आधार पर हुआ है। [2] इसका प्रयोजन भी शत्रु–वध ही है। त्रिवृतस्तोम तथा बषट्कारणिधनादि साम इसमें विशेषतः प्रयोज्य हैं। इसके ऋत्विगादि तथा शेष कृत्य श्येनयाग के ही समान होत हैं। [3]

संदंशयाग –

जैसे संदंश (अयोगोलकादि) सामान्यतया पकड़ में न आ सकने वाली वस्तु को भी पकड़ने का साधन है, वैसे ही यह याग उस शत्रु के वध के निमित्त है, जो सामान्यरूप से हमारी पकड़ में नहीं आता, जैसा कि षड्0 ब्रा0 में कहा गया है – 'यद्वै दुरादानं सन्दंशेन तदादत्ते। [4] इसमें दो स्तोत्र त्रिवृत्स्तोमयुक्त, दो

1– दीक्षादि सर्व सद्यः क्रियते – कात्या 0 श्रौ0 सू0 – 22. 3. 25–26

2– षड्0 ब्रा0 – 4. 3. 2

3– समानमितरत् श्येनेन–षड्0 ब्रा0 – 4. 3. 7

4– षड्0 ब्रा0 – 4. 4. 3

द्वादशस्तोम युक्त, दो पंचदशस्तोमयुक्त, दो एकविंशस्तोमयुक्त दो चतुर्विंशस्तोमयुक्त और दो त्रिणवस्तोमयुक्त होते हैं। वैयश्व, वार्षाहार, काशीतौपगव और नानद आदि इसमें विशेष प्रयोज्यसाम हैं। इसके भी ऋत्विगादि श्येनवत् ही कहे गये हैं। [1]

वज्रयाग –

शत्रु–हिंसा की दृष्टि से इसकी वज्र से समानता है। [2] इसके सभी स्तोत्र द्वादशस्तोमयुक्त होते हैं, क्योंकि वह वज्ररूप ही होता है। षोडशियुक्त उक्थ्य इसमें अनुष्ठेय है। महानाम्नी ऋचाओं पर आधृत षोडशिसाम इसमें विशेष प्रयोज्य है। शेष कृत्य संदंश के समान ही हैं।

ताण्ड्योक्त प्रायश्चित्त याग –

ताण्ड्य ब्राह्मण के नवमाध्याय के आठ खण्डों (3–10) में सोमयाग (अग्निष्टोम) से सम्बद्ध 10 प्रायश्चित्त यागों का निरूपण हुआ है। क्षुद्रकल्पसूत्र [3] में भी इनका इसी क्रम में वर्णन हुआ है।

साम्युत्थानजंन्य प्रायश्चित्त –

जब सत्र में अनेक अनुष्ठाता यजमानों ने एक साथ दीक्षा ली हो और उनमें से कोई दैवी अथवा मानवीय आपत्तिवश सत्र–समापन से पूर्व ही चला

1– षड्0 ब्रा0 – 4. 4. 10

2– वही – 4. 5. 8

3– क्षुद्रसूत्रम् – 2. 1. 7 ये 11 तक

जाये तो इस प्रायश्चित का अनुष्ठान विहित है। इसमें अतिरात्रसंस्थ विश्वजित् याग की स्तोत्रस्तोम–क्लृप्ति का विधान है।[1] किन्तु वह एकाह प्रकरण मे पठित विश्वजित् से भिन्न है। विश्वजिदतिरात्र में छः पृष्ठस्तोम हैं। इसमें दक्षिणास्वरूप सर्वस्व दान विहित है।

पर्यायकालातिक्रम प्रायश्चित्त –

यदि यह आशंका हो कि उषः काल से पूर्व रात्रिपर्यायस्तोत्रों का समापन नहीं हो सकेगा, तब यह प्रायश्चित्त अनुष्ठेय है। इसमें होतृशास्त्र की 15 ऋचाओं तथा मैत्रावरूण, ब्राह्मणाच्छंसी और अच्छावाक्साध्य 5–5 ऋचाओं के स्तोत्रों से स्तुति की जाती है – इस कारण होतृ–साम में 15 ऋचाएँ तथा तथा अन्यों में 5–5 ऋचाएँ होती हैं। इसकी विस्तृत क्लृप्ति आर्षेयकल्प तथा उसकी व्याख्या में दी गई है।[2]

अर्वाक्स्तवातिष्टव प्रायश्चित्त –

त्रिवृदादिस्तोमगत स्तोत्रों में जब निर्धारित संख्या से कम स्तोत्रियाओं से की जाती है, तो याग एक प्रकार से अस्तुतप्राय ही रह जाता है। इस वैकल्य के कारण उससे अपूर्व का उत्पादन नहीं हो पाता । इसके अतिरिक्त जब विहित

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 9. 3. 1

2– आर्षेयकल्प – 2. 1. 7

स्तोम का अतिक्रमण कर अधिक स्तोत्रियाओं का प्रयोग होता हैं, तब याग 'सुष्टुत' हो जाता है। सायण के अनुसार 'सु' उपसर्ग यहाँ निन्दार्थक है। इन दोनों दोषों के निवारणार्थ इस प्रायश्चित का विधान है। [1]

संसवप्रायश्चित्त –

दो परस्पर शत्रुभूत यजमानों के द्वारा यदि एक साथ और उसी स्थान पर दो सोमयाग किए जा रहे हों, तो यह प्रायश्चित्त विधेय है। इसके सन्दर्भ में विशेष रूप से रौरव, योधाजय, बृहत्, रथन्तर, तौरश्रवस् और विहव्य आदि साम विहित हैं। [2]

सोमापहरणजन्य प्रायश्चित्त –

दीक्षा के अनन्तर सोम क्रय किया जाता है। यदि उससे पहले ही अक्रीत सोम का अपहरण शत्रु कर लें तो सामान्य रूप से विहित प्रायश्चित्त करके अन्य सोम क्रय कर लेना चाहिए। प्रायश्चित्त के प्रसंग में विहित सामों में श्रायन्तीय, यज्ञायज्ञीय और वारवन्तीय विशिष्ट हैं। ऋत्विकों को दक्षिणास्वरूप पाँच गायें प्रदेय हैं। [3]

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 9. 3. 7

2– वही – 9. 4. 9.–10

3– ताण्ड्य ब्राह्मण – 9.5

द्रोणकलशदारणजन्य प्रायश्चित्त –

द्रोणकलश के टूट जाने और उसमें से सोमरस के बह जाने पर इस प्रायश्चित्त का विधान है। इसमें भी श्रायन्तीय साम विहित है।[1]

सोमातिरेक प्रायश्चित्त –

तीनों सवनों में से किसी में अन्त्यचमसगण के होम के पश्चात् यदि अधिक सोम दिखाई पड़े, तब यह प्रायश्चित्त करणीय है। गायत्र और गौरीवितसाम इसमें विशेष रूप से विहित है।[2]

दीक्षितान्यतममरण प्रायश्चित्त –

सत्रार्थ दीक्षित हुए यजमानों में से किसी की मध्य में ही मृत्यु हो जाने की स्थिति में प्रकृत प्रायश्चित्त की योजना है। मृतक का दाह–संस्कार करके कृष्णमृग चर्म पर उसकी अस्थियों को रखकर निकटतम सम्बन्धी (पुत्रादि) को दीक्षित कर मृतक प्रतिनिधिस्वरूप उसके साथ अन्य सभी यजमान सत्रानुष्ठान करें।[3]

सोमक्षयजन्य प्रायश्चित्त –

द्रोणकलशस्थ सोम के क्षय हो जाने पर यह प्रायश्चित्त विहित है, क्योंकि

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 9. 6

2– ताण्ड्य ब्राह्मण – 9. 7

3– ताण्ड्य ब्राह्मण – 9. 8

तब यजमान के प्राण भी क्षय होने लगते हैं।[1] ताण्ड्य ने क्षीण सोम में हिरण्यखण्ड और वसतीवरी नामक जल डालने का विधान किया है।[2]

महावीरभेदनादिजन्य प्रायश्चित्त –

प्रवर्ग्य इष्टि में प्रयोज्य पात्र–विशेष 'महावीर' कहलाता है। वह यदि भग्न हो जाए, तो तीन विशिष्ट ऋचाएँ[3] पढ़कर उसका स्पर्श करना चाहिए। यही इसका प्रायश्चित्त है।

यज्ञ के मध्य में यूप में शाखा का उद्भिन्न हो जाना यजमान के लिए अशुभ है। उसके प्रायश्चित्तस्वरूप पशु–याग करणीय है, जिसमें कई रंगों वाला पशु त्वष्टा को समर्पित किया जाता है।

षड्विंशोक्त प्रायश्चित्त याग –

षड्विंश ब्राह्मण में भी पंचविंश के समान यागों में सम्भाव्य विभिन्न भूलों और त्रुटियों के निराकरण – हेतु विस्तृत प्रायश्चित्त–विधान प्राप्य है, जिसका संक्षिप्त विवरण अधोलिखित है –

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 9. 9. 1

2– ताण्ड्य ब्राह्मण – 9. 9. 2–3

3– ताण्ड्य ब्राह्मण – 9. 10. 1 में उल्लिखित; ये कुछ भिन्नता के साथ ऋ0 सं0 – 8. 1. 12–14 में भी है।

सुब्रह्मण्याह्वान के द्वारा प्रायश्चित्तविधान –

सोमयाग में जाने अनजाने यदि कोई त्रुटि हो गयी हो तो षड्0 ब्रा0 के अनुसार विद्वान् सुब्रह्मण्य सुब्रह्मण्याह्वान कर उसका प्रायश्चित्त कर सकता है– 'अथो खल्वाहुर्यच्चागतं यच्चानवगतं सर्वस्यैष प्रायश्चित्तिरिति।' [1]

तीन व्याहृति–होम –

तीनों वेदों से सम्बद्ध ऋत्विकों–होता, अध्वर्यु और उद्गाता यदि अपने विहित कर्म के अनुष्ठान में कुछ न्यूनाधिक्य कर जायें तो उसके प्रायश्चित्तस्वरूप भूरादि क्रमशः तीन व्याहृति–होम अनुष्ठेय हैं – ये ब्रह्मा के द्वारा करणीय हैं। यदि भेदविशेषगत अथवा ऋत्विक्विशेषगत त्रुटि का निश्चय न हो सके, तो तीनों व्याहृतियों से एक साथ होम होता है। [2]

हविष् के गिर जाने और पात्रों के टूट जाने पर प्रायश्चित्त –

हविष् के स्कन्दित होने और पात्रों के टूट जाने पर यज्ञ त्रिविध उत्क्रमण कर जाता है। उसके प्रायश्चित्तस्वरूप तीन विभिन्न मन्त्र पढ़कर अभिमर्शन का विधान है। यज्ञ–हविष् का न्यूनाधिक्य होने पर भी प्रायश्चित्तस्वरूप विष्णु और

1– षड्0 ब्राह्मण – 1. 2. 3

2– षड्0 ब्रा0 – 1. 5. 7–11

वरूण की ऋचा से जल के उपनयन की विधि उल्लिखित है।[1]

विराट् छन्द की अधिकता और न्यूनता जन्य प्रायश्चित्त –

विराट् में 10 अक्षर होते हैं।[2] कतिपय ऋत्विक् इस संख्या का अतिक्रमण कर जाते हैं; जिससे उन्हें लोक–परलोक में श्रान्ति अनुभव होती है और सुकृत–क्षय होता है, अतएव प्रायश्चित्त–विधेय है। चॅकि इस स्थल पर किसी प्रायश्चित्त–विधि का उल्लेख नहीं है, अतः सायण का कथन है कि यहाॅ भी 'स्वः स्वाहा' कह कर होम कर देना चाहिए[3]

ब्रह्मा का मौन – भंग होने पर प्रायश्चित्त –

षड्0 ब्रा0 के अनुसार जिस समय जो ऋत्विक् अपने वेद–विहित कर्म के अनुष्ठान में संलग्न होता है, उस यज्ञ की स्थिति उसी ऋत्विङ्मण्डल में होती है। उदाहरणार्थ होता जब शस्त्र–पाठ में निरत होता है, तब यज्ञ होतृ मण्डल में स्थित रहता है। यही बात अन्य ऋत्विकों और वेदों के विषय में भी है। अन्य ऋत्विको के कार्य करते समय ब्रह्मा को मौन रहना चाहिए, किन्तु यदि किसी कारणवश ब्रह्मा अपने मौन को भंग कर दे तो प्रायश्चित्त स्वरूप उसे भूरादि तीन व्याहृतियों का मानसिक ध्यान करना चाहिए। इस विषय में अन्य विकल्प भी हैं,

---

1– षड्0 ब्राह्मण – 1. 5. 12–14

2– दशाक्षरा वै विराट् – शत0 ब्रा0 – 1. 1. 22

3– षड्0 ब्रा0 – 61 तथा उस पर सायण – भष्य।

जिनमें 'इदं' विष्णुर्विचक्रमे॰ ऋचा का ध्यान, महाव्याहृतियों से होम प्रभृति सम्मिलित हैं।[1]

मृण्मययज्ञ–पात्र के भग्न होने पर प्रायश्चित्त –

यज्ञ में शराब और उदंचनादि मुण्मय पात्रों के टुटने पर 'भूमिर्भूमिमगान्माता मातरमप्यगात 0 ' मन्त्र पढ़कर भग्न पात्र का अभिमर्शन विहित है।[2]

ऋत्विकों के द्वारा कर्म–परित्याग करने पर प्रायश्चित्त –

ऋत्विकों के द्वारा स्वकार्य में त्रुटि करने पर यह प्रायश्चित्त अनुष्ठेय है। यजमान को कैसे विदित हो कि किस ऋत्विक् ने अपने कर्म का परित्याग किया है ? इसका समाधान षड्0 ब्रा0 में यह है कि अध्वर्यु, होता, उद्गाता और ब्रह्मा का सम्बन्ध यजमान के क्रमशः पशुओं कीर्ति, जीवन और सन्तानों तथा योगक्षेम से है।[3] इनके किसी में न्यूनता होने पर ऋत्विक्विशेषगत प्रमाद का निश्चय किया जा सकता है। इसके प्रायश्चित्तस्वरूप होम–विशेष और स्रुक् में निबद्ध हिरण्य–दान विहित है। षड्विंश ने इसे यागरूप ही बतलाया है।[4]

1– षड्0 ब्राह्मण – 1. 6. 5–20

2– षड् ब्राह्मण – 1. 5. 21

3– षड्0 ब्रा0 – 3. 1. 10 तथा 3. 2. 1–4

4– अथ यदाह यज्ञो वाव यज्ञस्य प्रायश्चित्तः – षड्0 ब्रा0 – 3. 2. 4

सामविधान ब्राह्मणगत प्रायश्चित्त प्रयोग –

ताण्ड्य और षड्विंश ब्राह्मणों में याग–गत त्रुटियों के ही सन्दर्भ में प्रायश्चित्त प्रयोग विहित है, किन्तु सामविधान ब्राह्मण तक सामान्य जीवन–व्यवहारों में सम्भावित अपकृत्यों के परिमार्जन–हेतु धर्मशास्त्रीय दृष्टि से भी प्रायश्चित्त–प्रक्रिया का निर्धारण हो चुका था, जिसका विवरण निम्नलिखित है –

तीन कृच्छ्र व्रत –

साम विधान ब्राह्मण में कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र तथा कृच्छ्रातिकृच्छ्र संज्ञक तीन कृच्छ्र व्रतों का प्रायश्चित्त–प्रयोगों के रूप में निरूपण है। [1] इनका प्रयोजन अपवित्र व्यक्तियों की शुद्धि है। [2] सायण और भरतस्वामी के तद्विषयक भाष्यांशों के अवलोकन से विदित होता है कि इनकी मान्यता विशिष्ट तप के रूप में हो रही है। [3] निर्धारित प्रक्रिया से उपवास तथा कतिपय सत्य भाषणादि नियमों का पालन ही इसमें विहित है। तीनों कृच्छ्रों में उपवास की अवधि प्रायः बढ़ती गई

1– सामवि० ब्रा० – 1. 2

2– प्रथमं चरित्वा शुचि पूतः कर्मण्यो भवति। द्वितीयं चरित्वा यत्किंचिदन्यन्महापातकेभ्यः पापं कुरूते तस्मात् प्रमुच्यते। तृतीयं चरित्वा सर्वस्मादेनसो मुच्यते। – सामविधान ब्राह्मण – 1. 2. 11

3– त्रीन् कृच्छ्रान् तपोविशेषान् व्याख्यास्यामः। – वही – 1. 2. 1 पर भाष्य।

है। इनके साथ ही विभिन्न साम भी विहित है। सामविधान ब्राह्मण के अनुसार इन तीन कृच्छ्रों के पालन से व्यक्ति वेदज्ञानसाध्य विभिन्न फलों का अधिकारी हो जाता है। – 'अथैतांस्त्रीन् कृच्छ्रान् चरित्वा सर्वेषु वेदेषु भवति।'' [1]

अन्य प्रायश्चित्त –

सामविधान ब्राह्मण के प्रथम प्रपाठक (5 वें से अष्टम अनुवाक तक) में विभिन्न दुष्कृत्यों के प्रायश्चित्त विहित है। पंचम अनुवाक में अश्लील–भाषण, ब्राह्मणों, बन्धुओं और उपाध्यायादि से परुषभाषण, अनध्याप्य – अध्यापन अयाज्य–भोजन, अमेध्य–प्राशन, सुरा–पान, भ्रूण हत्या, ब्रह्म–हत्या और सुवर्णादि की चोरी करने पर प्रायश्चित्तों का विधान है। प्रायश्चित्त की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्व है मन्त्रों का, जो समस्त पापों के शोधन में समर्थ माने गये हैं – 'अनादेशे मन्त्रा बलवन्तस्तपोऽन्विताः पावना भवन्ति।' [2] षष्ठ अनुवाक में परधनापहरण और अगम्यागमन के सन्दर्भ में प्रायश्चित्तों का विधान है। एक ही अपराध की गुरुता वर्णादि के अनुसार भी घटती–बढ़ती दिखाई देती है। ब्राह्मण और अब्राह्मण के धन–हरण में अन्तर दिखालाई देता है। उस युग की मान्यताओं को देखते हुए ये स्तेय और यौनसम्बन्धी अपराध निःसन्देह असामान्य है, किन्तु सामविधान ब्राह्मण में इनका जो प्रायश्चित्त विधान है, वह कुछ अल्प प्रतीत होता है। उदाहरण के लिए ब्राह्मण का धनापहरण करने

1– सामवि० ब्रा० – 1. 2. 12

2– सामविधान ब्राह्मण – 1. 5. 2

पर सामविधान में एक मास तक जलाशय के निकट निवास, चतुर्थ–काल में भोजन और 'शुकं ते अन्यद्0' साम का गान विहित है; गुरु अथवा ब्राह्मण की पत्नी के साथ अवैध सम्बन्ध करने पर अल्प भोजन, तीनों कृच्छ्रों का साधन तथा निर्दिष्ट सामगान ही वांछित है, जबकी स्मृतियों में इन्हीं अपराधों के लिए शिश्नच्छेद अथवा अण्डच्छेद तक का विधान है।

सप्तम अनुवाक में चतुर्विध अपराधों के सन्दर्भ में प्रायश्चित्त विहित है। प्रथम कोटि के अपराध वे हैं, जिनका सम्बन्ध दान अथवा प्रतिग्रह से है, जैसे – 'अदत्त–आदान अथवा बिना किसी विपत्ति के दान–ग्रहण आदि। द्वितीय कोटि हत्या और ताड़ना सम्बन्धी अपराधों की है। तीसरी श्रेणी में कामजन्य अपराध हैं, जैसे– योनिभिन्न अंग पर वीर्य–स्खलन, ब्रह्मचारी के द्वारा स्त्री–गमन, अग्रज के अविवाहित रहते हुए अनुज का विवाह कर लेना आदि। चतुर्थ श्रेणी जीविका सम्बन्धी अपराधों की है, जो आज वास्तव में अपराध या विचलन नहीं माने जाते। उस युग में ब्राह्मण से ही यही अपेक्षा की जाती थी कि वह अध्ययन – अध्यापन और यजन–याजन से ही अपनी जीविका चलाये, किन्तु जो ब्राह्मण इसके विपरीत अन्य वर्णों के लिए नियोजित व्यवसायों से अपनी जीविका उपार्जित करने लगते थे, उनके लिए प्रायश्चित्त का विधान है।

अष्टम अनुवाक में रसादि–विक्रय, अश्वादि–प्रतिग्रह, अदत्त कन्या के साथ

विवाह, गवादि–अभिघात सम्बन्धी अपराधों की प्रायश्चित्त स्वरूप प्रायः कृच्छ्रानुष्ठान और विभिन्न सामों का गान विहित है।

निष्कर्ष यह है कि इन चारों अनुवाकों में सामान्य व्यवहारगत, अर्थिक और यौन सम्बन्धी अपराधों के सन्दर्भ में प्रायश्चित्त विधान है।

कुछ ऐसी स्थितियों में भी प्रायश्चित्त विधान प्राप्त होता है, जो वस्तुतः अपराध–कोटि में नहीं आती' जैसे दुःस्वप्न–दर्शन, अक्षि–स्पन्दन, गृह–दाह, मूषकों के द्वारा अन्न–भक्षण, कूर्चनाश, गृहगत–उपकरण–विनाश और पुत्र–भृत्यादि का कष्ट पाना। [1]

इस प्रकार के प्रसंगों में मनुष्य प्रायः विवश हो जाता है' तथापि ब्राह्मणकार के द्वारा प्रायश्चित्त–विधान संभवतः अदृष्टजन्य अमंगल की आंशका और उसके निवारण की भावना से किया गया है।

सामविधानब्राह्मणगत काम्यकर्म –

प्रस्तुत ब्राह्मण के द्वितीय और तृतीय प्रपाठको में विभिन्न काम्यकर्मों का विधान है। इनके अनुष्ठानोल्लेख से पूर्व यह कहा दिया गया है कि जहॉ कोई विशिष्ट निर्देश न हो, वहॉ त्रिरात्र उपवास करणीय है और कृत्यारम्भ पुण्य नक्षत्र से होना चाहिए। [2]

1– सामविधान ब्राह्मण – 1. 8. 7–13

2– सामविधान ब्राह्मण – 2. 1. 1

द्वितीय प्रपाठक के प्रथम अनुवाक में बहुपरिग्रह और बहुयाजन विषयक शुद्धि कर्म प्रायश्चित्त प्रकरण में भी आये हैं, किन्तु दोनों मे अन्तर यह है कि प्राश्चित्त जहॉ आवश्यक है, वहीं काम्यकर्म से स्वेच्छागत हैं। आवश्यकता से अधिक दान लेना अथवा अधिक संख्या में यज्ञ कराने वाला यदि अपने अन्तःकरण में ग्लानि दौर्बल्य की अनुभूति कर रहा हो, तो वह निर्दिष्टसामों के अनुष्ठान से दौर्बल्य को दूर कर सकता है। यों उस पर एतदर्थ कोई सामाजिक बाध्यता नहीं है।

काम्य–कर्मों में सर्वप्रथम आयुष्यबर्धक प्रयोग दिये गयें हैं, क्योंकि दीर्घायु के अभाव में कोई भी यागानुष्ठान सम्पन्न नहीं हो सकता। [1]

द्वितीय अनुवाक में तीन काम्य–कर्म उल्लिखित हैं – बालमृत्युनिवारणार्थ, राक्षसों के द्वारा गृहीत होने पर शान्त्यर्थ तथा रोगशमनार्थ। इनकी अनुष्ठान विधियों के अवलोकन से प्रतीत होता है कि गॉव–गॉव और घर–घर में फैले लोक–विश्वासों टोन–टोटकों को एकत्र कर और उनके साथ विभिन्न सामों का पुट देकर इन्हें प्रस्तुत किया गया है। लोकतत्त्व की दृष्टि से इन लोक विश्वासों तथा टोटकों का अनुशीलन अत्यन्त रोचक है। इन काम्यकर्मों में अभिचार का सम्मिश्रण स्वभावतः है। सामविधान ब्राह्मण को इन अभिचारमिश्रित अनुष्ठानों में केवल विशिष्ट वर्ग के समानान्तर चल रही जनसामान्य की आस्थाओं और विश्वासों को भी समन्वित करने का प्रयत्न किया गया है।

1– सामविधान ब्राह्मण – 2. 1. 1

इन अनुष्ठानों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

बाल-मृत्यु निवारणार्थ –

यह अनुष्ठान उस स्त्री के द्वारा अनुष्ठेय है, जिसके पुत्र उत्पन्न होने के पश्चात् जीवित न रहते हों। इसमें गर्भ के तीसरे मास न्यग्रोधशुङ्ग और शरकण्डे के मूल को उखाड़ पीस कर तीन पर्वों वाली मणि बनाई जाती है। तत्पश्चात् व्याहृति–होम होता है। विहित सामविशेष से मणि पर भी आहुति डाली जाती है। गर्भिणी इसे अपनी मेखला में पहने तथा नवजात शिशु के कण्ठ में बाँध दे।

राक्षसों से मुक्ति - हेतु –

इसमें राक्षस-ग्रस्त व्यक्ति के निमित्त अशनि–आहत वृक्ष की लकड़ी, श्वेतवर्णीय गाय के घी और बिल्व वृक्ष की मणि से पूर्ववत् मणि बनाने, होम करने और विशिष्ट सामों के गान का निर्देश है।

रोग-शान्ति-हेतु –

इसमें विशेष सामों से कुम्भगत घी से होम करने, हुत शेष घी के खाने आदि का विधान है।

सर्प-भय से मुक्ति-हेतु –

पूर्ववत् शंख–पुष्पी और सर्पगन्ध से मणि–निर्माण, होम और विशेष साम विहित है। [1]

1– सामविधान ब्राह्मण – 2. 3. 2

वार्धक्य और मृत्युपर विजय पाने के निमित्त साम विशेष के गान–विधान के अतिरिक्त मास भर वन–वास तथा तन्तु–निर्मित्त वस्त्र न पहनने का निर्देश है।[1]

आभिचारिक प्रयोग –

सामविधान ब्राह्मण ने एक पुरुष अथवा स्त्री को वश करने, सम्पूर्ण कुटुम्ब को वश में करने, सौभाग्य–कामनाजन्य, वेश्याओं और सन्यासियों को वश में करने तथा कन्या के लिए वरलाभार्थ अनेक विलक्षण कृत्यों का विधान किया है।[2] उनमें से कतिपय इस प्रकार है– जिस स्त्री को वश में करना हो, उसकी मिट्टी से प्रतिमा बनाकर, प्राण–प्रतिष्ठा करके, उसपर पैर रखकर निर्दिष्ट विशिष्ट साम का जप विहित है।[3]

शत्रु–उच्चाटनार्थक प्रयोग –

एतदर्थ तीन दिन उपवास करके जलती हुयी चिता से अंगारे लाकर, चौराहे पर कांटेदार लकड़ियों पर मत्स्य और कृकर पक्षियों की आहुतियाँ साम विशेष से देने तथा तदन्तर दग्ध मत्स्य और कृकर को वत्रपुट में रखकर, उसमें

1– सामविधान ब्राह्मण – 2. 4. 4

2– सामविधान ब्राह्मण – 2. 5

3– सामविधान ब्राह्मण – 2. 5. 1

हरितालमिश्रित गो–हृदय का शोणित मिलाने और उसे शत्रु के घर में विखेर देने का विधान है।[1]

धान्यादि समृद्धि – हेतु –

एतद्विषयक विभिन्न प्रयोग तृतीय प्रपाठक के तृतीय खण्ड में प्राप्य है। विभिन्न सामों के गान के अतिरिक्त सत्य – संभाषणादि नियम व्यक्ति को समृद्धि की ओर अग्रसर करने में निःसन्देह समर्थ हैं। इस प्रंसग में जो प्रयोग सामान्य परम्परा से भिन्न है उनमें से एक में मणिभद्र यक्ष के निमित्त क्रमशः अज और वराह, कुक्कुर और मत्स्य–मांस के समर्पण की विधि।[2]

वास्तु-शान्ति –

इसका अभिप्राय है भूमिगत राक्षसादि का निवारण। वास्तु की प्रत्येक दिशा को रज्जु से आवृत कर, सभी कोनों को गोमयोदक से लीपकर, शमी, पलाश और बिल्व–समर्पण (प्रजापति, इन्द्र, वायु, यम, पितृगण, वरूण, महाराज, सोम, महेन्द्र तथा वासुकि प्रंभृति के निमित्त) भी इसमें विहित है।[3]

1– सामविधान ब्राह्मण – 2. 6. 6

2– सामविधान ब्राह्मण – 3. 3. 3–4

3– वही – 3. 3. 2–3

राजाभिषेक –

सायण के अनुसार यह कृत्य पुरोहित–कर्तृक है। अभिषेक के साधनभूत द्रव्यों में व्रीहि, यव, तिल, माष, दधि, मधु, पुष्प, स्वर्णखण्ड, पवित्र नदियों तथा समुद्र से पृथकशः समानित जल है। उदुम्बरनिर्मित सिंहासन पर बिछे व्याघ्र–चर्म पर समासीन राजपदाभिलाषी व्यक्ति का अभिषेक जीवित गायों के शृङ्गकोश से विहत है। गेय साम रहस्य है। ग्राम, दासियाँ आदि पुरोहित को दक्षिणास्वरूप दी जाती हैं। [1]

अद्भुत एवं अभिचार शान्ति [2] –

इस सन्दर्भ में सामविशेषों से साध्य होमादि विहित हैं। 'प्रदैवोदास' साम से कृष्णतिलों की अग्नि में आहुति डालने पर आभिचारिक रूप से प्रयुक्त कृत्यादि प्रयोक्ता के पास ही लौट जाती है।

पिशाच वशीकरणार्थक प्रयोग [3] –

पिशाचों को अपने वश में करने का इच्छुक व्यक्ति एक वर्ष तक चतुर्थ काल में ही भोजन करें, कपाल में भिक्षा माँगे, विहित सामविशेष की आवृत्ति करें।

1– सामविधान ब्राह्मण – 3. 5. 1

2– सामविधान ब्राह्मण – 3. 5. 3–4

3– सामविधान ब्राह्मण – 3. 7

भूतवशीकरणलभ्य धनार्थ प्रयोग –

सप्तमी से चतुर्दशी तक 8 दिन उपवास करके अमावस्या के दिन मुख में आज्य रखकर सामविशेष का मानस जप करने और आज्य होम करने से दो भूत दिखलाई देते हैं, वे अनुष्ठाता को पॉच कार्षापण देते हैं, उन्हें व्यय करने से वे फिर लौट आते हैं।[1]

मानुषादि भोगों की प्राप्ति [2] –

शुक्ल पक्षगत दिनों में उपवास, स्नान, श्वेतवस्त्र–धारण और चन्दन लेपन करके निर्दिष्ट सामों की सहस्र आवृत्ति से देव और मानुष भोग सुलभ हो जाते हैं।

त्रैलोक्याधिपतित्व - प्राप्ति [3] –

एक मास उपवास और मास भर अयाचित भोजन का क्रम चार वर्षों तक अपनाने और सामविशेष की आवृत्त से व्यक्ति त्रैलोक्य का स्वामित्व प्राप्त कर लेते हैं।

1– सामवि0 ब्राह्मण – 3. 7. 5

2– सामवि0 ब्रा0 – 3. 9. 3

3– सामवि0 ब्राह्मण – 3. 9. 5

सामविधानगत अनुष्ठानों का विश्लेषण –

सामविधान ब्राह्मण की सामग्री का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि –

(1) इसका मुख्य प्रयोजन जनसामान्य की सर्वविध आंकाक्षाओं के साथ साम–गान को सम्बद्ध कर उसे लोकप्रिय बनाना है।

(2) इस भ्रम का अपनयन भी सामविधानकार का उद्दिष्ट प्रतीत होता है कि सामगान मूलतः सोमयागों से ही सम्बद्ध है, जो बहुकाल बहुध्ययसाध्य याग है और जिनका अनुष्ठान केवल सम्राट, सामन्त और समृद्ध ही कर सकते हैं।

(3) उपासना और अतिमानवीय सिद्धियों के सम्बद्ध में प्राप्त विभिन्न प्रयोग साधको के मध्य गुरुपरम्परा से मौखिक रूपेण प्रचलित पद्धतियों से चुने गये प्रतीत होते हैं।

(4) विहित औषधियॉ भी परम्परा से जनजीवन में प्रचलित रही हैं।

(5) अभिजात और सामान्य जन के मध्य सामविधान ब्राह्मण सेतु के सदृश हैं। उन व्यक्तियों को, जो अपने भौतिक और पारमार्थिक जीवन को विकसित करने के लिए बड़े यागों का अनुष्ठान नहीं कर सकते थे, सामवि0 ब्रा0 ने साम–साधना को व्ययशून्य पद्धति देकर जन–जीवन की धार्मिक निष्ठा को सार्थक सम्बल प्रदान किया है।

(6) लोक – जीवन के विभिन्न अंचला में प्रचलित कतिपय टोटकों को निःसन्देह इसमें स्थान मिला है, किन्तु नैतिकता के स्तर को गिरने नहीं दिया गया है। विभिन्न टोटकों के विधान के साथ ही आचारगत नियमों का विधान केवल टोटको में फँसे व्यक्तियों की आत्मचेतना को परिष्कृत करने के लिए ही है।

सामवेदीय ब्राह्मणों में प्राप्त यज्ञ-विधान का विश्लेषण एवं विवेचन –

सामवेदीय ब्राह्मणों मे विहित विस्तृत यज्ञ–विधान का विवरण प्रस्तुत करने का प्रयोजन ऋत्विकों के निमित्त किसी यज्ञ–पद्धति का प्रस्तुतीकरण नहीं है। इस विवरण के आधार पर किसी याग का यथावत सम्पादन भी नहीं कराया जा सकता है। इसका तात्विक उद्देश्य सामवेदीय ब्राह्मणों मे निहित यज्ञ–संस्था के विभिन्न अंगो का आलोचनात्मक दृष्टि से परिचय मात्र प्रस्तुत करना है।

प्रकृत परिचयात्मक सामग्री से यह अनुभव सरलता से हो जाता है कि ब्राह्मणग्रन्थकारों ने सोमयागों की विस्तृत एवं जटिल संरचना के उपादानमूलक तथ्यों का प्रस्तवनपूर्ण तत्परता एवं सजगता से किया है।

यज्ञ–योजना वस्तुतः मानव–जीवन एवं प्रकृति की अविकल समान्तरता को उपलक्षित करती है। यज्ञ जीवन के विभिन्न व्यापारों एवं कार्य–कलापों के

साथ–साथ चलता हुआ एक समानान्तर सृष्टिरूप व्यापार प्रतीत होता है। हमारे इस जागतिक जीवन के स्वप्न, आकांक्षाएं और कामनाएँ ही याग अनुष्ठान के प्रयोजन रूप में अन्वित हुयी हैं। इस दृष्टि से ब्राह्मण ग्रन्थकारों ने यज्ञ के देवता, द्रव्य, मंत्र और अन्य सभी तथ्यों की मानव–जीवन से यथातथ्य समरूपता प्रदर्शित करने का ही प्रयत्न किया है। यागानुष्ठान के माध्यम से निरन्तर हम अपने स्वरूप के ही निकट हो जाते हैं और यज्ञ के समानान्तर संसार तथा मानव जीवन के मध्य पूर्ण समरसता ही हमारा उद्दिष्ट है – यह तथ्य यज्ञों की विधि ा–वर्णना के समय ब्राह्मणग्रन्थकारों के मन में सदैव निहित रहता है। उदाहरण के लिए एक स्तोत्रिया के औचित्य का प्रदर्शन करते हुए कहा गया है कि 'पवस्व वाचो अग्निय' ऋचा में आये 'पवस्व' और 'वाक्' क्रमशः पुरुष और स्त्री रूप हैं।[1] अतएव यह स्तोत्रिया मिथुन भाव को प्रशस्त करने वाली है। मिथुन भाव ही सृष्टि का मूल है। सम्पूर्ण मानव–संस्कृति, अन्धकार से आलोक की दिशा में अग्रसर होने की कथा है।

यज्ञ से ही देवों ने देवत्व की प्राप्ति की तथा स्वर्ग पर अधिकार किया – 'एतेन वै देवा एषु लोकेष्वाध्र्नुवन् एतेन स्वर्ग लोकमायन् ।'

एक सम्पूर्ण जीवन–दर्शन के रूप में यज्ञ–संस्था का प्रस्तुतीकरण इन ब्राह्मणग्रन्थों में है। ताण्ड्यादिगत यज्ञ–भावना की सम्यक् अभियक्ति के सन्दर्भ

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 4. 2. 13

में कहा जा सकता है कि 'यज्ञ केवल हवि का प्रक्षेपमात्र नहीं है। इसका प्रयोजन विश्व की परम शान्ति और सौख्य का सम्पादन है। विश्व में मानवों तथा देवों के बीच परस्पर कल्याण का साधन यज्ञ ही है। यज्ञ व्यक्ति तथा समाज दोनों के कल्याण का माध्यम है। अभिप्राय यह है कि यज्ञ–संस्था सामाजिक तथा वैयक्तिक उभय प्रकार की उन्नति की निमित्त है।

निःसन्देह अध्यवसायात्मक मानव – जीवन क्रतुमय ही है – 'अथ खलु क्रतुमयः पुरुषः। [1]

सामविधान ब्राह्मण तक आते–आते यज्ञ का स्थूलरूप विलीन होता गया है और स्वाध्याय तथा तप उसका स्थान लेते चले गये – 'कथं नु वयं स्वर्ग लोकमियाम इति। तेभ्यः एतत् स्वाध्यायाध्ययनं प्रयच्छन्त, तपश्चैताभ्यां स्वर्ग लोकमेष्यथेक्तिताभ्यां स्वर्गं लोकमायन्।' [2]

इस प्रकार सामवेदीय ब्राह्मणग्रन्थों में यज्ञ संस्था के उदय और विकास की साङ्गोपाङ्ग रूपरेखा समाकलित हैं। अग्निहोत्र [3] यदि इस संस्था का

1– छा0 उप0 – 3. 14. 1

2– सामवि0 ब्रा0 – 1. 1. 15 तथा 17

3– जैमि0 ब्रा0 – 1. 65

आरम्भ बिन्दु है, तो विश्वसृजामयन पराकाष्ठा है। वस्तुतः सामवेद की सम्पूर्ण योजना ही यज्ञात्मक दृष्टि से हुई है, अतएव उसके ब्राह्मणग्रन्थों में उसके विभिन्न सोपानों का यथातथ्य चित्रण स्वाभाविक ही है। इसके अतिरिक्त सामों और स्तोमस्तोत्रों का विभिन्न सोमयागों में जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म विनियोग है, वह भी अत्यन्त सूक्ष्मेक्षिका प्रतिभा का परिणाम प्रतीत होता है।

चतुर्थ अध्याय

"सामवेदीय ब्राह्मणों में उपलब्ध संस्कृति"

सामवेदीय ब्राह्मणकालीन –

(1) भारत

(2) आर्थिक स्थिति

(3) सामाजिक जीवन

(4) व्रात्य–मीमांसा

(5) यति

(6) शिक्षा प्रणाली

(7) स्त्री शिक्षा एवं समाज

सामवेदीय ब्राह्मणों में उपलब्ध संस्कृति

सामवेदीय ब्राह्मणकालीन 'भारत' –

सामवेदीय ब्राह्मणों में सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से पुष्कल सामग्री निहित हैं। [1] सामान्यतः इस युग को उत्तरवैदिक नाम से अभिहित किया जाता है। सभी मंत्रसंहिताओं तथा ऐतरेय और शतपथ ब्राह्मणों से यह परवर्ती है तथा गोपथ ब्राह्मण से पूर्ववर्ती है। सामवेदीय जैमिनीय ब्राह्मण का प्रणयन ऐतरेय से भी पहले हो चुका प्रतीत होता है। पं0 शंकर बालकृष्ण दीक्षित के गणना–क्रम [2] को यदि स्वीकार किया जाये तो विक्रम संवत से प्रायः तीन सहस्र वर्ष पूर्व ताण्ड्य ब्राह्मण का रचना–काल निर्धारित किया जा सकता है।

ताण्ड्य ब्राह्मण की रचना सरस्वती नदी से गोमती नदी के मध्यवर्ती भूभाग में सम्पन्न हुई जिसके अन्तर्गत प्रमुखतया कुरु–पांचाल जनपद और नैमिषारण्य है। ताण्ड्य में सारस्वत सत्रों के अनुष्ठान स्थल के सन्दर्भ में सरस्वती और

1– **The Brahamanas of the Samveda Coantian much matter that is Interesting from a Histori -cal Point of view.**

- A. A. Macdonell; A History of Sanskrit Litera -ture. Page 178

2– भारतीय ज्योतिष (उ0 प्र0 हिन्दी संस्थान, लखनऊ से प्रकाशित)

दृषद्वती नदियों के विनशन (जहॉ सरस्वती लुप्त हुई) तथा प्लक्षप्रास्रवण (जहॉ उसका पुनराविर्भाव) का उल्लेख है।[1] विनशन से प्लक्षप्रास्रवण की दूरी अश्वगति से 44 दिनों के मार्ग की थी।[2] यमुना नदी भी उल्लिखित है।[3] जो कारपुच प्रदेश के मध्यवर्ती भाग में प्रवाहित होती थी।

कुरुक्षेत्र की विशेष महत्ता निरुपित है– 'प्रजापतेर्वेदिर्य्यावत् कुरुक्षेत्रम्'।[4] जैमिनीय–ब्राह्मण में गंगा का उल्लेख भी है।[5] इस प्रकार सरस्वती, गंगा और यमुना नदियों की यही अन्तर्वेदी कुरुपांचाल प्रदेशों की भूमि सामवेदीय ब्राह्मणों की रचना – स्थली और यज्ञमयी संस्कृति के उत्कर्ष का केन्द्र रही है। नैमिषारण्य और उसके निवासियों की समृद्धि के संन्दर्भ[6] इस अंचल के भी सांस्कृतिक अवदान के उद्घोषक हैं।

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 25, 10. 1; 11; 25, 10. 14

2– वहीं – 25, 10, 21 तथा जैमि0 ब्राह्मण 4. 26

3– वहीं – 24. 11. 22

4– तां0 ब्रा0 – 25. 13. 3

5– जैमिनीय ब्राह्मण – 3. 183

6– तां0 ब्रा0 – 25. 64

अपनी सहायक और निकटवर्तिनी नदी दृषद्वती के साथ सरस्वती आर्य निवास की पूर्व सीमा का अंकन करती रही है।

वनों में नैमिष के अतिरिक्त खाण्डववन का भी उल्लेख है।[1]

प्राचीन भारतीय जनपदीय नामों से ही उनके निवासियों की भी पहचान की जाती रही है। जिन प्रमुख स्थानों और उनके निवासियों का सामवेदीय ब्राह्मणों में उल्लेख है, उनका विवेचन इस प्रकार है –

1– कुरु–पांचाल, 2– मगध, 3– महावृष, 4– केकय, 5– कम्बोज, 6– निषाद।

कुरुपांचाल –

मध्यप्रदेश के नाम से विख्यात इन जनपदों के ब्राह्मण तथा राजन्य अपनी प्रतिभा और विद्वत्ता के लिए विश्रुत थे। यज्ञविषयक विवादों की मीमांसा और गूढ़ औपनिषद दार्शनिक विवेचन का यह केन्द्रबिन्दु रहा है। सम्प्रति यह दिल्ली से नैमिषारण्य तक के जनपदों को समेटने वाला भूभाग माना जा सकता है। प्रो0 ए0 डी0 पुसालकर के अनुसार यहीं की भाषा और उसका उच्चारण–सौष्ठव सम्पूर्ण देश में आदर्श समझे जाते थे।[2]

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 25. 6. 4

2– **Pusalkar A. D. : The Vedic Age, Page 257.**

मगध –

ताण्ड्यगत व्रात्यस्तोम यागों के सन्दर्भ में सूत्रकारों ने मगध का उल्लेख किया है।[1] सम्भवतः व्रात्यों के क्रिया–कलाप का यह मुख्य केन्द्र था। जैमिनीय ब्राह्मण में महाव्रत के सन्दर्भ में यह उल्लिखित है।

महावृष –

छान्दोग्योपनिषद् ने महावृष प्रदेश के रैक्वपूर्ण ग्रामों तथा जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण ने राजा हृतस्वाशय का उल्लेख किया है।[2] इतिहासज्ञों ने इसे उत्तर भारत में स्थित बतलाया है, किन्तु अभी इसकी सम्यक् रीति से पहचान नहीं हो पाई है।

केकय –

छान्दोग्य ब्राह्मण के अनुसार केकय नरेश अश्वपति की विद्वता की कीर्ति सुनकर अनेक तत्त्व–जिज्ञासु उनके समीप अपनी शंकाओं के समाधान हेतु आया करते थे।[3] उत्तर–पश्चिम में सिन्धु और वितस्ता नदियों के मध्य केकय प्रदेश

1– व्रात्येभ्यो व्रात्यधनानि ये व्रात्यचर्याया अविरताः स्युः ब्रह्मबन्धवे वा मागधदेशीयाय इति

– लाट्यायन श्रौतसूत्र तथा जैमिनीय ब्राह्मण – 2. 404

2– एते रैक्वपर्णानाम महावृषेषु – छा० उप० 4. 2. 5

जैमि० उप० ब्रा० – ' हृत्स्वाशय आल्लकेयो महावृषो राजा' – (3. 7. 3. 17)।

3– अश्वपतिर्वै कैकेयः सम्प्रति वैश्वानरमध्येति – छा० उप० –5. 11. 4

स्थित था।

कम्बोज –

वंश ब्राह्मण में कम्बोज प्रदेशीय आचार्य औपमन्यव का उल्लेख है।[1] कम्बोज प्रदेश की भाषा का सन्दर्भ यास्क ने भी दिया है।[2] इतिहासज्ञों की मान्यता है कि सिन्धु नदी के उत्तर–पश्चिम में यह प्रदेश स्थित था। प्राचीन पारसीक अभिलेखों में ' कम्बुजीय' के नाम से यहाँ के निवासियों का उल्लेख है।

निषाद –

ताण्ड्य ब्राह्मण में 'निषादेषु' के रूप में इसका उल्लेख है।[3] ये सम्भवतः अनार्य जातियाँ थीं जो वैदिक व्याख्या का पालन नहीं करती थीं। रामायण और महाभारत के साक्ष्यों के आधार पर इनका निवास विन्ध्य और सतपुड़ा पहाड़ियों के मध्य बतलाया जाता है।

इस प्रकार ब्राह्मणकालीन सभ्यता और संस्कृति का प्रचार–प्रसार अत्यन्त व्यापक भूभाग मे था – जिसके प्रमुख केन्द्र कुरूक्षेत्र 4 और नैमिष आदि थे।

1– काम्बोजश्चौपमन्यवः – वंश ब्राह्मण 1. 19

2– शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाष्यते – निरूक्ति 2. 1. 2

3– निषदेषु तिस्रो वसति – तां0 ब्रा0 16. 6. 8–9

4– **Sharma, B. R. : Introduction to Jaiminiyopanishad Brahamanas, Page 28**

ऋतुएँ एवं वर्षारम्भ –

ताण्ड्य में कहीं – कहीं पॉच ऋतुओं का उल्लेख है, [1] जिससे प्रतीत होता है कि हेमन्त और शिशिर में विशेष अन्तर नहीं किया जाता था। वसन्त और फाल्गुन को संवत्सर का मुख बतलाया गया है, [2] जो उस युग में फाल्गुन से वर्ष आरम्भ होने का द्योतक है।

सामवेदीय ब्राह्मणों मे उपलब्ध आर्थिक स्थिति –

स्वस्थ्य सामाजिक जीवन के सन्दर्भ में प्रथम आवश्यकता सुदृढ़ आर्थिक स्थिति होती है। 'पंचविंश ब्राह्मण' [3] में उल्लेख आया है कि 'व्रात्य' एक घुमक्कड़ जाति थी, यह न तो खेती करती थी और न तो यज्ञ ही। केवल इधर–उधर घूमती हुयी अपना जीवन–यापन करती थी, सम्भवतः इनकी आजीविका का साधन पशु–पालन ही था'। पर्यटनशील प्रवृत्ति वाले लोगों की पशुपालन के अतिरिक्त और अन्य किसी आर्थिक व्यवस्था को अपना सकना असम्भव था। सम्भवतः साधन उपलब्ध होने पर वे यत्र–तत्र कृषि कर्म भी कर लेते थे।

ब्राह्मण युग तक आते–आते अधिकांश आर्य लोग स्थायीरूप से एक स्थान पर रहने लगे थे। उत्तरी पूर्वी भारत के साथ–साथ अब वे दक्षिण भारत में भी

1– ताण्ड्य ब्रा0 – 4. 6. 4

2– पंचविंश ब्राह्मण – 5. 9. 7 तथा 6. 1. 6

3– पंचविंश ब्राह्मण – 17/1/4

फैलने लगे थे। 'ऐतरेय ब्राह्मण' मे 'अन्ध्रपुण्ड' का उल्लेख आया है, पुनः शुनः शेष आख्यान में आये हुए ग्राम और राज्य में ऐसी संस्थाओं का विकास हो रहा था। प्रत्येक राज्य के अपने-अपने राजा होते थे, जो उस राज्य में बसने वाली प्रजा के धन-जन की रक्षा के लिए अधिकारी होते थे। वे इन्हीं मंगल कामनाओं को ध्येय मानकर दीर्धसत्रों का आयोजन करते थे। कृषि, पशु-पालन उस काल की आजीविका के प्रमुख साधन थे। इसके अतिरिक्त इस युग में नाना प्रकार के शिल्प कार्यो में भी उन्नति की गई थी।

ब्राह्मण युग में नगर सभ्यता विकसित होने लगी थी। 'आसन्दीवती' , 'कुरु', 'काम्पिल्य', 'काशी', 'कौशल', 'मत्स्य' इत्यादि नामों के राज्यों का स्पष्ट वर्णन प्राप्त होता है। सुव्यवस्थित सामाजिक व्यवस्था का आर्थिक विकास से विशेष सम्बन्ध होता है। समाज चार वर्गो में विभाजित था- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इसके अतिरिक्त अनेक उपजातियों के अस्तित्व का भी संकेत मिलता है जिनमें से अधिकांशतः किसी विशिष्ट वाणिज्य व्यवसाय अथवा शिल्प को अपनाने के कारण एक जाति ही बन गये थे। ये सभी जातियॉ और उपजातियॉ अपने-अपने कार्यो को नियमित रूप से करती थीं।

कृषि

कृषि उस युग में जीविका का मुख्य साधन थी। 'ताण्ड्य ब्राह्मण' में दो

प्रकार की कृषियों का उल्लेख है – अकृष्टपच्या तथा कृष्टपच्या।[1] अकृष्टपच्या की उपज के रूप में सायण ने नीवार का उदाहरण दिया है और कृष्टपच्याजन्य उपज धान्य कही गयी है। 'मत्स्य' शब्द जुती हुयी भूमि को समतल करने वाले कृषि–यंत्र के लिए व्यवहृत हैं।[2] काटने की वस्तु में पकड़ने के लिए हत्थे के स्थान पर लगे काष्ठ का नाम 'किष्कु' मिलता है। कुरु और पांचाल जनपदों की भूमि सदैव अत्यन्त समृद्ध रही है। छान्दोग्य में एक बार प्रबल अकाल पड़ने और अन्नाभाव से जन–समूह के पीड़ित होने का भी उल्लेख है।[3] यागों में ब्राह्मणों को अच्छी दक्षिणा देने का विधान सामान्यतः प्रजा की आर्थिक समृद्धि का ही ज्ञापक है।

'ताण्ड्य ब्राह्मण' में एक स्थान पर अब्राह्मणवादी व्रात्यों द्वारा कृषि न करने का उल्लेख मिलता है।[4] 'जैमिनीय ब्राह्मण' में अनार्य असुरों द्वारा कृषि करने का उल्लेख पाया जाता है। 'पंचविंश ब्राह्मण'[5] में एक स्थान पर वर्णन आया है कि साद्यस्क्र नामक एकाह बोये हुए खेत और खलिहानों के मध्य होता है।

1– ताण्ड्य ब्रा0 – 6/9/9

2– पंचविंश ब्राह्मण – 2/9/2

3– छान्दोग्य उपनिषद् – 1/10/1

4– ताण्ड्य ब्राह्मण – 17/1–4

5– पंचविंश ब्राह्मण – 16/12/16

भूमि व्यवस्था तथा अधिकार –

ब्राह्मण युग में भूमि तीन भागों में बँटी थी– 1. वास्तु, 2. कृषि के योग्य, 3. पशुचारण के योग्य। लोगों के अपने रहने के लिए अलग–अलग गृह होते थे। कृष्य भूमि पर खेती करने वाले का पूर्णाधिकार होता था। इस विचार की पुष्टि में ऋग्वेद में भी अनेक साक्ष्य प्राप्त होते हैं। "अत्रि की पुत्री अपाला ने इन्द्र से अपने पिता के खेतों की उर्वरता बढ़ाने के लिए प्रार्थना की।" [1] 'खेती के स्वामी को 'क्षेत्रपति' कहते थे।' [2] वाजपेय याग में क्षेत्रपति के लिए चरु निवेदित किया जाता था। क्षेत्राभिमानी देवताओं को क्षेत्रपति कहते थे। [3]

ऐतरेय ब्राह्मण में उपलब्ध शुनःशेषाख्यान में इस बात का संकेत मिलता है कि पिता अपने परिवार का एक सत्तात्मक स्वामी होता था। पुत्रों को उसके विरोध का साहस नहीं होता था। निश्चय ही उस काल में कृषि उर्वरा या क्षेत्र में उन्नति हुयी थी। जुती हुयी या अच्छी बुवाई के योग्य भूमि को उर्वरा या क्षेत्र के नाम से सम्बोधित करते थे। [4] जो वर्ष में दो फसलों को देने में समर्थ होते थे। खेत को 'क्षेत्र' भी कहते थे। [5] कृषि के विषय में ज्ञान रखने वाले को 'क्षेत्रज्ञ' कहते थे। [6]

1– ऋग्वेद – 8/91/5–6   2– ताण्ड्य ब्रा0 – 1/8/15

3– ताण्ड्य ब्राह्मण – 7/15/18

4– कौषीतकि ब्राह्मण – 30/8, ताण्ड्य ब्राह्मण– 16/13/6

5– ताण्ड्य ब्रा0 – 2/1/4   6– पंचविंश ब्राह्मण – 21/2/8

ब्राह्मण युग में लोग सिंचाई के महत्त्व से परिचित थे। सदैव की भाँति उस युग में भी कृषक अधिकांशतया वर्षा के जल पर निर्भर रहते थे। वर्षा होने से खेती अच्छी होगी, इस बात का अनुमान लगाते थे। 'ताण्ड्य ब्राह्मण' [1] में उल्लेख है कि वर्षा की कामना से वहिष्वमान् सूक्त का भी पाठ करते थे। वर्षा के अलावॉ कुऑ, नदी के अस्तित्व का भी स्पष्ट संकेत मिलता है। इसका भी प्रयोग सिंचाई के साधन के रूप में अवश्य होता रहा होगा। ब्राह्मण साहित्य में वर्णित यज्ञानुष्ठानों के सम्पादन से प्रजा, पर्थ और धन की प्राप्ति रूप फल का निर्देश किया गया है। इसी प्रकार अन्न पर आधिपत्य प्राप्ति के लिए भी प्रयोग विधि का वर्णन मिलता है।

''अन्न''

ब्राह्मण साहित्य में अन्न के अर्थ में धान्य शब्द का प्रयोग मिलता है। ब्राह्मण साहित्य में उल्लेख है कि उत्पन्न अन्न के दो भेद माने जाते थे – कृष्ट और अकृष्ट। भूमि कर्षण करके जो अन्न उत्पन्न किया जाता था उसे कृष्ट कहते थे तथा जो अन्न बिना भूमि को जोते उत्पन्न किया जाता था उसे अकृष्ट कहते थे। [2]

1– ताण्ड्य ब्राह्मण– 6/10/15

2– पंचविंश ब्राह्मण – 6/9/9

'यव'—

यह उस युग का मुख्य अन्न था। ऋग्वेद [1] में 'यव' शब्द का 'जौ' अन्न विशेष के अर्थ में नहीं, वरन् अन्न मात्र के लिए प्रयोग हुआ। 'यव' की फसल वसन्त ऋतु के बाद तैयार होती है।

'व्रीहि'—

"सामान्यतः यव के साथ प्रयुक्त होने वाला यह अन्न उस युग का मुख्य खाद्यान्न था।" [2] व्रीहिके अनेक भेदों के होने का भी संकेत मिलता है। बड़े चावलों के लिए 'महाव्रीहि' शब्द का प्रयोग किया जाता था। काले और लाल दो रंग के चावलों का उल्लेख मिलता है।

'श्यामांक'—

यह भी 'व्रीहि' का ही एक प्रकार है। 'श्यामांक ताण्डाल' का भी वर्णन पाया जाता है। यह अत्यन्त छोटा होता था। आजकल भी सांवा का चावल मिलता है। यह अत्यन्त छोटा होता है। सम्भवतः यही श्यामांक हो।

'प्रियंगु'—

इसका भी उल्लेख ब्राह्मणों में आया हुआ है। यह एक प्रकार का धान होता है।

1— ऋग्वेद — 1/23/15

2— ताण्ड्य ब्राह्मण — 1/8/15

'नीवार' –

यह भी एक प्रकार का अन्न था। सम्भवतः व्रीहि का ही प्रकार था।

इसके साथ 'नाम्ब', 'गवोधुका', 'गोथूम', 'मसूर' का वर्णन ब्राह्मण साहित्य मे पाया जाता है। 'पंचविंश ब्राह्मण [1] में तिल का वर्णन आया है। इससे अवश्य ही तेल निकाला जाता रहा होगा।

''अरण्यों का महत्त्व' –

वनों में स्वतः उत्पन्न होने वाली वस्तुएँ समस्या में ही सहयोगी नहीं होती थी, बल्कि आर्थिक दृष्टि से भी उस युग में लोगों के लिए उपयोगी थीं। अरण्य सम्पदा से ही औषधि सम्बन्धी झाड़ियाँ तथा पौधे मिलते थे। अरण्यों से ही मधु, फल, गुग्गल आदि सुगन्धियाँ उपलब्ध होती थी। अरण्य सम्पदा का उस युग के लोगों के लिए आर्थिक दृष्टि से महत्त्व था। उस युग के लोग बहुत से महत्त्वपूर्ण उपयोगी वृक्षों से परिचित थे। ''ताण्ड्य ब्राह्मण'' [2] में 'उदुम्बर' वृक्षों के एक वन का वर्णन प्राप्त होता है।'' इसकी लकड़ी से घरेलू तथा यज्ञीय साधनों के बनाये जाने का वर्णन मिलता है।

'ताण्ड्य ब्राह्मण' [3] में वर्णित एक वृक्ष का नाम 'वरूण' मिलता है। यह '

1– 'पंचविंश ब्राह्मण' – 16/6/4

2– ताण्ड्य ब्राह्मण – 16/6/4

3– ताण्ड्य ब्राह्मण – 5/3/9–10

वरूण' नामक वृक्ष का द्योतक है। अर्क, अमला नामक वृक्षों का उल्लेख भी पाया जाता है।

उक्तवृक्षों के अलावॉ नाना प्रकार के पौधों का वर्णन भी पाया जाता है, जिनका विभिन्न प्रकार के अभिचार, वशीकरणादि के प्रयोग में काम होता था। जैसे – अध्याण्डा, अवला, अश्मगन्धा तथा उर्वासक। "पंचविंश ब्राह्मण" [1] में इसका उल्लेख आया है कि कमल के फूल का जन्म नक्षत्रों के प्रकाश से माना गया है। कमल के फूलों का हार बनाने की प्रथा थी।" इसी ब्राह्मण में [2] यह भी वर्णन आया है कि 'पूतिका एक पौधा था जिसका सोमलता के स्थान पर प्रयोग होता था। पुनः इसी में 'प्रमोथा' का भी वर्णन पाया जाता है जो सोमलता के स्थान पर प्रयोग में लाया जाता था। "इसके अतिरिक्त ब्राह्मणों [3] में फलवती, विस, विम्ब, प्रताति, राण इत्यादि पौधों का भी उल्लेख पाया जाता है।" 'ताण्ड्य ब्राह्मण' में 'गुग्गुल' नामक पौधे का भी वर्णन आया हुआ है, अग्नि प्रज्जवलित करते समय इसका उपयोग करने का संकेत पाया जाता है।

पशु –

वास्तव में स्थयी रूप से किसी स्थान पर बसने के पूर्व पशुपालन लोगों

1– पंचविंश ब्राह्मण – 9/2/19

2– पंचविंश ब्राह्मण – 18/9/6

3– पंचविंश ब्राह्मण – 8/4/1

का प्रमुख पेशा था। यद्यपि ब्राह्मण युग में वैदिक आर्य स्थायी रूप से आर्यावर्त में ही नहीं, वरन् अंशतः दक्षिणावर्त में भी बस गये थे, तथापि पशुपालन उनके जीवन का मुख्य अंग था। पशुधन से प्रत्येक वैदिक आर्य सम्पन्न था। ब्राह्मण साहित्य में प्रसङ्गतः अनेक पशुओं का उल्लेख पाया जाता है। पशु दो प्रकार के माने जाते थे– ग्राम्य और आरण्य। ग्राम्य पशु अनेक प्रकार के होते थे – गौ, अवि, गर्दभ, उष्ट्र, अश्वतर इत्यादि। ये बॉधकर रखे जाते थे। 'इन्हें दिन में चरने के लिए छोड़ दिया जाता था। वे सायंकाल को घर लौटते थे। "ताण्ड्य ब्राह्मण" [1] में पशु से सम्पन्न व्यक्ति को धनवान माना जाता था। आर्यों को सदैव उसके चोरी हो जाने एवं बलात अपहरण हो जाने का भय बना रहता था।" "पंचविंश ब्राह्मण" [2] में वर्णन आया है कि लोगों में पशुधन की वृद्धि की कामना इतनी प्रबल थी कि वे लोग अपने भातृव्यों के पशुओं को प्राप्त करने की इच्छा रखते थे।" यज्ञ के अवसर पर गाड़े यूथ पर यदि अंकुर निकल आते थे तो इसे अशुभ माना जाता था। ऐसा विश्वास था कि उस यजमान के पशु निर्वाप हो जाते थे और प्रायश्चित स्वरूप बहुवर्ण वाले पशु त्वष्टा के लिए आलभन करते थे।

पंचविंश ब्राह्मण" [3] में 'व्रात्य' लोगों के नुकीले जूते पहिनने के सम्बन्ध में

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 6/8/10

2– पंचविंश ब्राह्मण – 8/47

3– पंचविंश ब्राह्मण – 17/1/15

संकेत मिलता है। कपड़ा बुनने की कला के लिए भी वर्णन इसमें आया हुआ है। कपड़ों को बुनने वालियों के लिए 'वायितृ' शब्द का प्रयोग मिलता है।[1] ''ताण्ड्य ब्राह्मण''[2] में इसे 'तन्त्र' शब्द से अभिहित किया जाता था।

ऋग्वेद काल से ही भारतीय आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र थे, कृषि उनके आय का मुख्य साधन था। वस्तुतः इनका रहन–सहन अत्यन्त सादा था। भोजन और वस्त्र की समस्या कृषि उत्पादन से ही हल हो जाया करती थी। कपास उत्पन्न करके स्वयं उसमें परिश्रम करके वस्त्र तैयार कर लेते थे। इसके अतिरिक्त अन्य समस्याओं का समाधान ग्राम शिल्पियों की सहायता से हो जाता था। एक ग्राम दूसरे ग्राम पर निर्भर नहीं रहता है, मगर यह अवस्था सदैव न रह सकी। बाद में इनकी यह स्वतंत्रता नष्ट हो गयी थी। 'ब्राह्मण युग में वाणिज्य शब्द का प्रयोग मिलता है।

ब्राह्मण साहित्य में अनेक यातायात के साधनों के उपलब्ध होने का संकेत मिलता है। शायद इनके द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर सामान ले जाते रहे होगें, सिन्धु देशीय अश्वों का मध्य देश में प्रयोग होता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि उस युग की आर्थिक व्यवस्था पर्याप्त सुदृढ़ थी।

1– पंचविंश ब्राह्मण – 1/8/9

2– ताण्ड्य ब्राह्मण – 6/5/2–19

सामवेदीय ब्राह्मणकालीन सामाजिक जीवन

पारिवारिक सुख–सौमनस्य –

पारिवारिक जीवन सुख और सौमनस्य से पूर्ण प्रतीत होता है। विवाह की विभिन्न पद्धतियों में देव विवाह का विशेष प्रचलन परिलक्षित होता है, क्योंकि पंचविंश ब्राह्मण ने श्यैत और नौथस् सामों की घनिष्ठता का प्रतिपादन इन दोनों के मध्य देव–विवाह दिखलाकर किया है।[1] सपिण्ड और सगोत्र विवाह निषिद्ध थे।[2]

पुरुष एकाधिक विवाह कर सकते थे, किन्तु उनसे सबके साथ समान व्यवहार करने और किसी की भी उपेक्षा (परित्यागादि रूप) न करने की अपेक्षा की जाती थी, जैसा कि छान्दोग्योपनिषद् का निर्देश है –

'न कांचन परिहरेत् तद् व्रतम्' – (2/9/3)।

स्त्रियों की स्थिति सम्मानपूर्ण थी। सर्पराज्ञी के द्वारा दृष्ट ऋचा का विनियोग प्रदर्शित करते समय ऋषिका के नाम से पूर्व 'ब्रह्म–वादिनी' विशेषण प्रयुक्त है,[3] जो उनके याग – मीमांसा में सम्मिलित होने का द्योतक है। स्त्रियों के प्रति बलात्कारादि अपराधों का कोई उल्लेख नहीं हैं।

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 7/10/3

2– गोभिलगृह्यसूत्र – 3/4/4/5

3– पंचविंश ब्राह्मण – 4/9/4

विवाह सामान्यतः वयस्क अवस्था में ही होते थे। किसी कन्या के बाल्यावस्था में ही विवाह हो जाने का एकमात्र उदाहरण छान्दोग्योपनिषद्‌गत उपस्थि चाक्रायण की पत्नी आटकी का है। [1]

संयुक्त परिवार की परम्परा को बनाये रखने और भाईयों के मध्य सम्पत्ति विभाजन अथवा अधिकार–प्राप्ति के सन्दर्भ में कलह के वातावरण को न उत्पन्न होने देने के लिए निरन्तर सतर्कता लक्षित की जा सकती है। ताण्ड्य में उल्लिखित है कि किसी क्षत्रिय परिवार में एक राजा होने पर अन्य भाई उसका आनुचर्य्य निभाते थे। [2]

परिवार के भृत्यों तक से सद्‌व्यवहार करने और उन्हें पहले भोजन करा देने की परम्परा थी। [3]

श्रृङ्गार प्रशाधनों के प्रति आकर्षण –

जन–जीवन में अपने को अलंकृत करने की प्रवृत्ति सामान्य रूप से थी। रूक्षता सर्वत्र अकाम्य थी। सुगन्धित द्रव्यों के विलेपन की लालसा रहती थी। [4] सभा आदि सार्वजनिक स्थानों पर सुगन्धित वस्तुओं से लिप्त होकर लोगों के

1– छान्दोग्योपनिषद् – 1/10/1

2– पंचविंश ब्राह्मण – 20/12/5

3– सामविधान ब्राह्मण – 1/3/7

4– ताण्ड्य ब्राह्मण – 24/13/2–4

जाने का उल्लेख ताण्ड्य ब्राह्मण में है।

याग से लेकर अभिचार तक के कृत्यों में साम–गान का अनिवार्य अस्तित्व इस तथ्य को अभिप्रमाणित करता है कि सामवेदीय ब्राह्मण कालीन भारत में अभिजात वर्गों से लेकर समाज के निम्नतमवर्ग तक सांगीतिक सुरूचि विद्यमान थी – क्योंकि अभिचार का सम्बन्ध निश्चित रूप से बहुत विकसित मनो–मस्तिष्क युक्त उच्च वर्ग से नहीं रहा होगा।

वाद्य –

वाद्यों में तत और धन श्रेणी के वाद्य प्रमुखता से प्रचलित थे। ततवाद्यों में वीणा का प्राधान्य दिखलाई देता है। जिसके अनेक रूपों का उल्लेख ताण्ड्य ब्राह्मण में है। इनमें से 'अपद्याटिला' और 'वाण' संज्ञक वीणाएँ विशेष लोकप्रिय थीं।1 शत और इससे भी अधिक तन्त्रियों वाली वीणाओं का उस युग में अस्तित्व था। अन्य वाद्यों में दुन्दुभि उल्लेखनीय है। [2]

नृत्य –

ताण्ड्य में सजल धट लिए हुई स्त्रियों के नृत्य के उल्लेख से [3] सिद्ध

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 5/6/8 तथा 12

2 – पंचविंश ब्राह्मण –5/5/18–19

3 – पंचविंश ब्रा0 – 'परिकुम्भिन्यो यन्ति' ब्राह्मण (5/6/15) पर सायण–भाष्य–धिष्ण्यं परियन्ति नृत्यन्ति इत्यर्थः।

है कि उस युग में यह कला अत्यन्त विकसित रूप में थी। स्वर्णाभूषणों के प्रति भी जनता में आकर्षण था। स्रक, रूक्म,प्रकाश आदि अनेक सुवर्ण–निर्मितआभूषणों का ताण्ड्यकार ने उल्लेख किया है। [1] व्रात्यो के प्रसंग में ताण्ड्य ब्राह्मण में रजत–निर्मित निष्क भी उल्लिखित है।[2]

'वारासी' शब्द एक विशेष प्रकार की साडी के लिए प्रयुक्त हुआ है, जो प्राकृतिक उपादनों से तैयार की जाती थी।[3]

संगीत –

ओबगीसा ने अपनी प्रख्यात पुस्तक 'दि ओल्डेस्ट म्यूजिक आफ दि वर्ल्ड' में तत्कालीन संगीत के विषय में लिखा है –'वैदिक काल के संगीत में हम जो स्वर्गिक आनन्द, आत्मा को आलोकित करने वाला प्रकाश और नवीन विश्व में प्रविष्ट कराने वाली प्रेरणा पाते हैं तथा मानव जीवन में उससे जिस दिव्य शान्ति का संचार दिखलाई देता है, वह विश्व के अन्य संगीत में अलभ्य है।'स्वामी प्रज्ञानानन्द ने भी वैदिक काल में जनसामान्य में संगीत के प्रचार का प्रबल समर्थन किया है। [4]

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 18/9/8–10

2– पंचविंश ब्राह्मण– 17/1/14

3– ताण्ड्य ब्राह्मण – 18/9/16

4– Historical Development of Indian Music, Calcutta, 1960

व्रात्य–मीमांसा –

उत्तर वैदिक युग के सामाजिक जीवन में व्रात्य–समूह की भूमिका के विषय में सामवेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों में अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होती है।

ताण्ड्य ब्राह्मण के 17वें अध्याय के प्रथम चार खण्डों में चार व्रात्यस्तोम यज्ञों के विधान है। इन यागों का प्रयोजन आचारहीन व्यक्तियों की शुद्धि (व्रात्यतानिर्हरण) है। [1] प्रकृत ब्राह्मण में प्राप्त विवरण के विश्लेषण से निम्नांकित तथा निकलते हैं –

(1) एक आख्यायिका [2] के अनुसार देवों के स्वर्ग–गमन करने पर उनके अनुचर आचारहीन हो गये और वे पृथ्वी पर इधर–उधर घूमने लगे।

(2) ब्राह्मणकार ने इन्हें चार श्रेणियों में विभक्त किया है –निन्दित, कनीयान् (ऐसे आचारहीन व्यक्ति, जिनकी अवस्था अधिक नहीं है), ज्यायान् (वयोवृद्धआचारहीन जन) तथा हीनाचार। निदानसूत्र में [3] केवल दो ही कोटियाँ हैं –

शीर्षादिस तथा ऐशीकयाविस।

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 17/1/16 की सायण कृत अवतरणिका।

2– पंचविंश ब्राह्मण –17/1/1

3– निदानसूत्र – 6/2

इनमें से निन्दित वे हैं,जो किसी पाप के अध्यारोप के कारण गर्हित होकर व्रात्य बन गये।[1] स्थविर व्रात्य वे कहे गये हैं जो नपुंसकता अथवा वार्धक्यवश नीच जनों में सम्मिलित हो गये।[2]

(3) वस्तुतः ये सभी अपने कुलकमागत तथा सामाजिक आचार–व्यवहार से भ्रष्ट व्यक्ति प्रतीत होते हैं जो विहित आचरण नहीं करते थे और निन्दित–निषिद्ध कर्मों से लिप्त रहते थे। ब्राह्मणोचित कोई कृत्य ये नहीं करते थे।[3]

(4) ताण्ड्य ब्राह्मण के अनुसार न तो ये कृषि करते थे और न वाणिज्य।[4]

(5) ब्राह्मणों के द्वारा भोज्यान्न बलपूर्वक खा लेने के कारण इन्हें विषभक्षक (गरगिर) कहा गया है।[5]

(6) शोभनार्थ प्रतिपादक वाक्य में दोष निकालते थे, निरपराधियों को मारते–पीटते थे और अदीक्षित रहकर दीक्षितों के समान बोलते थे।[6]

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 17/2/1

2 – वही –17/4/1

3 – ताण्ड्य ब्राह्मण – 17/1/2

4 – वही

5 – वही –17/1/9

6 – वही

व्रात्यस्तोमयागों में दक्षिणा–स्वरूप प्रदेय दो प्रकार की वस्तुऍ हैं–गृहपति के द्वारा सम्पादनीय तथा व्रात्यों के द्वारा आहार्थ। गृहपति के द्वारा सम्पाद्य वस्तुऍं ये हैं –उष्णीष, प्रतोद (बैलो को हॉकने के लिए लोहनिर्मित अग्रशलाका वाला दण्ड), विपथ (काष्ठफलकों से आस्तीर्ण रथ जो टेढ़े–मेढ़े मार्गों पर भी चला जाता था), कृष्ण शवास (काली किनारी वाली धोती), कृष्णवलक्ष अजिन (काला और सफेद भेड़–चर्म) तथा रजतनिर्मित निष्क संज्ञक आभूषण। इनके अतिरिक्त व्रात्यों के ही द्वारा आहार्य वस्तुऍ ये हैं – वलूकान्त – दामतूष (लाल किनारी धोतियॉ), दो– दो जूते तथा शुक्ल और कृष्ण वर्णीय मृग –चर्म ।[1] इन वस्तुओं को व्रात्य –धन कहा गया है, जिनका व्रात्यता से मुक्त होने के लिए आवश्यक है –'एतद् वै व्रात्यधनम्।'[2]

सूत्रकार लाट्यायन के अनुसार ये वस्तुऍ उन व्रात्यों को ही दे दी जाती थीं , जो व्रात्य –चर्चा से अविमुक्त थे। दान–प्रतिग्रहीता के सन्दर्भ में मागधदेशीय ब्रह्मबन्धु का सुझाव भी दिया गया है।[3]

ताण्ड्य ब्राह्मण में पुराकाल में व्रात्यों द्वारा अनुष्ठित याग भी उल्लेख है, जिसमें

---

1 –ताण्ड्य ब्राह्मण – 7/1/14

2 – वही – 17/1/16

3– व्रात्येभ्यो व्रात्यधनानि ये व्रात्यचर्य्याया अविरताः स्युर्ब्रह्मबन्धवे वा मागधदेशीय – ला० श्रौ० सू० ।

कुषीतक सामश्रवस और लुशाकपि खागीले की मुख्य भूमिका थी।[1]

ताण्ड्येतर वैदिक साहित्य में व्रात्यविषयक सामग्री –

यजुर्वेद में पुरुषमेध की बलि–सूचि में 'व्रात्य' शब्द उल्लिखित है।[1] वहाँ व्रात्यों के लिए एक यज्ञ भी विहित है।[2] अथर्ववेद का 15वाँ काण्ड 'व्रात्यकाण्ड' के रूप में प्रसिद्ध है, जिसमें प्राप्त व्रात्यविषयक मन्त्रों का अर्थ अत्यन्त विवादपूर्ण है। ताण्ड्योक्त व्रात्य की अथर्ववेद– प्रतिपादित व्रात्य से समानता को 'उष्णीष' और 'प्रतोद' शब्द उपलक्षित करते हैं; किन्तु रॉथ दोनों को पृथक्–पृथक् मानने के पक्ष में है। उनके अनुसार अथर्ववैदिक व्रात्य आचारहीन व्यक्ति नहीं, भ्रमणशील साधु है।

अथर्ववेद में सत्य ही व्रात्य को अत्यन्त महिमान्वित रूप में प्रस्तुत किया गया है। जैसे "तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो राज्ञोऽतिथिर्गृहानागच्छेता श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत् तथा क्षत्राय नावृश्चते तथा राष्ट्राय नावृश्चते।"[3]

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 17/4/3

2 – वाजसनेयिसंहिता 30.8 तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण – 3/4/5/1

3 – तैत्तिरीय ब्राह्मण – 1/5/1/1

4 – अथर्ववेद संहिता – 15/10/1–2

जैमिनीय ब्राह्मण में 'दिव्या वै व्रात्या' (2.222) के रूप में इनका उल्लेख है। वेबर, विण्टरनिप्स, हाउएर [1], बाथलिंक, रॉथ, त्सिमर [2] हिल्लेब्राण्ड्ट, [3] लनमन [4], ब्लुमफील्ड [5], हॉप्किन्स [6], कार्पेण्टियर, मैक्डॉनेल, कीथ आदि पाश्चात्य विद्वानों और राजाराम रामकृष्ण भागवत [7], आर0 पी0 चांडा, क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय [8], एन0 एन0 घोष, बी0 एल0 मुखर्जी, डी0 आर0 भण्डारकर, ए0 पी0 करमारकर और डॉ0 अतुलचन्द्र बनर्जी [9] प्रभृति भरतीय

1- Der, Vratya - 1927

2- State and Law in Vedic Period.

3- Ritual Literature.

4- Introduction to Whitney's translation of Atharvaveda (XV).

5- Hymns of the Atharvaveda.

6- Gods and Saints of the Great Brahmana

7- Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society (19), 359-60

8- Calcutta Review, 1924, 287.

9- Studies in the Brahmanas - Chapter V.

मनीषियों ने व्रात्य–समस्या के विभिन्न पक्षों पर गम्भीरता से विचार कर अनेक अभिमत प्रकट किए हैं। डॉ0 सम्पूर्णानन्द ने अथर्ववेद के व्रात्य काण्ड पर 'श्रुतिप्रभ' संज्ञक भाष्य का प्रणयन किया है। इन विद्वानों के प्रमुख मत इस प्रकार हैं –

(1) प्राचीन काल में आर्यों की कुछ अर्धसभ्य शाखाएँ थीं, जो बस्तियों से बाहर रहती थीं। क्रमशः वे आर्य समाज में मिल गईं, परन्तु उस काल में उनका रहन–सहन अन्य आर्यों से भिन्न था और वे वैदिक संस्कारों तथा कर्मकाण्ड के प्रति आस्था नहीं रखती थीं। उन्हें व्रात्य कहा जाता था।

(2) ये अनार्य तत्त्व थे, व्रात्यस्तोमों के माध्यम से जिन्हें आर्य–सभ्यता में प्रवेश प्राप्त हो सकता था।

(3) व्रात्य– समूह योगियों के संघ थे, जो वैदिक संस्कारों को नहीं मानते थे। ये पगड़ी आदि अनागरिक वेश–भूषा धारण कर इतस्ततः पर्यटन किया करते थे। रूद्र उनके उपास्य थे। उपासक और उपास्य की स्वरूपगत एकता को ध्यान में रखकर रूद्र को भी व्रात्य कहा गया है और इसी कारण वेद में रूद्र के लिए उष्णीषी, कपर्दी सदृश नाम उल्लिखित हैं।

(4) डा0 सम्पूर्णानन्द ने अपने भाष्य में 'व्रात्य' का अर्थ 'परमात्मा' किया है। व्रात्यत्व परमात्मा की गुणातीत स्थिति का लक्षक है–

'भाषायामुपनयनादिक्रियाहीनः पुरुषो व्रात्य इत्याचक्षते। उपनयनादिकं

विधिनिषेधबद्धस्योपक्षणम्। तद्धीनांऽधिगतविधिनिषेधः। अत्र त्रिगुणातीतो दिक्कालानवच्छिन्नः परमात्मा।'

डा0 अतुल चन्द बनर्जी ने व्रात्यों की अनार्यमूलकता और योगिरूपता का दृढ़ता से प्रतिवाद किया है।[1] उनके विचार से व्रात्यों की शुद्धि की आवश्यकता इस कारण अनुभव हुयी क्योंकि कर्मकाण्ड की दोहरी पद्धतियों–ब्राह्मण पद्धतियों ओर व्रात्यपद्धति–मे संघर्ष की स्थिति आ गयी थी। व्रात्याों के कारण ब्राह्मण–कर्मकाण्ड के विकास में अवरोध उत्पन्न हो गया था। डॉ0 बनर्जी के अनुसार व्रात्यगण अब्राह्मण थे और वे ऐसे कर्मकाण्ड में संलग्न थे, जो ऊपर से परम्परागत कर्मानुष्ठान–पद्धति के समान दिखने पर भी आन्तरिक दृष्टि से भिन्न था। वे उत्तर–भारत में किसी स्थान के निवासी थे।

स्मृतियों के काल तक 'व्रात्य शब्द भ्रष्ट, आचारहीन और पतित सावित्रीक व्यक्तियों के सन्दर्भ में अत्यन्त स्पष्टार्थक हो गया है।[2]

यति–

व्रात्यों के सदृश ही यतियों का समूह प्रतीत होता है, जिसकी ओर विद्वानों का ध्यान अब तक कदापि नहीं गया है। ताण्ड्य ब्राह्मण में इनका दो बार

1– Banerjee, A.C. : Studies in the Brahmanas, Page 169.

2– मनुस्मृति – 10/20

उल्लेख है। प्रथम स्थल पर कहा गया है कि इन्द्र ने यतियों को सालावृकों (भेड़ियों) के सम्मुख डाल दिया। उनमें से तीन बच गये – रायोवाज, बृहद्गिरि और पृथुरश्मि।

उन्होनें इन्द्र से कहा – (तुमने हम लोगों को तो मार दिया) अब हमारे पुत्रों का पालन–पोषण कौन करेगा ? तब इन्द्र ने इस दायित्व को स्वीकार किया। [1]

सायण ने यतियों को वेदविरूद्ध नियमों का अनुयायी माना है।

ताण्ड्य ब्राह्मण में ही दूसरे स्थल पर भी यतियों का इन्द्र के द्वारा वृकों के सम्मुख प्रक्षेप उल्लिखित है – इस बार इन्द्र पर ब्रह्म–हत्या का पाप लगा और समाज में चतुर्दिक् उनकी निन्दा होने लगी। इस स्थल की व्याख्या के प्रसंग में सायण ने यतियों को ऐसा सन्यासी बतलाया है, जो वस्तुतः विवेक–ज्ञान शून्य, वेदान्त–वाक्यों के उच्चारण से रहित और काषाय वस्त्र तथा दण्ड मात्र धारण किये हुए थे। [2]

लौकिक संस्कृत में 'यति' शब्द स्पष्टरूप से सन्यासी का वाचक है।

उपर्युक्त अंशों के विश्लेषण से विदित होता है कि यह भी काई वैदिक कर्मकाण्ड का विरोधी सन्यासी–सम्प्रदाय था, जिससे वैदिक व्यवस्था के पक्षधर

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 8/1/4

2– ताण्ड्य ब्राह्मण – 9/4/7

समय–समय पर संघर्ष करते रहते थे।

सामवेदीय ब्राह्मण कालीन शिक्षा–पद्धति –

सामवेदीय ब्राह्मणों के रचना–युग में शिक्षा का सर्वोपरि महत्त्व प्रतीत होता है। अध्ययन न करना ब्रह्मबन्धुता का कारण बतलाया गया है। [1] छान्दोग्योपनिषद्' से ज्ञात होता है कि अध्ययन के विषयों में चारों वेद, इतिहास–पुराण, वेदों का वेद (व्याकरण) श्रद्धाकल्प, गणित उत्पातज्ञान, निधिशास्त्र, तर्कशास्त्र (वाकोवाक्य) एकायन (नीतिशास्त्र), देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पविद्या (गारूडमंत्रशास्त्र), और देवयजनविद्या (नृत्यसंगीतादि) मुख्य थे।[2] 'षड्विंश ब्राह्मण' में वेद का कार्य और अनुष्ठानविधिज्ञानपूर्वक अनुशीलन प्रशंसनीय कहा गया है। [3]

अध्ययन का स्थान प्रमुख रूप से आचार्य–कुल था। 'छान्दोग्योपनिषद्' में विद्यार्थी के लिए 'आचार्यकुलवासी' शब्द का प्रयोग किया है। [4] श्रेष्ठ आचार्य के सम्पर्क में ही मनुष्य सच्चे अर्थों में ज्ञान प्राप्त कर सकता था, जैसा कि

1– छान्दोग्योपनिषद् – 6/1/1

2– छान्दोग्योपनिषद् – 7/1/2

3– षड्विंश ब्राह्मण – 1/3/16

4– छान्दोग्योपनिषद् – 2/23/1

'आचार्यवान् पुरुषो वेद' –प्रभृति वाक्यों से विदित होता है।[1] एक अन्य स्थान पर उल्लिखित है कि आचार्य से ग्रहण की गयी विद्या ही परमकल्याणकारिणी होता है– 'आचार्यात् हैव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापयति'[2]

सामान्यतः 12 वर्ष की अवस्था में उपनयन के अन्तर 24 वर्ष की अवस्था तक सभी वेदों का अध्ययन सम्पन्न हो जाता था।[3]

आचार्य–कुल के अतिरिक्त समय–समय पर राजाओं के द्वारा आहुत विद्वत्सम्मेलनों का भी उल्लेख प्राप्त होता है, इन्हें ' समिति' कहा गया है। 'छान्दोग्य' में ऐसी पांचाल–समिति उल्लिखित है।[4]

अध्ययन के अधिकारियों का निर्णय योग्यता–परीक्षा के अनन्तर ही किया जाता था। 'संहितोपनिषद् ब्राह्मण' में सामवेद अध्ययन की दृष्टि से अर्ह और अनर्ह का निरूपण करते हुए कहा है कि विद्या–दान–हेतु छः सुपात्र हैं–

(1) ब्रह्मचारी –

ब्रह्मचर्य विधि से आचार्य–कुल में रहते हुए और आचार्य की आज्ञा के पालक वे शिष्य जो सावित्री से लेकर महानाम्नीपर्यन्त अध्ययन का व्रत निर्वाह करें।

1– छान्दोग्योपनिषद् – 6/14/2

2– छान्दोग्योपनिषद् – 4/9/3

3– छान्दोग्योपनिषद् – 6/1/2

4– छान्दोग्योपनिषद् – 5/3/1 तथा 5/11/1–7

(2) धनदायी, (3) मेघावी, (4) श्रोत्रिय, (5) प्रिय और

(6) प्रतिग्रहीता –

एक गुरु से प्राप्त विद्या दूसरे गुरु को देकर नवीन विद्या सीखने में समर्थ छात्र। इन छः प्रकार के विद्यार्थियों को ज्ञान का तीर्थस्वरूप कहा गया है।[1]

अनर्ह शिष्य वे हैं, जिनमें ज्ञान के पुरस्करण की क्षमता नहीं होती थी। ऐसे अनुर्वर मस्तिष्क वाले छात्रों के लिए ब्राह्मणकार ने 'ऊषर' शब्द का प्रयोग किया है। भले ही विद्या के साथ मर जाना पड़े, किन्तु अयोग्य छात्रों को कदापि ज्ञान–दान नहीं करना चाहिए– 'विद्यया सार्द्धं म्रियेत्। न विद्यामूषरे वदेत्।[2] अन्य अपात्र शिष्यों में जो अंहकारी हैं, वे भी विद्या–दान की दृष्टि से निषिद्ध हैं– 'अनर्हते मानिने नैव मादाः'।[3]

गुरु को चाहिए कि वह अयोग्य छात्र से बचे और सत् शिष्य की अवमानना न करे– ' सतश्च न विमानयेत्।'[4] छान्दोग्योपनिषद् के अनुसार पिता को अपने ज्येष्ठ पुत्र अथवा सुयोग्य शिष्य को विद्या–दान करना चाहिए। समुद्रपरिवेष्टित

1– संहितोपनिषद् ब्राह्मण – 3/11

2– संहितोपनिषद् ब्राह्मण – 3/10

3– संहितोपनिषद् ब्राह्मण – 3/9

4– छान्दोग्योपनिषद् – 3/19

और धन से परिपूर्ण धरा पाने की आशा हो, तो भी अपात्र शिष्य को विद्या नहीं दी जानी चाहिए।[1] इन नियमों के अवलोकन से प्रतीत होता है। कि ब्राह्मणकार अनधिकारियों से ज्ञान को संरक्षित रखने की दशा में अत्यन्त सचेष्ट थे। ब्राह्मण के प्रति विद्या के मुख से स्वयं कहलाया गया है कि मै तुम्हारी निधि हूँ, तुम मेरी सब प्रकार से सुरक्षा करो – 'विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम तवाहमस्मि। त्वं मा पालयस्व।[2]

विद्यार्थी का परम कर्त्तव्य बतलाया गया है कि वह श्रवण–रन्ध्रों को पीड़ित किए बिना वेदामृत प्रदान करने वाले गुरु से कभी भी द्रोह न करे और उसे माता–पिता के समान समझे –

'य आतृणीत्यवितथेन कर्णावतृप्तं कुर्वन्मृतं सम्प्रयच्छन्। तं मन्येत पितरं–मातरं च तस्मै न द्रुह्येत कतमच्चनाह।।'[3]

ये श्रुतिवाक्य संहितोपनिषद् ब्राह्मण से निरूक्त में भी गृहीत हैं, जो इनकी अतिशय लोक मान्यता का द्योतक है।

विद्यार्थी के द्वारा पालनीय अन्य आठ गुणों का भी उल्लेख इसी ब्राह्मण में हुआ है। ये आठ गुण इस प्रकार हैं – वित्ति (प्रज्ञा अथवा आचार्य की दक्षिणा),

---

1– छान्दोग्योपनिषद् – 3/11/5–6

2– संहितोपनिषद् ब्राह्मण – 3/9

3– संहितोपनिषद् ब्राह्मण – 3/13

उपस्तव (आचार्य से निवेदन), दम, श्रद्धा, सम्यक् प्रश्न (संप्रश्न), अनाकाशीकरण (प्राप्त विद्या का असत् शिष्य के सम्मुख अप्रकाशीकरण) और आचार्य–शुश्रूषा। 1 पर्णाशनकर्त्ता, पयोभक्षी, वीरासनसेवी, माता–पिता तथा गुरु की सेवा–शुश्रूषा का ध्यान रखने वाले एवं गुरु दक्षिणा में स्वर्णादि प्रदान करने वाले शिष्यों को विशिष्ट फलो का अधिकारी घोषित किया गया है।[2]

विद्या–दान को अतिदान बतलाया गया–'त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथिवी सरस्वती।'[3]

इस प्रकार सामवेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों में गुरु–शिष्य से सम्बद्ध एक मानक और आदर्श आचार संहिता प्रस्तुत है, जिसकी अद्यावधि उपादेयता असन्दिग्ध है। उपयुक्त प्रविधि से उपार्जित विद्या को सामविधान ब्राह्मण में स्वर्ग–प्राप्ति की साधनभूत कहा है।[4]

1– संहितोपनिषद् ब्राह्मण – 3/20

2– संहितोपनिषद् ब्राह्मण – 4/1–11

3– संहितोपनिषद् ब्राह्मण – 4. 12

4– सामविधान ब्राह्मण – 1. 1. 17

"सामवेदीय ब्राह्मणकालीन स्त्री शिक्षा एवं समाज" –

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों का स्थान महत्त्वपूर्ण रहा है। हिन्दू समाज में उनका सम्मान और आदर प्राचीनकाल से आदर्शात्मक और मर्यादा से परिपूर्ण था। वे अपने मनोनुकूल आत्मविकास और उत्थान कर सकती थीं। इन्हें विवाह, शिक्षा, सम्पत्ति आदि में अधिकार प्राप्त थे। वे कन्या के रूप में, पत्नी के रूप में, प्रेमिका के रूप में तथा माँ के रूप में समाज और परिवार में आदर प्राप्त करती थीं। उनके प्रति समाज की स्वाभाविक निष्ठाा और श्रद्धा रही है। परिवार और समुदाय में उनके द्वारा कन्या, पत्नी, वधू और माँ के रूप में किये जाने वाले योगदान का हमेश से गौरवपूर्ण महान स्थान रहा है। ' भारतीय धर्मशास्त्र में नारी सर्वशक्तिमान सम्पन्ना मानी गयी तथा विद्या, शील, ममता, यश और सम्पत्ति की प्रतीक समझी गयी। गृह की साम्राज्ञी के रूप में उसे प्रतिष्ठापित किया गया तथा घर के अन्य सदस्यों को उसके शासन में रहने के लिए निर्दिष्ट किया गया था।' [1] शनैः–शनैः समाज में उसका महत्त्व इतना अधिक बढ़ा कि उसके बिना अकेला पुरुष अपूर्ण एवं अधूरा समझा गया' [2]

उस काल में स्त्री पुरुषकी अर्द्धांगिनी मानी गयी तथा 'श्री' और लक्ष्मी के रूप में वह मनुष्य के जीवन को सुख और समृद्ध से दीप्त एवं पुंजित करने वाली

1– अथर्ववेद – 14/14

2– शतपथ ब्राह्मण – 5/2/1/10

कही गयी।

'ताण्ड्य ब्राह्मण' [1] में कहा गया है कि 'यज्ञों से प्राप्त परिणामों में प्रजारूप फल की प्राप्ति कही गयी है।''

समयानुसार इनकी दशा में युगानुरूप परिवर्तन भी होता रहा है। उनकी स्थिति में वैदिक युग से लेकर पूर्वमध्य युग तक अनेक उतार–चढ़ाव आते रहे तथा उनके अधिकारों में उसी के अनुरूप परिर्वतन भी होते रहे। प्राचीन भारतीय इतिहास के एक विहंगम अवलोकन से ज्ञात होता है कि वैदिक युग में स्त्री शिक्षा अपनी सीमा का चरमोत्कर्ष द्योतित कर रही थी। बुद्धि और ज्ञान के क्षेत्र में अग्रणी स्त्री पुरुषों के समक्ष बिना किसी भेद–भाव के शिक्षा प्राप्त कर रही थी। ऐसा लगता है कि उन स्त्रियों का भी उपनयन संस्कार होता था, वह ब्रह्मचर्य का सम्यक् पालन करती हुयी विभिन्न विषयों की शिक्षा ग्रहण करती थी। पूर्व वैदिक काल में स्त्रियों को पुरुषों के समान ही सामाजिक व धार्मिक अधिकार प्राप्त थे। सभा एवं गोष्ठियों में वे ऋग्वेद की ऋचाओं का गान किया करती थी। पति के साथ वे यज्ञ में समान रूप से सहयोग करती थी। सूत्र काल तक स्त्रियों के यज्ञ सम्पादित करने का वर्णन हमें मिलता है।

शिक्षा, धर्म, व्यक्तित्व, और सामाजिक विकास में उसका महान योगदान था, वह स्वतंत्रता पूर्वक शिक्षा ग्रहण करती थी, और स्वच्छन्दता पूर्वक विचरण

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 21/9

करती थी। पुरूषों की तुलना में वह किसी भी प्रकार निम्न नहीं थी। वह पतिदेव के साथ प्रत्येक कार्य में सहयोग करती थी। इस प्रकार वह पुरूषों की ही तरह समाज की स्थायी और गौरवशाली अंग थी। वह अत्यन्त सुशिक्षित, सुसभ्य और सुसंस्कृत होती थी। वह पति के साथ मिलकर याज्ञिक कार्य को भी सम्पन्न करती थी। वस्तुतः स्त्री पुरूष दोनों यज्ञ रूपी रथ के जुडे. हुए दो बैल थे। [1] अतः यज्ञ में उसकी उपस्थिति की अनिवार्यता उसकी 'पत्नी' संज्ञा को चरितार्थ करती है।"[2]

समाज में स्त्री का महत्त्वपूर्ण स्थान था। 'लोपामुद्रा', 'विश्ववारा', 'सिकता', 'घोषा', आदि ऐसी ही विदुषी स्त्रियॉ थीं। शिक्षा, ज्ञान और विद्वता के क्षेत्र में ही नहीं बल्कि याज्ञिक कार्यों में भी वे अग्रणी थीं। 'ब्रह्मयज्ञ' में जिन ऋषियों की गणना की जाती है, उनमें 'सुलभा', 'गार्गी', 'मैत्रेयी', आदि विदुषियों के नाम भी लिए जाते हैं, जिनकी प्रतिष्ठा वैदिक ऋषियों के समान थी। गार्गी ने तो अपनी प्रतिभा, विलक्षण तर्कशक्ति, विचक्षण मेधा और सूक्ष्म विचार तन्तुओं से दुरूह प्रश्नों की पृच्छाएँ करके याज्ञवल्क्य ऋषि के दॉत खट्टे कर दिए । यह भी उल्लेख मिलता है कि स्त्रियॉ बिना पर्दे के स्वतन्त्रतापूर्वक पुरूषों के साथ विद्वानों की गोष्ठियों और दार्शनिक वाद–विवादों में सम्मिलित होती थीं।

1– तैत्तिरीय ब्राह्मण – 3/75

2– शतपथ ब्राह्मण – 1/19/2/16

वैदिक युग में छात्राओं के दो वर्ग थे, एक सद्योवधू और दूसरा ब्रह्मवादिनी। सद्योवधू वे छात्राएँ थीं, जो विवाह के पूर्व तक वेद मन्त्रों और याज्ञिक प्रार्थनाओं का ज्ञान प्राप्त कर लेती थी तथा ब्रह्मवादिनी वे थी, जो अपनी शिक्षा पूर्ण करने में अपना जीवन लगा देती थीं। इस प्रकार कुछ स्त्रियाँ जीवन पर्यन्त अध्ययन में लीन रहती थी और विवाह नहीं करती थीं। ऋषि कृशध्वज की कन्या 'वेदवती ऐसी ही ब्रह्मवादिनी स्त्री थी। ऐसी स्त्रियाँ बहुमु खी प्रतिभा सम्पन्न होती थीं, जो ज्ञान और बुद्धि में पारंगत ही नहीं,बल्कि अनेक मन्त्रों की उद्‌गात्री होती थी। वे दर्शन, तर्क मीमांसा,साहित्य आदि विभिन्न विषयों की पण्डिता होती थी।

अध्ययन, मनन के क्षेत्र में स्त्रियों की रूचि बढ़ती गयी। दर्शन जैसे गूढ़ विषयों में भी वे पारंगत होने लगी। याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी प्रसिद्ध दार्शनिका थी, जिसकी रूचि सांसारिक वस्तुओं में और अलंकार में न होकर दर्शनशास्त्र में थी। यही नहीं, उसने अपने पति की सम्पत्ति में अपने अधिकार को, अपने पति याज्ञवल्क्य की दूसरी पत्नी के हित में त्यागकर केवल ज्ञान प्राप्ति की याचना की थी । पुनः यह विवरण भी एक स्थान पर आया है कि जनक की राजसभा में होने वाली विद्वत गोष्ठी में गार्गी ने अपनी अद्‌भुत तर्कशक्ति से याज्ञवल्क्य जैसे महर्षि को चौंका दिया था।

ब्राह्मणों के अनुसार महिलाएँ शिक्षिकाओं का भी कार्य क़रती थी, ''एक कुमारी जो कि गन्धर्व गृहीता थी, उसने कहा कि हम पितरों से यह कहते हैं कि जो

जो आग्नहोत्र दोनों दिन करता है, वह तीसरे दिन किया जाये'।[1] 'पंचविंश ब्राह्मण'[2] में एक स्थान पर वर्णन आया है कि कुछ महिलाएं शततन्त्रीक वीणा इत्यादि वाद्ययन्त्र बजाती थी, यह उल्लेख उनकी गायन, वादन एवं नृत्यकला की निपुणता की ओर संकेत करता है। वे कौशलपूर्वक नृत्य करती थी तथा ऋग्वेद की ऋचाओं का भी गान करती थीं।[3]

ब्राह्मण ग्रन्थ्रों में विवाह सम्बन्ध में भी प्रकाश डाला गया है और एक स्थान पर कहा गया है – 'पुरुष शरीर का अर्द्धभाग है, वह तब तक पूर्ण नहीं होता, जबतक उसकी पत्नी नहीं होती है और उसको पुत्र की प्राप्ति नहीं होती है।'

समाज को उदात्त, आदर्श और सुव्यवस्थित बनाये रखने के लिए यह आवश्यक था कि स्त्री का चरित्र और आचरण उज्ज्वल और सुंस्कृत हो। उसकी नैतिकता, चारित्रिक–सौष्ठव और निष्ठा से कुटुम्ब की गरिमा बनती है, इसलिए दुश्चरित्र, अनैतिक और आचरणहीन स्त्री समाज और परिवार के लिए कलंक

1– ऐतरेय ब्राह्मण – 5/29, कौषीतकि ब्राह्मण – 2/9

2– पंचविंश ब्राह्मण – 5/6/8

3– ऋग्वेद – – 1/92/4, 10/71/11

मानी गयी। 'शतपथ ब्राह्मण' [1] में कहा गया है कि यजमान पत्नी को परपुरुषों के बीच यज्ञभूमि में नहीं आना चाहिए'।

"बौधायन" के विचार से दुश्चरित्र स्त्री की शुद्धि प्रतिमास होने वाले उसके रक्तस्राव से हो जाती है, जिससे उसका पाप और मल दूर हो जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट किया गया था कि दुश्चरित्रता का त्याग पति द्वारा नहीं होना चाहिए। प्रतिमास होने वाले रक्तस्राव से वह अपने आप शुद्ध हो जाती है।[2] "सामविधान ब्राह्मण' के अनुसार स्त्रियों के लिए भ्रूणहत्या करना एक महान पाप बतलाया गया है। ऐसा करने पर इन्हें प्रायश्चित्त करना पड़ता था"। [3]

वस्तुतः नारी के लिए पातिव्रत धर्म का पालन परम मंगलमय माना जाता था।[4] समाज में किसी प्रकार के नैतिक स्खलन या शैथिल्य का चिह्न नहीं पाया जाता था। ऐसे नैतिक आदर्श पर चलने वाले ब्राह्मण कालीन समाज का अवलोकन कर कोई भी विद्वान उसके उपर अनैतिकता का आरोप नहीं कर सकता।

1– शतपथ ब्राह्मण – 1/3/1/21

2– बौधायन धर्मसूत्र – 2/2/57

3– सामविधान ब्राह्मण – 1/5/16

4– शतपथ ब्राह्मण – 2/5/2/20

प्राचीनकाल में वेश्यावृत्ति अपनाने वाली गणिकाओं का भी वर्णन मिलता है, इनका समाज में साधारण लोगों से स्थान श्रेष्ठ माना जाता था। गायन, वादन, संगीत के प्रेमी लोग गणिकाओं के प्रति आकृष्ट रहा करते थे और उनके यहाँ आया–जाया करते थे, इनका जीवन संगीत और ललितकला का सम्मिश्रित रूप था, जो इनका प्रधान व्यवसाय था। आज की तुलना में उस युग में ये आदर और प्रशंसा की पात्र थी। राज्य और समाज में इन्हें उच्च स्थान प्राप्त था। अपने आगमन, सौन्दर्य और संगीत प्रदर्शन से वह लोगों को आकृष्ट करती थीं तथा श्रेष्ठ जनों के मानस में स्थायी प्रभाव स्थापित कर सकने में समर्थ होती थी।

महाभारत से विदित होता है कि जिस समय गान्धारी गर्भवती थी, उस समय परिचर्या और सेवा के लिए एक वेश्या लगाई थी। श्री कृष्ण जब शान्ति स्थापना के लिए कौरवों के यहाँ पधारे थे तब वेश्याओं ने उनका स्वागत किया था। कभी–कभी सेनाओं के साथ भी वेश्यायें चलती थीं। संघर्ष के लिए सन्नद्ध पाण्डवों की सेना में वेश्यायें भी रहा करती थी। जातकों में विवृत ऐसी ही सुलसा ऐसी ही गणिका थी। इस तरह का वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थों में भी आया है। 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' [1] में कहा भी गया है 'पुंश्चली एवं स्वेरिणी स्त्रियों को समाज का कलंक माना जाता था। पुरुषमेध के बलि प्राणियों की तालिका में इनकी गणना की गयी है।''

1– तैत्तिरीय ब्राह्मण – 3/4/15/1

समाज मे ऐसी भी स्त्रियों का वर्ग था, जो पति की अनुपस्थिति में सच्चरित्रता और सदाचार के साथ रहती थीं, इस प्रकार ऐसी स्त्रियों को प्रोषित भर्तृका कहा जाता था, जो अपने विदेश गये पति द्वारा की गयी व्यवस्था पर अपना भरण–पोषण करती थी। पति की मृत्यु के बाद स्त्री के लिए दो मुख्य कर्त्तव्य निर्देशित थे, जिनमे से किसी एक का विधवा के लिए अनुसरण करना वांछनीय था। एक पति के साथ सहमरण या सती होना और दूसरे ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए शेष जीवन व्यतीत करना। सतीप्रथा की भर्त्सना का भी वर्णन मिलता है। [1]

'ताण्ड्य ब्राह्मण में' [2] में एक स्थान पर पति की मृत्यु के पश्चात् युवती के विधवा कहलाने का संकेत प्राप्त होता है। इन्हें इस तरह सादा जीवन व्यतीत करना पड़ता था। इन्हें श्रृंगारिक वस्तुओं तथा भोगविलास की चीजों से बहुत दूर रहना पड़ता था। ब्राह्मण ग्रन्थों के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि स्त्रियों को उस समय राजनीतिक अधिकार भी मिले हुए थे। इस तरह इन्हें इस क्षेत्र में समुचित सम्मान प्राप्त था, ये अपने कर्त्तव्यों का पालन जिस प्रकार करती थी, वह पुरुषों से किसी भी प्रकार कम नहीं था। ''शतपथ ब्राह्मण' [3] मे कहा गया है 'इन्द्राणी साम्राज्ञी होने के कारण उष्णीश धारण किये रहती थी।'' इन्हें वीरांगना

1– मृच्छकटिक – अंक 10

2– ताण्ड्य ब्राह्मण – 4/1

3– शतपथ ब्राह्मण – 5/3/5/23

शब्द से उस समय भी सुशोभित किया जाता था। उनकी गणना वीरों में की गयी है, ये पुरुषों के समान इस क्षेत्र में अग्रणी थीं। 'ताण्ड्य ब्राह्मण' [1] में एक वर्णन आया है जिसमे राजमहिषी की गणना अष्टवीरों में की गयी है।

इस तरह ब्राह्मणकालिक महिला समाज पर ध्यान देते हुए यह कहा जा सकता है कि उनकी दशा उन्नत थी। सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक अधिकारों से सम्पन्न ब्राह्मण युग की महिला प्राचीन भारत के आदर्श का प्रतीक है। कुल मिलाकर सामवेदीय ब्राह्मणों का अध्ययन करने से यही निष्कर्ष निकलता है।

यह युग नारी को रूढ़िवादिता के पाशों में आबद्ध करने वाला नहीं था बल्कि उसे प्रकृति के प्रांगण में स्वतन्त्रतापूर्वक साधिकार जीवन–यापन करने देने वाला था। वह सभ्यता और संस्कृति का स्वर्णकाल था, जिसमें नारी को सम्मानपूर्ण जीवन यापन करने का अधिकार प्राप्त था। इस प्रकार ब्राह्मण काल में भी स्त्रियों को पूर्णप्रतिष्ठा प्राप्त थी, ऐस स्पष्ट हो जाता है।

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 19/7/1–4

पंचम अध्याय

"सामवेदीय ब्राह्मणों में निरूपित"

(1) वर्णव्यवस्था

(2) संस्कार

(3) राजनैतिक स्थिति

सामवेदीय ब्राह्मणों में वर्णित वर्ण–व्यवस्था–

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में वर्ण–व्यवस्था का विशेष महत्त्व है। वास्तव में वर्ण–व्यवस्था भारतीय समाज का मेरूदण्ड है। प्राचीनकाल में राजनीति, आर्थिक एवं धार्मिक रूपरेखा भी इसी आधार पर बनी थी। इसका उद्भव ऋग्वैदिक काल से ही हो चुका था। 'वर्ण' शब्द मनुष्यों के एक वर्ग को द्योतित करता है। ऋग्वेद में यह शब्द 'रंग' या 'ज्योति' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसके अलावां उसी ग्रन्थ में यह मनुष्यों के एक वर्ग को व्यक्त करने के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। [1]

अन्य स्थानों पर देखने से प्रकट होता है कि 'दासों' और आर्यों का त्वचा के रंग के आधार पर विभेद किया गया है। [2] परन्तु यह विभेद दो रंगो तक ही सीमित हैं। 'ताण्ड्य माहाब्राह्मण' और 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' में महाव्रत के प्रंसग में शूद्र तथा आर्य के बीच एक नकली युद्ध का उल्लेख मिलता है। इसमें ब्राह्मण को दिव्य वर्ण का एवं शूद्र को असुर वर्ण का बताया गया है।" [3]

'ऋग्वेद' के बाद के संहिताओं तथा ब्राह्मण साहित्य में हमें आधारभूत अन्तर विदित होता है। उस समय तक चारों वर्णों को पूरी तरह मान्यता प्राप्त हो चुकी थी। 'ऋग्वेद' के दशम मण्डल के पुरुषसूक्त में मनुष्यों के चार वर्णों

1– पंचविंश ब्राह्मण – 5/5/14

2– गोपथ ब्राह्मण – 1/1/23

3– ताण्ड्य ब्राह्मण – 5/5/14, तैत्तिरीय ब्राह्मण –1/2/6/7

– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र की स्पष्ट कल्पना की गयी है।[1] समस्त समाज को पुरुष का रूपक दिया गया है और उसके विभिन्न अंगो का वर्णन किया गया है। चारों वर्ण एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। जीवित समाज का यही लक्षण है। उस समाज पुरुष का ब्राह्मण मुख था। क्षत्रिय भुजाएँ थी, वैश्य जंघा था तथा शूद्र पैर था।

'ताण्ड्य ब्राह्मण' में प्रजापति से चारों वर्णो की सृष्टि बतलायी गयी है। प्रजापति के मुख से ब्राह्मण, हृदय एवं बाहुओं से क्षत्रिय, मध्य भाग से वैश्य एवं पैरों से शूद्र का उल्लेख पाया जाता है।'

वस्तुतः वर्णवयवस्था जातिगत वर्ग तथा सामाजिक संरचना से सम्बद्ध है। वर्ण के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्वाभाविक गुणों के अनुरूप स्थान मिलता है। समाज में व्यक्ति का प्रभाव और महत्त्व वर्ण के आधार पर ही तय होता है। वर्ण–व्यवस्था के अन्तर्गत कर्म का प्रधान स्थान है तथा प्रत्येक वर्ण का अपना खास कर्त्तव्य भी है। वर्णों के ये कर्त्तव्य समाज में वर्ण धर्म के नाम से जाने गये।

वर्ण–व्यवस्था में दो तत्त्व मुख्य हैं– एक तो ऊँच–नींच की भावना तथा दूसरा सभी वर्णों के लिए निर्धारित कर्म। इन्हीं दो तत्त्वों को लेकर वर्ण–व्यवस्था का स्वरूप बना। चारों वर्णों के अपने–अपने कर्म वैज्ञानिक और

1– पंचविंश ब्राह्मण – 6/1/6–7

सुविचारित आधार पर निर्धारित किये गये थे, जो समाज के व्यवस्थित विभाजन को व्यक्त करतें हैं।

भारतीय वर्ण–व्यवस्था सामाजिक वर्गों की महत्ता और उनके कर्मों की प्रतिष्ठा से सम्बद्ध है। इसका उद्देश्य है व्यक्ति का बहुमुखी विकास, जो उसका गुण के अनुरूप कर्म से माना गया है। अपने वर्ण के कर्म का परिपालन करने पर तथा पुर्नजन्मों के आधार पर मनुष्य की अभिवृद्धि होती है। सभी वर्णो के मनुष्यों में समानता है, अन्तर तो केवल उनके गुण और कर्म का है। वर्णों में विभाजन के वावजूद सभी वर्णो का एक दूसरे से सम्बन्ध है। 'ताण्ड्य ब्राह्मण' [1] में वर्णन आया है कि वर्ण शब्द मनुष्यों के एक वर्ग को व्यक्त करने के लिए भी प्रयुक्त हुआ है।''

''वर्ण शब्द की व्युत्पत्ति तथा आर्य और अनार्य''

'वर्ण' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'वृत्रवरणे' अथवा 'वरी' धातु से हुई है जिसका अर्थ है 'चुनना' या वरण करना। 'वर्ण' और 'वरण' शब्दों में समानता भी है ''वर्ण'' से तात्पर्य 'वृत्ति' से है, किसी व्यवसाय के चुनने से। वास्तव में 'वर्ण' से तात्पर्य 'वृत्ति' तथा उस सामाजिक वर्ग की ओर इंगित करता है, जिसका समाज में विशिष्ट कार्य तथा स्थान है। इन्हीं बातों के कारण समाज के अन्य वर्गों अथवा समूहों से सर्वथा अलग होता है।

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 5/5/14

इसका प्रयोग सर्वप्रथम तो 'ऋग्वेद' में पाया जाता है, जो पूर्वयुग की समाज रचना के प्रारम्भिक स्वरूप को स्पष्ट करता है, उसमें 'वर्ण' का प्रयोग 'रंग' अथवा 'आलोक' के अर्थ में है। [1] यत्र–तत्र ऐसे वर्गों के लिए भी 'वर्ण' का व्यवहार हुआ है, जिनके शरीर की त्वचा 'श्याम' थी अथवा श्वेत थी।

तत्कालीन समाज में दो ही वर्ण थे एक 'आर्य' और दूसरा 'अनार्य'। ऋग्वेद के अनेक स्थ्लों पर 'आर्य' और दास की अनेकता और भिन्नता वर्ण के रूप में दर्शित की गयी है। उनके पारस्परिक संघर्षों की चर्चा की गयी है।' [2] इस प्रकार 'आर्य' और 'दास' वर्ण के रूप में दो प्रतिपक्षी जनजाति समूह थे, जो एक दूसरे से कार्य, व्यवहार, आचरण, सम्भाषण तथा रंग आदि में भिन्न थे।

ताण्ड्य ब्राह्मण महाव्रत के प्रंसग में आर्य तथा शूद्र के बीच एक नकली युद्ध का वर्णन मिलता है। [3] गोपथ ब्राह्मण में भी दासों और आर्यों की त्वचा के रंग के आधार पर विभेद किया गया है। [4] दास और आर्यों में जन्मगत, रक्तगत,

---

1– ऋग्वेद – 1/73/7, 2/3/5

2– ऋग्वेद – 3/34/9

''ससानात्थां उत सूर्य ससानेन्द्र समान पुरुभोजसं गाम्।

हिरण्यमुत भोगं समान हत्वी दस्यून प्रार्यवर्णभावत्''।।

3– ताण्ड्य ब्राह्मण – 5/5/14

4– गोपथ ब्राह्मण – 1/1/23

शरीरगत और संस्कारगत प्रजातीय भेद था। दोनों के कर्म भी अलग–अलग थे। अतः स्पष्टरूप से आर्य और दास नामक दो वर्ण समाज में हो गये, जिनका वैदिक युग के प्रारम्भिक काल तक पृथक् अस्तित्व बना रहा।

आर्यो ने अपनी रक्त शुद्धता को बनाये रखने के लिए सम्पूर्ण समाज का पुर्नगठन किया और चार वर्णों की व्यवस्था की– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। शूद्र के अन्तर्गत उन्होनें समस्त दास और अनार्य वर्ग को सम्मिलित किया, तथा प्रारम्भिक तीनों वर्णों में संयोजित किया।

आर्यो ने समाज के जिन विभिन्न समूहों अथवा वर्गों का निर्माण किया, उनमें उनके गुण के साथ–साथ उनके प्रधान कर्म को भी महत्त्व दिया। इस प्रकार वर्ण–व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न वर्णों अथवा समूहों को उनके प्रधान गुण और कर्म के आधार पर विभाजित किया जाता है तथा कर्मों को मुख्यरूप से व्यवस्थित करके सही दिशा प्रदान की गयी, इस तरह क्रमशः इसका पालन–अनुपालन होता रहा।

वर्ण व्यवस्था का उद्भव सम्बन्धी सिद्धान्त –

'वर्ण व्यवस्था' का उद्भव कैसे और किन परिस्थितियों में हुआ, यह विचारणीय है। फिर भी इसका विकास धीरे–धीरे हुआ। इसे पूर्ण विकसित होने में तो हजारों वर्ष लगे। सभी वर्णों और वर्गों के कर्मों तथा कर्त्तव्यों को निर्धारित

करने में अपार बुद्धि और विवेक की सहायता ली गयी। सभी लोग अपने–अपने कर्मों को निर्बाध गति से स्वच्छन्दता और निष्ठापूर्वक सम्पन्न कर सकें, इसके लिए धर्म की सहायता ली गयी तथा सभी वर्णों के कत्तव्यों को धर्म के अन्तर्गत माना गया। इस तरह वर्णव्यवस्था की उत्पत्ति कई प्रकार तथा रूपों में विकसित होकर क्रमशः हुई।

'ताण्ड्य ब्राह्मण' [1] में प्रजापति से चारों वर्णों की सृष्टि बतलाई गयी है। प्रजापति के मुख से ब्राह्मण, हृदय एवं बाहुओं से क्षत्रिय, मध्य भाग से वैश्य एवं पैरों से शूद्र की सृष्टि का उल्लेख पाया जाता है। इस तरह ब्राह्मणों में उनके देवता तथा व्यवसायों के सम्बन्ध में भी संकेत पाया जाता है। 'शतपथ ब्राह्मण' [2] में कहा गया है– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ये चार वर्ण हैं।

ब्राह्मणयुगीन समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन चार वर्णों तथा इनके कार्यों की पूरी व्यवस्था एवं प्रतिष्ठा उपलब्ध होती है। वैदिक यज्ञ का सम्पादक तथा निर्वाहक होने के कारण ब्राह्मण का स्थान चारों वर्णों में अग्रतम था।

दैवी अथवा परम्परागत सिद्धान्त –

प्राचीन धर्मशास्त्रों में वर्णों की उत्पत्ति ईश्वरकृत अथवा दैवी मानी गयी है,

---

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 6/1/5–7

2– शतपथ ब्राह्मण – 1/1/4/12

तथा उनके विभाजन को आदर पूर्वक पवित्र कहा गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार वर्णों की उत्पत्ति ईश्वरकृत मानी जाती है। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में वर्ण सम्बन्धी उत्पत्ति के विवरण को स्वीकार किया गया है, इसके विवेचन के अनुसार वर्णों की उत्पत्ति विराट पुरुष से हुई थी, उसके मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, उरू (जांघ) से वैश्य तथा पद (पैर) से शूद्र उत्पन्न हुये।' [1] वस्तुतः यह विराट पुरुष अर्थात् सृष्किर्त्ता हजारों सिर, हजार आखों तथा हजार पैरों वाला था, यह भूत और भविष्य दोनो था, और इसी से सृष्टि की उत्पत्ति हुई थी।'' [2]

जिस प्रकार शरीर में में मुँह, बाहु, जॉघ और पैर का महत्त्व है, उसी प्रकार समाज रूपी शरीर के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अंग हैं। सभी अंगो का शरीर में प्रधान स्थान होता है, तथा किसी एक अंग के बिना समाज की स्थिति भी गम्भीर हो जाती है क्योंकि शरीर के परिचालन में सभी अंगो का समान योग और महत्त्व होता है।

ब्राह्मणों की उत्पत्ति मुख से इसलिए मानी गयी है क्योंकि उनका समस्त कार्य मुँह से सम्बन्धित था, अर्थात् शिक्षा और ज्ञान प्रदान करना। क्षत्रियों को बाहु से उत्पन्न माना गया, क्योंकि उनका सभी कार्य देश की सुरक्षा, प्रशासन इत्यादि

1— ऋग्वेद ब्राह्मण — 10/90/12

2— वही — 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
पुरुष एवेदं सर्व यद्भूतं यच्चभव्यम्।।''

बाहु से आबद्ध था। उनको बहुशक्ति और शौर्य का भी प्रतीक माना जाता है। वैश्यों का जॉघ से उद्‌भव इसलिए माना गया है क्योंकि उनका प्रमुख कार्य समाज की आर्थिक व्यवस्था सुदृढ़ करना था। कृषि, पशुपालन और वाणिज्य से वे समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। जिस प्रकार शरीर के लिए जॉघ की जरूरत थी, उसी प्रकार समाज के लिए वैश्यों की जरूरत थी। शूद्रों की उत्पत्ति पैर से इसलिए कही गयी है क्योंकि वे अपनी सेवा के द्वारा तीनों वर्णों और समाज को गति प्रदान करते थे। अतः यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि चारों वर्णों के बिना समाज का कोई महत्त्व नहीं है।

वर्ण व्यवस्था को दैवी इसलिए भी कहा गया कि इससे सम्बद्ध वर्ण ईश्वर के भय से अपने–अपने वर्ण के अन्तर्गत रहें तथा उसे तोड़ने अथवा आघात पहुॅचाने का कार्य न करें। इस तरह विराट पुरुष के नाम पर संचालित की गयी यह वर्ण व्यवस्था पश्चातवर्ती युग में और भी पुष्पित तथा पल्लवित हुयी थी। 'गीता' 1 में भी भगवान श्री कृष्ण जी का कथन है कि चारों वर्णों की सृष्टि मैंने गुण और कर्म के आधार पर की है तथा मैं ही उनका कर्त्ता और विनाशक हूॅ।' ''मनु' [2] ने भी यह उल्लेख किया है कि ब्रह्मा ने लोकवृद्धि के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को क्रमशः मुख, बाहु, जंघा तथाचरण से निरवर्त किया है।'

1– गीता – 4/13

2– मनुस्मृति – 1/31

वर्ण व्यवस्था के उद्‌भव का वर्णन महाभारत [1] में भी किया गया है, अन्तर केवल इतना है कि विराट पुरुष के स्थान पर ब्रह्मा का उल्लेख किया गया है, इसके अनुसार ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, उरू (जंघा) से वैश्य और तीनों वर्णों की सेवा हेतु शूद्र का निर्माण किया गया।

'गुण का सिद्धान्त –

वर्ण व्यवस्था के मूल में गुणों की भी अभिव्यक्ति मानी गयी है। मनुष्य अपने गुण से महान बनता है, न कि अपने वंश अथवा परिवार से। इसके अन्तः एवं बाह्य गुण ही उसे श्रेष्ठपद की प्राप्ति कराते हैं। ये गुण कई प्रकार के होते हैं– सत्व, रज और तम। स्वच्छ गुण अत्यन्त निर्मल, स्वच्छ, दोष रहित, ज्ञान –प्रदाता और संसारिकता से विमुख करने वाला होता है। इससे व्यक्ति को सुख और ज्ञान का आभास मिलता है। यह श्रेष्ठतम माना गया है। रजोगुण से प्रेरित होकर मनुष्य अनुरक्त होता हुआ अपने कर्मों को सम्पन्न करता है तथा संसार सागर का संहरण करता है। सत्य की अपेक्षा रजोगुण निम्न है। पुनः तमोगुण से अज्ञान उत्पन्न होता है। जब अज्ञान का प्रभाव होता है तब भ्रम, आलस्य,

---

1– महाभारत शान्तिपर्व – "ब्राह्मणों मुखतः सृष्टो ब्राह्मणो राजसत्तम ।

बाहुभ्यां क्षत्रियः सृष्ट उरूभ्यां वैश्य एव च ।।

वर्णानां परिचयार्थां त्रयाणां भरतवर्षम ।

वर्णश्चतुर्थः सं भूतं पद्भ्यां शूद्रो विनिर्मितः ।।

प्रमाद, निद्रा, मोह आदि का उदय होता है। मनुष्य उससे ग्रस्त हो जाता है।

मनु [1] ने भी तीन प्रकार के गुणों की चर्चा की है – सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण। इस तरह यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि सत्वगुण ज्ञान से समन्वित, रजोगुण रागद्वेष से समन्वित तथा तमोगुण अज्ञान से युक्त था। सत्वगुण से युक्त ब्राह्मण, रजोगुण से समन्वित क्षत्रिय, रज से वैश्य और तमगुण से शूद्र की उत्पत्ति हुयी है।

रंगो से सम्बन्धित सिद्धान्त –

वर्ण का एक अर्थ रंग भी होता है, वास्तव में इसका प्रयोग ऋग्वेद काल में आर्य और दास का वैपरीत्य दर्शित करने के लिए आया है। इन दोनों वर्गों 'आर्य' और 'दास' का वर्ण –अर्थ क्रमशः श्वेत (गौर) और कृष्ण (श्याम) रंग है। ''महाभारतशान्तिपर्व'' [2] में वर्ण की उत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि इसका उद्‌भव रंग से हुआ था। इसके अनुसार मनुष्यों की त्वचा के रंग विभिन्न वर्ण के परिचायक थे। ब्रह्मा ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की उत्पत्ति की जिनका रंग क्रमशः श्वेत, लोहित (लाल) पीत (पीला) और काला था।''

1– मनुस्मृति – 18/24 ''सत्वं रजस्तश्‍ यैव त्रीन्विद्यादात्मनो गुणान्।
यैर्ण्याप्येमान्स्थितो भावान्महान्सर्वानशेषतः।।''

2– महाभारतशान्तिपर्व – 188/5 ब्राह्मणनां तुसितों क्षत्रियाणां तु लोहितः।
वैश्यानां पीतको वर्ण शूद्रणां मितस्तथा।।

कर्म तथा धर्म सम्बन्धी सिद्धान्त –

शास्त्रकारों द्वारा विभिन्न वर्णों के अलग–अलग कर्म निर्धारित किए गये थे, अर्थात् कर्म के ही आधार पर वर्णों का वर्गीकरण किया गया था। वैदिक काल में लोग विद्या, तप, यज्ञ धार्मिकता आदि में रूचि रखते थे। वे ब्राह्मण वर्ग के अन्तर्गत गृहीत किये गये। ऐसे लोगों का मुख्य कार्य अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन और तप था। पुनः दूसरी ओर जो वर्ण शासन संचालन और राज्य व्यवस्था में योग देता था, तथा जिसका प्रधान कर्म देश की रक्षा, प्रशासन आदि था वह क्षत्रिय वर्ग से सम्बन्धित किया गया। पशुपालन, कृषि, व्यापार जिसका प्रध ाान कर्म था, वह वैश्य माना गया। उक्त तीनों वर्णों की सेवा और परिचारक वृत्ति करने वाला वर्ग शूद्र वर्ग का कहा गया।

वस्तुतः कर्म का यह सिद्धान्त धार्मिक परिप्रेक्ष्य में और भी सबल होकर वर्णों के जीवन में सशक्त और जीवन्त हुआ। किए गये कर्म के आधार पर ही मनुष्य का जन्म माना गया। पुनः यह व्याख्या की गई कि मनुष्य जो वर्तमान जीवन जीता है, वह पिछले जन्म में किये गये कर्म का ही प्रतिफल है। "महाभारत" में कहा गया है कि समाज में सर्वप्रथम केवल ब्राह्मण ही थे, बाद में अपने कर्त्तव्यों की विभिन्नता के कारण समाज में कई वर्ण हो गये। काम और भोग के प्रेमी, तीक्ष्ण, क्रोधी, स्वधर्म त्यागी क्षत्रिय थे। अपने धर्म से गिरा हुआ,

पशुपालन में लिप्त, पीत वर्ण वाले वैश्य थे तथा हिंसा प्रिय, अपवित्र भ्रष्ट, कृष्ण वर्ण वाले तथा येन केन प्रकारेण जीविकोपार्जन करने वाले शूद्र थे।" [1]

इस तरह जाति से सम्बन्धित इसी प्रकार की अनेक कथाएँ मिलती हैं, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन जीवन में जाति का ही प्रधान्य था किन्तु बुद्ध का स्वयं का विचार कर्म था, वे कर्म को ही श्रेष्ठ मानते थे। "ऐतेरेय [2] ब्राह्मण" में कहा गया है कि जो ब्राह्मण हुए वह हुताद हुए, जो क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र हुए वह अहताद हुए।"

जन्म से सम्बन्धित सिद्धान्त –

भारतीय शास्त्रकारों और भष्यकारों ने वर्णों की उत्पत्ति जन्म से भी मानी है। ब्राह्मण परिवार में जन्मा व्यक्ति अयोग्य और अज्ञानी होकर भी पूजनीय ब्राह्मण माना जाता था, तथा चारों वर्णों में जन्म के आधार पर श्रेष्ठ माना जाता था। इस प्रकार स्पष्ट है कि वर्ण का आधार जन्म माना गया न कि कर्म। एक बहुत ही रोचक उदाहरण विश्वामित्र की ब्राह्मण बनने की इच्छा नामक प्रसंग का है। चूँकि वसिष्ठ अत्यन्त विद्वान, कर्मनिष्ठ और तेजस्वी ब्राह्मण थे। वे विश्वामित्र के अधातों को अपने अध्यात्म, तप और तेज से समाप्त कर देते थे।

1– महाभारतशान्तिपर्व – 188/10 नविशेषोऽस्ति वर्णानां सर्व ब्रह्ममिदं जगत।

ब्राह्मणां पूर्वसृष्टं हि वर्णभिवर्णतागतम्।।

2– ऐतरेय ब्राह्मण – 7/19/1

अन्ततोगत्वा विश्वामित्र ब्राह्मणत्व पानें में समर्थ तो अवश्य हो गये, परन्तु प्रत्येक अवसर पर वे वसिष्ठ द्वारा पराजित हुए। वस्तुतः यह संघर्ष ब्राह्मण क्षत्रिय कहलाये। दूसरी ओर द्रोणाचार्य का कर्म क्षत्रिय वर्ण का था, लेकिन वे जन्म से ब्राह्मण थे, इसलिए ब्राह्मण ही माने गये। महाभारत के एक प्रसंग में द्रौपदी ने स्वयं कहा था कि कर्ण 'सूत' (निम्नजाति का) है, उसके साथ मैं परिणय नहीं करूँगी। यह भी सर्वविदित है कि परशुराम ने भी क्षत्रिय धर्म को अपनाया था, किन्तु वे क्षत्रिय नहीं कहे जा सके।

"भगवतगीता" [1] में भगवान कृष्ण ने वर्ण की उत्पत्ति के विषय में यह कहा है – "मैनें गुण और कर्म के आधार पर चारों वर्ण की सृष्टि की है" इस तरह हम देखते हैं कि समाज में वर्ण की स्वीकृति जन्म और कर्म दोनों से की गयी ळै। जन्म लेने के कारण व्यक्ति स्वाभाविक रूप से जन्मजात प्रवृत्तियों से युक्त होता है। विभिन्न वर्णों के कर्म इन्हीं प्रवृत्तियों की क्रियाओं से प्रभावित होते रहे हैं तथा अधिकार और कर्त्तव्य का संयोजन भी होता रहा है। मानव के उत्थान के लिए ये वर्णगत कर्म अनिवार्य रहे हैं। वर्ण व्यवस्था के निर्धारण में व्यक्ति का जन्मजात गुण व्यावहारिकता प्रदान करता था तथा उसे कर्म के महत्त्व का बोध कराता था।

1– गीता – 4/13 "चातुर्वर्ण्यमयासृष्टं गुणकर्मविभागशः।

तस्य कर्तारमपि मां विद्धय कर्तारमव्ययम्।।

वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति सम्बन्धी वर्णन के अनन्तर अब हम वर्ण व्यवस्था के विभाजन का प्रत्येक पहलू पर, विशेषकर ब्राह्मणों में प्राप्त इस व्यवस्था का उल्लेख करेगें, चूँकि शोधप्रबन्ध का विषय भी सांस्कृतिक अध्ययन है, अतः सामवेदीय ब्राह्मणकालीन वर्णव्यवस्था पर विस्तृत प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जायेगा जो इस प्रकार है –

''चतुर्वर्ण'' –

ब्राह्मणयुगीन समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन चारों वर्णों तथा इनके कार्यों की पूरी व्यवस्था एवं प्रतिष्ठा उपलब्ध होती है। वैदिक यज्ञ का सम्पादक तथा निर्वाहक होने के कारण ब्राह्मण का स्थान चारों वर्णों में अग्रतम था। ब्राह्मणों में देवशास्त्र को पढ़ने को तथा 'मनुष्यदेव' के महनीय अभिधान से मण्डित किया जाता था। [1]

ऋग्वैदिक समाज में वर्ण व्यवस्था का प्रारम्भ हुआ था, किन्तु इसका स्वरूप उत्तर वैदिक युग में ही निखरा था। वस्तुतः चातुर्वर्ण का विकास इसी युग से प्रारम्भ माना जा सकता है। ''ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र का उल्लेख अथर्ववेद में भी हुआ है।'' [2] ऋग्वेद के पुरुषसूक्त के समान इस युग में भी चारों

1– शतपथ ब्राह्मण – 2/2/2/6

'' येब्राह्मणाः शत्रुवांसोऽनुचानास्ते मनुष्य देवाः। विद्वान्सो हि देवाः।।''

– शतपथ ब्राह्मण 3/7/3/10

2– अथर्ववेद – 3/5/7

वर्णों को ब्रह्मा के चारों अंगो से उत्पन्न माना गया है''।[1] तैत्तिरीय ब्राह्मण में उल्लेख है कि 'अग्निहोत्र' करने के लिए ब्राह्मण के लिए वसंत में क्षत्रिय के लिए ग्रीष्म में वैश्य के लिए शीत में और रथकार के लिए वर्षाकाल में अग्निहोत्र करना श्रेयस्कर माना गया है।[2]

हिन्दू सामाजिक जीवन में चार पत्नियाँ रखना ब्राह्मण की विशेष सामाजिक स्थिति थी, जो उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा और गरिमा को व्यक्त करती है। ''अलबीरूनी'' ने कहा है कि पत्नियों की संख्या वर्ण पर आधारित थी, जिसके अनुसार ब्राह्मण चार, क्षत्रिय तीन, वैश्य दो और शूद्र एक पत्नी रख सकता था। इनकी प्रतिष्ठा का मूलाधार इनकी वैदिक एवं धार्मिक श्रेष्ठता थी। ब्राह्मणों में कहा गया है ''ब्राह्मण का बल उसके मुख में, भाषण में तथा वाक् शक्ति में ही होता है क्योंकि उसकी सृष्टि मुख से हुयी है।''[3] आगे हम इन्हीं ग्रन्थों में ब्राह्मण एवं क्षत्रियों के सम्बन्धों की भी एक झलक पाते हैं। ब्राह्मणग्रन्थों में कहा भी गया है, ऐसे अनुवाचन ब्राह्मण के वंश में क्षत्रिय के रहने पर ही राष्ट्र का मंगल होता है और राष्ट्र में वीर पैदा

1– यजुर्वेद – 31/10/1

2– ताण्ड्य ब्राह्मण – 6/1/6

3– ताण्ड्य महाब्राह्मण – 6/1/6

''तस्माद ब्राह्मणो मुखेन् वीर्यं करोति मुखतो हि सृष्टः''।

होते हैं।[1]

ब्राह्मणों पर अगर किसी प्रकार का आक्षेप लगता था तब उसके विधान की व्यवस्था भी ब्राह्मण ग्रन्थों में की गयी मिलती है, इसके लिए बहुत ही कठोर परीक्षा दी जाती थी और इसके माध्यम से वह अपने को सत्यनिष्ठ एवं निष्कलंक सिद्ध करता था। ''ताण्ड्य ब्राह्मण''[2] में उल्लेख आया है कि 'वत्स' ने 'अग्निपरीक्षा' के द्वारा इसी प्रकार के आक्षेप से अपने को मुक्त किया था।''

पूर्ववैदिक युग से ही राजनीतिक क्षेत्र में ब्राह्मणों को प्रधान सथान प्राप्त था। पुरोहित के रूप में वह राजा को विभिन्न प्रकार की सलाह और परामर्श देता था। उत्तरवैदिक काल आते–आते पुरोहित उपस्थित जन समुदाय को सम्बोधित करता हुआ कहता था, ''हे मनुष्यों यह व्यक्ति तुम्हारा राजा है, ब्राह्मणों का राजा तो सोम है।''[3]

महाकाव्य समय में भी पुरोहित का सम्मान और प्रतिष्ठा पहले की ही भॉति थी। ब्राह्मण राज्य के कतिपय कार्यों में अपना सहयोग प्रदान करने लगा था। वह राजा का प्रधान परामर्शदाता होता था। राजा का योगक्षेम पुरोहित के अधीन

1– ऐतरेय ब्राह्मण – 8/9 'तद् यत्र ब्राह्मण क्षत्रं वशमेति तद्राष्ट्रं समृद्धं तद्वीर–वदाहास्मिन् वीरो जायते।''

2– ताण्ड्य ब्राह्मण – 14/6/6

3– शतपथ ब्राह्मण – ''सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राज'' – 11/5/7/1

माना जाता था। इस पद पर सत् की रक्षा करने वाला, असत् का निवारक, धर्मात्मा, मन्त्रविज्ञ ब्राह्मण व्यक्ति को ही आसीन किया जाता था।

"ताण्ड्य ब्राह्मण" [1] में इनकी जातिगत पवित्रता ही इनके वास्तविक ब्राह्मणत्व के सम्बन्ध में किसी प्रकार की शंका किए जाने से इन्हें मुक्त कर देती थी। इस ब्रह्मण में यह व्यवस्था भी पायी जाती है कि अपने दाता के साथ कोई विश्वासघात करता है तो उसे मृत्युदण्ड भी दिया जा सकता है। [2] पुनः अन्य ब्राह्मणों में भी हमें ब्राह्मणों के विशेषाधिकारों का भी वर्णन देखने को मिलता है। 'शतपथ ब्राह्मण' [3] में ब्राह्मणों को प्राप्त विशेषाधिकारों का वर्णन इस प्रकार किया गया है – (1) अर्चा (2) दान (3) अज्जेयता (4) अवध्यता।

ब्राह्मण साहित्य में तथा अन्य साहित्य में ब्राह्मणों के लिए नियम एवं उनके अधिकारों का भी उल्लेख प्राप्त होता है, ब्राह्मण इन नियमों का पालन करते थे। इन्हें विशेषाधिकार भी प्राप्त थे। मृत्युदण्ड से ये मुक्त थे। याज्ञिक कार्य करना, पुरोहित का कार्य करना आदि ब्राह्मणों के विशेषाधिकार थे। फिर भी यदि कोई ब्राह्मण स्वामी के साथ विश्वासघात करता था, तो वह प्राणदण्ड का भागीदार होता था।

1– ताण्ड्य महाब्राह्मण – 6/5/8

2– पंचविंश ब्राह्मण – 2/10/6–8

3– शतपथ ब्राह्मण – 13/6/2/18

"शतपथ ब्राह्मण" [1] में ब्राह्मण की सभ्यता का प्रकारक माना गया है। वह अपने ज्ञान और आचरण से समाज के उत्थान में अद्वितीय योगदान देता था।" जो बच्चा ब्राह्मण परिवार में जन्म ले लेता था, वह भी श्रेष्ठ माना जाता था।

ब्राह्मण के लिए विद्यार्थी जीवन आवश्यक था। राजा अपने समग्र राज्य को दक्षिणा रूप में दे सकता है, परन्तु ब्राह्मण की सम्पत्ति को दक्षिणा रूप में नहीं दे सकता है। ब्राह्मण के लिए ब्रह्मवर्चसी होना आदर्श माना गया है। अर्थात् वेद के अध्ययन से तेजस्वी बनना और इसलिए ब्राह्मणों में वही सर्वश्रेष्ठ वीर्यवान् माना जाता है, जो वेद का ज्ञाता होता है। "षड्विंश ब्राह्मण" [2] में कहा गया है कि इस युग में ब्राह्मणों का स्थान देवतुल्य था।"

पौरोहित्य शायद इनका वंशानुगत था, पुरोहिती का कार्य केवल ब्राह्मणों के लिए था, ऐसी बात नहीं थी, उस काल में अब्राह्मण भी पुरोहित हुआ करते थे। राजा को पुरोहित रखना अनिवार्य होता था। ब्राह्मण ग्रन्थों में यह उल्लेख भी पाया जाता है कि बिना पुरोहित के राजा का अन्न देवता नहीं स्वीकार करते हैं।

ब्राह्मण काल में हम देखते हैं कि ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों वर्णों में पूर्ण सहयोग की भावना की कामना की गयी है। दान स्वीकार करने और वंश की

1– शतपथ ब्राह्मण – 1/1

2– षडविंश ब्राह्मण – 1/1

शुद्धता को बनाये रखने के लिए भी निर्देश दिया गया है। यह भी वर्णन मिलता है कि सबके द्वारा अस्वीकार की गयी वस्तु ब्राह्मण ग्रहण न करें। वास्तव में ब्राह्मण की पवित्रता और शुद्धता इसी मे थी की वह अपने आचरण और कर्म को मनोविनेशपूर्वक करता रहे।

''पंचविंश ब्राह्मण'' [1] में ब्राह्मण को क्षत्रिय से आगे तथा वैश्य एवं क्षत्रिय को उसका अनुगामी बतलाया गया है।'' ब्राह्मणों में यह भी वर्णन मिलता है कि उसकी हत्या जघन्य अपराध मानी जाती है। इसके लिए प्रायश्चित की बड़ी–बड़ी व्यवस्था निर्धारित की गयी थी। 'ब्राह्मण' को क्षत्रिय से श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त था।'' [2] 'क्षत्रिय एवं ब्राह्मण पूर्ण समृद्धि के लिए एक दूसरे को सहयोग देते थे' [3] ब्राह्मणों को परेशान या सताने पर यह कहा गया है कि 'जो कोई ब्राह्मणों का सताता है, उसका शीघ्र पतन हो जाता है।'

ब्राह्मण–

ब्राह्मणकाल में इसका महत्त्व और भी बढ़ गया था। ब्राह्मणों की स्थिति उच्च मानी जाने लगी थी। 'ताण्ड्य ब्राह्मण' में प्रजापति के मुख से इसकी उत्पत्ति मानी गयी थी।'' उसके विभिन्न कार्यों के वर्णन भी प्राप्त होते हैं।

1– पंचविंश ब्राह्मण – 2/8/2

2– ऐतरेय ब्राह्मण –7/5

3– ताण्ड्य ब्राह्मण –19/17/4

वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान और तपोमय जीवन–यापन के कारण ब्राह्मणों की समाज में सर्वोच्च प्रतिष्ठा के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। अध्ययन–अध्ययपन और मंत्र–पाठ तथा सामगान प्रभृति मुखसाध्य कर्म ब्राह्मणों के साथ सम्बद्ध रहें हैं –

"ब्राह्मणों मुखेन वीर्यङ्करोति मुखतो हिसृष्टः।" [1]

सत्य–भाषण करना ब्राह्मणों के सन्दर्भ में एक स्वीकृत तथ्य था, जैसा कि सत्यकाम–जाबाल की आख्यायिका से विदित होता है। [2] समाज में यदि उसे कष्ट मिलता था तो जल में टूटल नाव की तरह राजा का राज्य विनष्ट हो जाता था। ब्राह्मण युग में ताण्ड्यकाल में क्षत्रियों की तुलना में ब्राह्मण को निःसन्देह उत्कृष्ट घोषित किया गया है। वह अपने ज्ञान, धार्मिक कृत्यों और मंत्रो के कारण प्रबल था।

ब्राह्मण ग्रन्थों में यह भी वर्णन है कि किसी भी ब्राह्मण व्यक्ति को किसी भी प्रकार का कर नहीं देना पड़ता था। ये इस काल में कर से मुक्त किये गये थे। 'शतपथ ब्राह्मण' [3] में कहा गया है कि ब्राह्मणों से किसी भी प्रकार का कर नहीं लिया जाता था।

1– पंचविंश ब्राह्मण – 6. 1. 6

2– नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति – छा0 उप0 – 4/4/5

3– शतपथ ब्राह्मण – 13/6/2/18

इस प्रकार हम यह भी देखते हैं कि पूर्व वैदिक काल तथा उत्तर वैदिक काल, महाकाव्यकालीन तथा ब्राह्मणकालीन समय में इनकी सामाजिक स्थिति उन्नत थी। यह उसकी विद्वता एवं सर्वोच्चता के कारण था। ब्राह्मण अपनी विद्वता के बल पर समाज को शिक्षित करता था। ब्राह्मण याज्ञिक क्रियाओं के द्वारा व्यक्तियों को धार्मिक बनाता था। यह प्रतिष्ठा देखकर कतिपय लोगों को द्वेष भी होने लगा था क्योंकि ब्राह्मण वसिष्ठ और क्षत्रिय विश्वामित्र की कथा इसी प्रसंग की थी, जिसका पुनः विवेचन करना इष्ट नहीं है। वास्तव में ऋग्वैदिक काल से ही इसकी प्रतिष्ठा बन चुकी थी, जो ब्राह्मण काल तक जमी रही, हॉ बौद्धकाल में कुछ कमी अवश्य हुयी। मगर उसने अपनी बुद्धि और प्रतिभा से समाज में अग्रणी स्थान बना लिया था।

"पंचविंश ब्राह्मण" [1] में यह उल्लेख आया है कि जिस ब्राह्मण का कुल, गोत्र प्रवसादि ज्ञात होता है, उसे आर्षेय कहा जाता है।" ब्राह्मण ग्रन्थों तथा अन्य स्थलों पर ब्राह्मण के विवाह के सम्बन्ध में भी चर्चा की गयी है। ब्राह्मण को प्रत्येक वर्ण से एक–एक पत्नी रखने का अधिकार था, इस प्रकार ब्राह्मण चार पत्नियॉ रख सकता था। यह व्यवस्था वैदिक काल में भी पायी जाती थी।

इस काल में यह भी उल्लेख देखने को मिलता है कि ब्राह्मण को सबके

1– पंचविंश ब्राह्मण – 20/15/9–10

प्रति दयालुता, [1] सज्जनता [2] का व्यवहार करना चाहिए, यज्ञ [3], दान [4] भी करना चाहिए। पुनः यह भी कहा गया है कि ब्राह्मण की प्रतिष्ठा तो विद्वता में ही है। [5]

ब्राह्मण ग्रन्थों में आर्थिक स्थिति का भी वर्णन देखने को मिलता है, इस दृष्टि से भी ब्राह्मणों को विशेषाधिकार प्राप्त थे। दान लेने का अधिकार केवल ब्राह्मणों को ही प्राप्त था, जिसके परिणामस्वरूप वे अधिक से अधिक दान प्राप्त करने का प्रयास करते थे। इन्हें दान प्रदान करना गौरव की बात मानी जाती थी। अनेक ऐसे राजा और धनिक वर्ग के लोग हुए, जिन्होंने ब्राह्मणों को देवता तुल्य मान कर प्रभूत दान दिया था। 'वर्णों' में वही दान प्राप्त करने वाला सुपात्र था, जिसने अपने बौद्धिक और आध्यात्मिक ज्ञान के बल पर यह विशेष स्थिति प्राप्त की थी।'' [6]

ब्राह्मण ग्रन्थों में यह भी विवरण पाया जाता है कि ब्राह्मण के धन को कोई भी ग्रहण नहीं कर सकता था। यहाँ तक कि उसका धन–धान्य राजा के लिए भी अग्राह्य था।

1– शतपथ ब्राह्मण – 2/3/2/12

2– शतपथ ब्राह्मण – 2/3/4/6

3– ऐतरेय ब्राह्मण – 7/19

4– शतपथ ब्राह्मण – 13/1/5/6

5– शतपथ ब्राह्मण –11/6/2–5

6– ताण्ड्य महाब्राह्मण – 13/7/12

एक तरफ हम यह भी देखते हैं कि कभी–कभी परिस्थितियों के कारण व्यक्ति स्वधर्म का पालन न कर सकने के कारण अपना जीवन–यापन नहीं कर सकता था, ऐसे संकट और विपत्ति के समय में उसके लिए वर्णेतर कर्म की व्यवस्था की गयी थी। ब्राह्मणों के लिए भी इस प्रकार की व्यवस्था थी, अगर ब्राह्मण अध्यापन करने, यज्ञ को सम्पन्न कराने और दान प्राप्त करने से अपना और अपने कुटुम्ब का पालन कर सकने में असमर्थ होता था, तो वह क्षत्रिय और वैश्य के कर्म को भी अपना सकता था।

'महाभारत' से विदित भी होता है कि तत्कालीन समाज में ऐसे अनेक ब्राह्मण थे, जो शस्त्रोपजीवी थे तथा अपने क्षत्रिय कर्म से विख्यात थे। इनमें कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा ऐसे ही वीर और पराक्रमी ब्राह्मण थे जो युद्ध कला में विख्यात थे। इसके साथ–साथ वे अन्य वर्णों के कार्यों एवं कर्मो को अपनी जीविका को सुचारू रुप से चलाने के लिए अपना सकते थे। वास्तव में यही आपत्तिकालिक कर्म थे।

''क्षत्रिय'' –

''क्षत्रिय'' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के अनेक स्थलों पर मिलता है। इसके लिए कहीं–कही 'क्षत्र' शब्द का प्रयोग उस काल में प्रायः 'शूरता' और वीरता के अर्थ में लिया जाता था।'' [1] आर्यों के तत्कालीन समाज में क्षत्रिय समूह के रूप

1– ऋग्वेद – 8/35/16–18

में ऐसे शूर वीरों का एक वर्ग बन गया था जो यहाँ के मूल निवासियों से युद्ध करके उनके भूक्षेत्रों पर आधिपत्य स्थापित करता था। ऐसे ही शूर वीर लोग देवताओं और राजाओं के श्रेणी में सम्मिलित किये गये थे। 'राजन्य' शब्द का प्रयोग भी क्षत्रिय वर्ग के लिए प्रयुक्त किया जाता था। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में 'राजन्य' शब्द का वर्णन आया हुआ है।' [1]

ताण्ड्य महाब्राह्मण [2] में कहा गया है कि 'क्षत्रिय' की उत्पत्ति प्रजापति के हृदय और बाहुओं से हुयी थी। चूँकि यह वर्ण भुजाओं से उत्पन्न हुआ है, इसलिए क्षत्रिय को अपने भुजा के बल पर गर्व होता है। क्षत्रिय वर्ग वास्तव में राजकुल से सम्बद्ध था।'' [3] इस वर्ग के सदस्य युद्ध कौशल और प्रशासनिक योग्यता में निपुण थे। उस युग के शासक मात्र राजा ही नहीं थे, अपितु वे उच्चकोटि के शिक्षक, दार्शनिक, विद्वानों के संरक्षक और बौद्धिक गवेषणाओं के सुविज्ञ थे।

ब्राह्मणग्रन्थों के अध्ययन से यह पता चलाता है कि ब्राह्मणों के दार्शनिक पक्ष और तार्किक बुद्धि की स्थिति समझते हुए समानता की और अग्रसर होकर

1— ऋग्वेद – 10/90/2

2— ताण्ड्य ब्राह्मण – 6/1/8

3— अथर्ववेद – 7/103— 'को अस्या वो द्रुहोऽवद्यवत्या उन्नेष्यति क्षत्रियो इच्छन्।

यो यज्ञः कामः क उ पूर्तिकामः को देवेषु वनुतेदीर्घमायुः।।''

दार्शनिक अन्वेषण किया। इसमें यह भी उल्लेख मिलता है कि पौरोहित्य याज्ञिक क्रियायें, दार्शनिक खोजों आदि में पारंगत होकर कुछ क्षत्रिय शासकों ने ब्राह्मणों के एकाधिकार को चुनौती दी थी। "क्षत्रिय विदेह राजा जनक से याज्ञवलक्य ने स्वयं ज्ञान प्राप्त किया था। उनके निर्देशन में अनेक विद्वानों की गोष्ठियाँ आयोजित की जाती थी, जिनमें दर्शनशास्त्र पर भी विचार विनिमय किया जाता था।" [1]

"शतपथ ब्राह्मण" [2] में उल्लेख मिलता है कि धर्मदर्शन के वाद–विवाद में राजा जनक ने ब्राह्मणों को परास्त किया था, इसके बदले ब्राह्मणों द्वारा 'राजबन्धु' की उपाधि प्राप्त की थी। उनके ब्रह्मज्ञान के कारण उन्हें ब्राह्मण कहा गया था। क्षत्रियों को ब्राह्मणकाल में भी कुछ विशेषाधिकार प्राप्त थे। जिनका हम निम्न प्रकार से संक्षेप में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं –

"क्षत्रिय" युद्ध में जीती गयी सारी वस्तुएँ ले लेते थे, जो क्षत्रिययों के विशेषाधिकर को स्प्ष्ट करता है। मनु के अनुसार –

"रथ, घोड़ा, हाथी, क्षत्र, धनधान्य (सब तरह के अन्न), पशु (गौ, भैंस) इत्यादि, स्त्रियों (दासी इत्यादि), सब तरह के द्रव्य (गुड़, नमक आदि और कुप्य) (सोना, चाँदी) के अलावाँ ताँबा, पीतल आदि धातुओं को जो योद्धा जीतकर लाता था, उसी का होता था।" [3]

1– शतपथ ब्राह्मण – 11/6/2/5,

2– शतपथ ब्राह्मण – 11/6/2/5, वैदिक इंडेक्स – प्रथम भाग पृष्ठ 272

3– मनुस्मृति – 7/96; "रथाश्वं हस्तिनं छत्रं धान्यं पशून्स्त्रियः।
सर्वद्रव्याणि कुप्यं च यो यज्ज्यति तस्य तत्।।"

वर्ण के अनुसार क्षत्रियों के लिए दण्ड की व्यवस्था भी क्रमानुसार की गयी थी और शूद्र को सबसे अधिक। इस सम्बन्ध में मनु का कथन है कि ब्राह्मण से कटुवचन कहले वाला क्षत्रिय सौ पण, वैश्य डेढ़ सौ पण या दो सौ पण और शूद्र वध से दण्डनीय होते थे।" [1]

समाज में कुछ ऐसे कार्य थे, जो क्षत्रियों के लिए वर्जित थे। वेद पढ़ाने, यज्ञ करने और दान लेने का अधिकार केवल ब्राह्मणों का था, यद्यपि वैदिक युग के अनेक क्षत्रिय शासको ने पढ़ाने का कार्य किया था। यह विवरण भी पाया जाता है कि क्षत्रिय वेद पढ़ सकते थे, परन्तु पढ़ा नहीं सकते थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि अध्यापन का अधिकार केवल ब्राह्मणों को ही प्राप्त था।

संकट काल में क्षत्रियों के लिए भी यह व्यवस्था की गयी थी कि वे संकट काल में अपने से नीचे वर्ण के क्रम अपना सकते थे क्योंकि कभी–कभी ऐसी स्थिति होती थी कि व्यक्ति अपने वर्ग के कर्म करते हुए भी अपने परिवार का पोषण कर सकने गें असमर्थ होता था। उस समय वह अपनी आजीविका चलाने के लिए दूसरे वर्ग के कार्य करता था। कहीं–कहीं पर कहा गया है, इस निमित्त क्षत्रिय

1– मनुस्मृति – 8–267 – " शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति।

वैश्योऽप्यर्धशतं द्वेवा शूद्रस्तु वधमर्हति।।"

वैश्य कर्म अपना सकता था। इसी प्रकार का वर्णन धर्मसूत्रों तथा धर्मग्रन्थों में भी पाया जाता है।

''मैक्डानेल'' और ''कीथ'' महोदय के विचार से यह उल्लेख इस बात का प्रमाण है, कि क्षत्रिय चारणों के अलग वर्ग का भी, अस्तित्व था। जिनकी कृतियों से महाकाव्य स्वभाविक रूप से विकसित हुआ। [1] ''आदित्य'' [2] ''सोम'' [3] ''प्रजापति'' [4] ''मित्र'' [5] ''वरूण'' [6] एवं ''इन्द्र'' [7] देवताओं की भी क्षत्रियों से तुलना की गयी है। ये दवताओं में क्षत्रिय माने जाते थे। प्राप्त संकेतों से विदित होता है कि इन्द्र, सोम, वरूण, आदित्य पराक्रमी एवं वीर देवता थे।

1– वैदिक इंडेक्स – 1/230

2– ऐतरेय ब्राह्मण – 6/20

3– कौषीतकि ब्राह्मण – 9/5

4– शतपथ ब्राह्मण – 8/2/3/11

5– तैत्तिरीय ब्राह्मण – 2/5/7/4

6– शतपथ ब्राह्मण – 2/5/2/6

गोपथ ब्राह्मण – 2/6/7

7– कौषीतकि ब्राह्मण – 12/8

शतपथ ब्राह्मण – 2/5/2/27

''वैश्य'' –

वैश्य का स्थान समाज में निम्न था। इसे ब्राह्मण और क्षत्रिय के बाद तीसरा स्थान प्राप्त था। इसे ''अनस्य बलिकृत'' भी कहा गया है। वस्तुतः यह कथन इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि वैश्य वर्ण का का स्थान ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ण के बाद ही था। वास्तव में इस वर्ग का प्रमुख कार्य था – पशुपालन तथा अन्नोत्पादन। इनकी सबसे बड़ी इच्छा तो गॉव का मुखिया बनने की होती थी। यज्ञीय क्रियाओं में भी वैश्य का सहयोग आवश्यक माना जाता था, दूसरी ओर यह भी स्पष्ट कहा गया है कि '' वैश्य स्त्री'' के पुत्र का राजा के रूप में कभी भी अभिषेक नहीं होता है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीन वर्गों के घनिष्ठ सम्बन्ध की कामना की गयी थी। इसके साथ ही साथ यह आशा भी व्यक्त की गयी थी कि जो जीव रमणीय अर्थात् उचित आचरण करते थे, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य जैसी उत्तम योनि में जन्म लेते थे। ब्राह्मणग्रन्थों में भी इन तीन वर्णों की पारस्परिक धनिष्ठता की कामना भी हुयी थी। 'वैश्य' के लिए 'अर्थ' शब्द का प्रयोग भी मिलता है। व्यापारिक व्यवस्था और कृषि का समस्त भार उसके ऊपर निर्भर करता था। राज्य और देश की आर्थिक स्थिति उसी के प्रयास से सुदृढ़ होती थी। अर्थसम्बन्धी जितनी भी नीतियॉ होती थी, उनका संचालन वैश्यवर्ग ही करता था। अध्ययन, यजन और दान उसका परम पुनीत कर्त्तव्य था।

''ताण्डय ब्राह्मण' [1] में प्रजापति से वैश्य वर्ण की उत्पत्ति बतलायी गयी है।'' ब्राह्मण साहित्य में देवताओं में भी चातुर्वर्ण्य की कल्पना करते हुए वैश्य देव और मरूतों को वैश्य माना गया है। [2] ब्राह्मण ग्रन्थों में इनके क्रियाकलापों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। इनकी चारीत्रिक विशेषताओं का भी वर्णन इन ग्रन्थों में किया गया है। इनकी समृद्धि किन–किन वस्तुओं पर निर्भर करती थी, इस विषय में भी विस्तृत वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थों में भी आया है, वैसे तो इसका वर्णन पूर्व से लेकर उत्तर वैदिक तथा महाकाव्यों इत्यादि में प्रचुर मात्रा में आया है। इसी विषय में 'ताण्ड्य ब्राह्मण' में कहा गया है 'वैश्य वर्ण की समृद्धि पशुओं पर निर्भर करती थी'। इससे यह तथ्य तो स्पष्ट हो जाता है कि इनका पशुपालन करना प्रमुख व्यवसाय तथा धर्म था।

धार्मिक क्षेत्रों मे भी वैश्यों को अधिकार प्राप्त था, अन्य कालों की भाँति ब्राह्मण ग्रन्थों में इस विषय पर पर्याप्त विवेचन देखने को मिलता है। इनकी उपस्थिति धार्मिक कृत्यों को सम्पन्न करने के समय आवश्यक मानी जाती थी, इससे इनकी धार्मिक भावना का सम्यक् आभास हो जाता है। 'ताण्ड्य ब्राह्मण' में कहा गया है कि धार्मिक क्षेत्र में भी वैश्यों को अधिकार प्राप्त था। वैश्य प्रायः सभी यज्ञों को कर सकता था, वह वर्षाऋतु अग्न्याधान करता था।'

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 18/4/6

2– ताण्ड्य ब्राह्मण – 6/1/10, शतपथ ब्राह्मण – 2/1/3/5

ब्राह्मण ग्रन्थों में स्पष्ट संकेत मिलता है कि अर्थ व्यवस्था का संचालन यही वर्ग करता था, इनके द्वारा ही राज्य को विकास के मार्ग पर लाया जाता था, बिना इनके सहयोग के ये क्रियायें असम्भव थी। सकल राष्ट्र की समृद्धि चूँकि अर्थ व्यवस्था पर ही निर्भर करती है, इसलिए इस क्षेत्र में इनका सहयोग अतुलनीय और प्रत्येक दृष्टि से अपेक्षित भी था। '' ऐतरेय ब्राह्मण' [1] में कहा गया है कि वैश्य के अन्न और धनोपार्जन पर राज्य के सब वर्णों का काम चलता था, इसलिए वैश्य ही राष्ट्र हैं।'' ''ग्रामीण के पद को वैश्य वर्ण ही अलकृंत करता है, ऐसा वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थों मे पाया जाता है।'' [2]

पुनः हम दूसरी तरफ यह भी देखते हैं कि कुछ वस्तुएं ऐसी थी जिन्हें वैश्यों के लिए बेचना वर्जित था। मद्य, मॉस, लोहा और चमड़ा जैसी वस्तुएँ बेचना उनके लिए निषिद्ध किया गया है। यह भी उल्लेख मिलता है कि जो व्यापारी मिलावटी वस्तु बेचते थे तथा साधारण वस्तु को अति उत्तम कह कर बेचने का प्रयास करते थे, वे दण्डित भी किये जाते थे।

''शूद्र''

शूद्र का समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के बाद चौथा स्थान था। शूद्र का प्रधान कार्य परिचारिका वृत्ति थी। यह उस समय की रीति बन गयी थी कि

1– ऐतरेय ब्राह्मण – 6/1/10, शतपथ ब्राह्मण – 2/1/3/5

2– ऐतरेय ब्राह्मण – 8/27, शतपथ ब्राह्मण – 5/3/16

इन्हें भृत्य के रूप में निकाल दिया जाये या रख लिया जाये। यहॉ तक कहा गया है कि शूद्र चाहे कितना ही वैभव से पूर्ण तथा समृद्ध सम्पन्न हो, मगर वह दूसरे का भृत्य होने के अलावां और कुछ नहीं कर सकता। " अन्य तीन वर्णों की भॉति ब्राह्मण ग्रन्थों मे भी यह संकेत मिलता है कि शूद्र की उत्पत्ति प्रजापति के चरणों से हुई।"

शूद्र का प्रधान कर्म अपने से ऊॅचे वर्ण वालों की सेवा करना था। यज्ञ के लिए वह पूर्णतया अयोग्य था। यहॉ तक क़हा है कि यज्ञ स्थल पर उसकी उपस्थिति पूर्णतया वर्जित थी। उसे "असत्य" भी माना गया है। शूद्र स्त्री और आर्य पुरुष के सम्बन्ध का भी वर्णन किया गया मिलता है। ऋग्वेद में केवल एक बार ही इसका उल्लेख आया है और वह भी पुरुषसूक्त में। " इसे विराट पुरुष के पैरों से उत्पन्न मान कर इसके समाज में प्राप्त स्थान का भी विवेचन किया गया है, निश्चय ही इनका स्तर काफी निम्न था।" "ऋग्वैदिककाल" में चारों वर्णों के मध्य मित्रता थी, बन्धुता थी। इस समय जन्म का महत्त्व समाज में नहीं था। वर्गीकरण के ऊॅच–नीच की भावना का भी कोई प्रभाव नहीं था। व्यवसायों को अपनाने की पूर्ण स्वतंत्रता थी।

"जैमिनीय ब्राह्मण" [1] में कहा गया है कि शूद्र की उत्पत्ति प्रजापति के

1– जैमिनिय ब्राह्मण – 1/68–69

चरणों से हुयी है और इसका कोई देवता नहीं होता था। ब्राह्मण ग्रन्थों में एक स्थान पर कहा गया है कि शूद्र शब्द परिवार के दासों के लिए ही नहीं प्रयुक्त हुआ है, अपितु आर्य और अनार्यों के भेद को भी प्रगट करने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। [1]

यद्यपि ऐसे विख्यात और विद्वान ऋषियों के नाम भी मिलते हैं, जो शूद्र से उत्पन्न हुए थे। उदाहरणतया – पराशर ऋषि श्वायक नारी से, व्यास ऋषि धीवर कन्या से, वसिष्ठ ऋषि गणिका से, कपि जाबाल चाण्डाल नारी से, ऋषि मदन पाल नायिक ऋषि से। इसके अलावां ये भी उदाहरण मिलते हैं कि शूद्र ऋषियों द्वारा ज्ञान भी प्राप्त करते थे।

शूद्रों की त्वचा रंग [2] एवं रहन सहन [3] के साथ आर्यों की तुलना ब्राह्मण ग्रन्थ साहित्य से की गयी है। शूद्र शब्द के लिए "असुर" शब्द का प्रयोग भी पाया जाता है। महाभारत में कहा गया है कि उसका प्रमुख धर्म अन्य वर्णों की सेवा करना था, परिचर्यावृत्ति ही उसकी प्रधान वृत्ति थी [4] "तीनों वर्णों के सेवक

1– ताण्ड्य महाब्राह्मण – 5/5/14

2– पंचविंश ब्राह्मण – 5/5/14 –16, शतपथ ब्राह्मण – 6/4/4/9

3– ऐतरेय ब्राह्मण – 7/17, तैत्तिरीय ब्राह्मण – 1/2/6/7

4– महाभारत – 5/132/30–6 "शूद्रं परिचरेच्यं तान्।"

के रूप में उसे समस्त वर्णों का दास माना गया था।'' [1]

कोई भी शूद्र विद्याध्ययन के निमित्त आचार्य के आश्रम में प्रवेश नहीं कर सकता था, अनाधिकार तप करने वाला शूद्र उपेक्षनीय और निन्दनीय होता था। शूद्र वर्ण के ''शाम्बूक'' ने अनाधिकारपूर्वक तप करने की चेष्टा की थी, जिसका राम ने वर्ण धर्म की सुरक्षा के लिए वध कर डाला था। शूद्र अध्ययन–अध्यापन भी नहीं कर सकता था। विदुर ने यह स्वयं स्वीकार किया था कि वे शूद्र होने के कारण शिक्षा प्रदान करने के अधिकारी नहीं हैं।

उक्त विवेचन के बाद हम यह भी देखते हैं कि पुराणों मे शूद्रों के प्रति उदार भावना व्यक्त की गयी है। उन्हें दान करने की अनुमति प्रदान की गयी है तथा इन्द्रिय निग्रह के साथ मोक्ष की प्राप्ति का भी उल्लेख किया गया है किन्तु इस उदार भावना के विपरीत वास्तविक जीवन में उसका स्थान प्रंशसनीय नहीं था। सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में उन्हें एक ओर सूत्रों के माध्यम से अवरूद्ध कर दिया गया था। दूसरी ओर थोड़ी बहुत उदारता दिखलाते हुए उनसे उच्च कार्य करने की आशा व्यक्त की गयी थी।

पुनः हम यह भी देखते हैं कि धीरे–धीरे समाज में शूद्रों के दो वर्गों का विकास होने लगा। एक तो वह वर्ग था जो ब्राह्मणों के निर्देशानुसार विशुद्ध

1– महाभारत, शान्तिपर्व – 60/28''प्रजापतिर्हि वर्णानां दासं शूद्रम कल्पयत।

तस्माच्छूद्रस्य वर्णानां परिचर्या विधीयते।।''

आचरण और धार्मिक क्रिया सम्पादित करता था और दूसरा वह वर्ग था जो इस विशुद्ध आचरण और सात्विक चरित्र से दूर असभ्य, असंस्कार युक्त तथा हीन जीवन व्यतीत करता था।

ब्राह्मण ग्रन्थों के अध्ययन करने पर विदित होता है कि बहुपशुमान और समृद्ध होने पर भी शूद्र को यज्ञ करने का अधिकार नहीं प्राप्त होता था क्योंकि कोई देवता उसके लिए उत्पन्न नहीं हुआ है, इसलिए शूद्र दास के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता।[1] इससे गह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि इस काल में शूद्र को यज्ञीय क्रिया के सम्पादन के लिए पूर्णतया अयोग्य माना जाता था। उसको इससे पूर्णतया वंचित कर दिया गया था। जाति के बन्धन भी उस काल में कठोर थे, ऐसा विवरण प्राप्त होता है। ऐतरेय ब्राह्मण[2] में कहा गया है कि जाति सम्बन्धी विवेचन में शूद्रों को दूसरे का सेवक इच्छानुसार वहिष्कृत एवं बध किये जाने योग्य बतलाया गया है। ताण्ड्य ब्राह्मण[3] में इसे निश्च ही यज्ञ के अयोग्य सिद्ध किया गया है।

शतपथ ब्राह्मण[4] में एक जगह उल्लेख आया है कि उच्च जातियाँ ही सब

1– पंचविंश ब्राह्मण – 6/1/11

2– ऐतरेय ब्राह्मण – 7/29

3– ताण्ड्य ब्राह्मण – 6/1/11

4– शतपथ ब्राह्मण – 2/1/4/2

कुछ हैं, 'अग्निहोत्र' के लिए शूद्र दूध नहीं दूहता था क्योंकि उसकी उत्पत्ति असत् से हुयी। " तैत्तिरीय ब्राह्मण" [1] में शूद्र की उत्पत्ति असत् से मानी जाती है।"

ब्राह्मण ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि शूद्र पूर्णतया द्विजो से निम्न माने जाते थे। उनके लिए ब्राह्मण की सेवा बहुत ही महत्त्व की बात थी। अगर ब्राह्मण की सेवा करने से उनकी आजीविका नहीं चल पाती थी तो धनिक वैश्य की सेवा की करते थे।

इस तरह स्पष्ट है कि यज्ञ को छोड़कर अन्य सभी अवसरों पर शूद्रों को सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त था। वैधानिक दृष्टि से वंचित होते हुए भी क्रमशः स्वतन्त्र व्यक्तियो के रूप में अपना स्थान बना सकने में समर्थ हुए थे। ताण्ड्य ब्राह्मण में उल्लेख है कि ये शूद्र बहुपशुमान और समृद्धशाली बन गये थे, [2] बस विशेषकर याज्ञिक क्रियाओं का उनके लिए विशिष्ट रूप से निषेध की बात कही गयी थी।

प्राचीनकाल में भारत ही नहीं, सम्पूर्ण यूरोप इत्यादि देशों मे भी दास प्रथा का प्रचलन था, सुमेरियन तथा बेबीलोनियन सभ्यताओं में भी दास प्रथा का प्रचलन पाया जाता था। इस तरह उक्त व्याख्या से सामवेदीय ब्राह्मण कालीन वर्ण व्यवस्था का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

1– तैत्तिरीय ब्राह्मण – 3/2/3/9

2– ताण्ड्य ब्राह्मण – 5/1/11

सामवेदीय ब्राह्मणों में निरूपित "संस्कार" –

"संस्कार" शब्द की व्युत्पत्ति सम् उपसर्ग पूर्वक कृ (करना) धातु में घञ् प्रत्यय तथा सुट् के आगम से होती है जिसका अर्थ है "परिष्कार", मनोभाव या स्वभाव का शोधन। जिस प्रकार एक स्वर्णकार किसी हेमपिण्ड को अग्नि मे तपाकर मनोवांक्षित आभूषण निर्मित कर लेता है, उसी प्रकार बालक को पूर्वजन्म एवं वंशानुक्रम से प्राप्त दुर्गुणों को निकाल कर उसमें सद्गुण डालने के प्रयत्न को "संस्कार" कहा गया है। पहले से विद्यमान दुर्गुणों को हटाकर उनके स्थान पर सद्गुणों का आधान करना ही संस्कार है।"[1]

आज हम वैज्ञानिक उपलब्धियों तथा अन्यान्य साधनों के द्वारा देश, समाज को उन्नति एवं समृद्धि के शिखर पर पहुँचाने की योजनाएँ बनाते हैं, उन्हें क्रियान्वित भी करते हैं, परन्तु उनसे अभीप्सित लाभ नहीं उठा पाते। कारण स्पष्ट है कि जिस समाज में व्यक्तियों को ऊपर उठाने की योजनाएँ हम बनाते हैं, उसके अथवा केन्द्रभूत मानव के वैयक्तिक, शारीरिक तथा मानसिक विकास की ओर ध्यान नहीं दे पाते। शारीरिक रूप से दुर्बल और मानसिक रूप से असमर्थ व्यक्ति किसी भी वस्तु का सच्चा उपभोग नहीं कर सकता।

वैदिक मनीषियों ने इस तथ्य को समझा, समाज का ऐश्वर्य से नहीं, उसे शारीरिक एवं मानसिक रूप से उत्कृष्टतर व्यक्ति सौंपकर परिवर्तित करने का

1– "संस्कारो हि गुणान्तराधानमुच्यते" – चरक संहिता

स्वप्न देखा और संस्कार पद्धति को जन्म दिया।

मानव का निर्माण होता है— रजवीर्य से। जिन संस्कारों से युक्त माता—पिता का रजवीर्य होगा, उन्हीं संस्कारों की सन्तान होगी, फिर उसे बदला कैसे जा सकता है। इसपर वैज्ञानिको का मत है। माल्टन, जिमैन प्रभृति विचारकों का कहना है "प्राणी जो कुछ है, वह वंशानुक्रम का ही परिणाम है, उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन सम्भव नहीं है। इसके विपरीत "नेफारव" आदि का विचार है "वंशानुक्रम को भी इच्छित पर्यावरण द्वारा परिवर्तित किया जा सकता है। गोविन्द खुराना का यहाँ तक कहना है कि किसी विशेष के "जीन्स" को प्रजनन तत्त्व में से निकाल कर अभीप्सित गुण के "जीन्स" को आरोपित करके मनचाहे गुण वाली सन्तान उत्पन्न की जा सकती है, आगामी काल में वह दिन अब दूर नहीं जब आवश्यकतानुसार सुकरात, अरस्तू, न्यूटन तथा शेक्सपीयर पैदा किये जा सकते हैं।

प्रचीन मनीषियों ने संस्कार व्यवस्था के माध्यम से पचीस वर्षों में समाज को शारीरिक एवं मानसिक रूप से उत्कृष्टतर नागरिक सुलभ कराने की योजना बनायी थी।

वस्तुतः संस्कारों का सम्बन्ध व्यावाहारिक जीवन से है। संस्कार गर्भ में आने से लेकर मृत्युपर्यन्त जीवित रहने, यशस्वी बनने, बह्मवेत्ता बनने, संसार में विषयोपभोग करने, चिन्तन करने तथा सबसे अन्त में इस संसार से प्रस्थान करने

की वासनामय मध्यबिन्दु के चारों ओर घूमने वाली घटनाओं की निरन्तर श्रृंखला है। महाभारतकार के अनुसार प्रारम्भिक संस्कारों की उपयोगिता इस दृष्टि से तो थी ही कि जन्म लेते समय जो शील स्वभाव बन जाता है, वह जीवन भर बना रहता है।'' [1]

संसकारों का सम्बन्ध मानव जीवन से होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उनका उद्देश्य व्यक्ति के जीवन की रक्षा करना था। सन्तान के प्रति पिता का जो कर्त्तव्य होता है, उसके प्रति ब्राह्मणकालीन पिता जागरूक था। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त तक के समस्त संस्कारों की विधियों पर ध्यान देने से विदित होता है कि उनका उद्देश्य बाह्य उपद्रवों, व्यभिचारों इत्यादि से व्यक्ति की रक्षा करना था।

ब्राह्मण काल में संस्कारों का संस्कृतिक प्रयोजन भी था। 'उपनयन' जैसे महत्त्वपूर्ण संस्कार से सुसंस्कृत होकर व्यक्ति सामाजिक अधिकारों को पाने का अधिकारी होता था, एवं 'द्विज' कहलाता था। संस्कार से हीन व्यक्ति 'व्रात्य' कहलाता था। [2] यद्यपि संस्कार बाह्य स्वरूप से व्यवहारिक प्रतीत होते हैं, परन्तु इनका मुख्य प्रयोजन आध्यात्मिक है। संस्कारों द्वारा सुसंस्कृत व्यक्ति दिव्य प्रभावों से युक्त हो जाता था।

1– महाभारत वनपर्व – 8/11

2– महाभारत वनपर्व – 8/11; ताण्डय ब्राह्मण –17/1–4

ब्राह्मण साहित्य में अनेक संकेत मिलते हैं कि यज्ञ के प्रारम्भ में जो दीक्षा ली जाती थी, उससे यजमान दिव्य प्रभाव से युक्त हो जाता था। इस प्रकार वह यज्ञ के योग्य हो जाता था। वाह्य पापात्माएँ राक्षसादि उसका अनिष्ट नहीं कर सकते थे। यज्ञ की समाप्ति पर दीक्षित स्नान करता था, जिसके द्वारा वह अपने को दिव्य प्रभावों से युक्त करता था। ऐसा करने से वह भौतिक जगत के योग्य हो जाता था।''

संस्कार मुख्यतः गृह्यसूत्रों, धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों का वर्ण्य विषय है। गृह्यसूत्रों में 'संस्कार' शब्द का प्रयोग अपने वास्तविक अर्थ में उपलब्ध नहीं होता है। गृह्यसूत्रों में साधारणतः विवाह से लेकर समावर्तन पर्यन्त दैहिक संस्कारों का वर्णन किया गया है। 'आश्वलायन' गृह्ययसूत्र में विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, सीमान्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, चूड़ाकरण, अन्नप्राशन, उपनयन, समावर्तन एवं अन्त्येष्टि इन ग्यारह संस्कारों का वर्णन मिलता है। गौतम धर्मसूत्र में चालीस संस्कारों का उल्लेख आया है।

''मनुस्मृति'' [1] में कहा गया है कि गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्यन्त निम्न तेरह स्मार्त या यथार्थ संस्कार होते हैं – 1. गर्भाधान, 2. पुंसवन, 3. सीमान्तोनयन, 4. जातकर्म, 5. नामधेय, 6. निष्क्रमण, 7. अन्नप्रासन, 8. चूड़ाकर्म, 9. उपनयन, 10. केशान्त, 11. समावर्तन, 12. विवाह, 13. श्मशान।''

1– मनुस्मृति – 2/6/6

''पंचविंश'' ब्राह्मण में [1] आया है कि व्रत्य एक खानाबदोस जाति के समान प्रतीत होता है। परन्तु अन्यत्र तैत्तिरीय ब्राह्मण में स्पष्टतः उसे शास्त्रीय संस्कारों से विहीन व्यक्ति माना गया है। ब्राह्मण साहित्य में उपलब्ध संकेतो से यह विदित होता है के 'व्रात्यस्तोम' एक ऐसा विशिष्ट यज्ञ था, जिसको करके असंस्कृत व्रात्य पुनः शुद्ध होते थे।

ब्राह्मण साहित्य में संकेत मिलता है कि जन्म से पूर्व ही गर्भाधान, पुंसवन इत्यादि संस्कार किये जाते थे। उत्पन्न बालक पर तो अनेकों संस्कारों का विधान है। यहॉ पर उपलब्ध संकेतो के अनुसार तत्कालीन प्रचलित संस्कारों पर विचार किया जायेगा। उक्त संक्षेप विवेचन के बाद संस्कारों का विवेचन किया जायेगा, क्योंकि शोध का मुख्य विषय वस्तु सांस्कृतिक अध्ययन ही है, जो निम्नवत है –

गर्भाधान संस्कार –

प्रकृतिलभ्य मूल प्रवृत्ति काम की पूर्ति हेतु स्त्री–पुरुष का समागम सर्वथा स्वाभाविक और नितान्त वैयक्तिक व्यवहार है, परन्तु स्त्री पुरुष का मिलना काम–क्रीड़ा मात्र नहीं है। इसके परिणामस्वरूप एक शिशु का जन्म भी होता है, जो आगे चलकर समाज का कर्णधार बनता है। यदि वह अयोग्य हुआ तो समाज के लिए अभिशाप होगा। इस प्रकार सन्तानोपत्ति के बाद जिन समस्याओं का

1– पंचविंश ब्राह्मण – 17/1–4

सामना करना अवश्यम्भावी था, उनका बीज पड़ने के समय ही प्राचीन विचारक उन्हें हल कर लेना चाहते थे। यही कारण है कि उन्होंने गर्भाधान को वैयक्तिक क्रिया न मानकर सामाजिक तथा धार्मिक संस्कार बना दिया थां। गर्भाधान के समय शरीर तथा अवस्था का सन्तान पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य ही इस संसार का मूल है। "अभिमन्यु", "अष्टावक्र" तथा नैपोलियन आदि की जीवन गाथाओं से उक्त तथ्य की पुष्टि होती है। आचार्य सुश्रुत का कहना है "जिस प्रकार 'ऋतु' 'क्षेत्र' 'अम्बुज' और 'बीज' इन चारों के विधि पूर्वक मिलने से अंकुर पैदा होता है, उसी प्रकार स्त्री–पुरुष विधि पूर्वक संयोग से सन्तान का जन्म होता है।"

"मनुस्मृति' में कहा गया है कि 'युग्म' रात्रियों में जैसे 6वीं, 8वीं इत्यादि के गर्भाधान से पुत्र और 'अयुग्म' रात्रियों 5वी. तथा 9वीं आदि में गर्भाधान करने से पुत्री उत्पन्न होती है अथवा अधिक वीर्य होने से पुत्र और अधिक रज होने से कन्या होती है। हॉ इन विचारों को सर्वथा वैज्ञानिक समर्थन तो नहीं दिया जा सकता है, परन्तु संस्कार को धार्मिक रूप देने में यह मान्यता पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है।

ब्राह्मणकाल में गर्भाधान के समय पात्र एवं काल का विशेष विचार रखा जाता था। योनि के अतिरिक्त स्थान पर वीर्य–सिंचन पाप माना जाता था। योनि के अतिरिक्त स्थान पर वीर्य सिंचन पाप करने वाले को प्रायश्चित करना पड़ता

था परन्तु स्त्रीगमन का भी ब्राह्मण साहित्य में दृढ़तापूर्वक निषेध किया गया है। जैमिनीय ब्राह्मण के अनुसार पुत्र सम्बन्धी इच्छा होने पर लोग अत्रि, चतुरात्र, अहीन याग का अनुष्ठान करते थे।[1] गुरुपत्नी के साथ समागम अत्यन्त निकृष्ट माना गया है।[2] मनु ने यह स्पष्टरूप से निर्दिष्ट किया है कि ऋतु काल मे मास की कुछ तिथियॉ गर्भाधान के लिए निषिद्ध थी – 18वीं, 14वीं, 15वीं एवं 30वीं और सम्पूर्ण पर्व विशेषतया छोड़ दिये गये हैं। इस प्रकार अकाल गमन करने वाले की निन्दा की गयी है, एवं वह प्रायश्चित का भागी होता था।[3]

पुंसवन संस्कार –

पुंसवन संस्कार के दो अर्थ हैं – एक तो यह कि जो सन्तान हो, वह पुत्र ही हो, कन्या न हो तथा दूसरा अर्थ है कि सन्तान पुरूषत्व (सामर्थ्य) युक्त हो, चाहे वह पुत्र हो या पुत्री। वैदिक संस्कृति में पुत्र–पुत्री की सामाजिक स्थिति में कोई भेद नहीं था तथा गर्भ में आ जाने के बाद इच्छानुसार पुत्र या पुत्री को उत्पन्न नहीं किया जा सकता। इसलिए पुंसवन का अर्थ 'पौरुषयुक्त संतान' करना ही युक्त है।

यह संस्कार गर्भाधान के दूसरे–तीसरे महीने में गर्भधारण का निश्चय हो

1– जैमिनीय ब्राह्मण – 2/281

2– सामविधान ब्राह्मण – 1/7/11

3– सामविधान ब्राह्मण – 1/6/1/2

जाने के बाद किया जाता है। इस प्रकार के संस्कार के प्रमुख कृत्य हैं – माता की असावधानी से गर्भपात रोकने के लिए तथा समुचित विकास के लिए गर्भिणी के दक्षिणी नासापुट में वटवृक्ष की छाल या उसकी पत्ती का रस सुंघाना तथा अन्य पुष्ट गडुच, जो ब्राह्मी औषधि है।

''सीमान्तोन्नयन संस्कार''–

हिन्दू शास्त्रकारों के अनुसार यह संस्कार गर्भ के चौथे महीने मे आयोजित किया जाता था। इसे इस तरह ''चतुर्थे मासे सीमन्तोन्नयनम्'' स्पष्ट किया जाता था। इसे सीमन्तोन्नयन संस्कार इसलिए कहा गया कि इसकी सम्पन्नता में गर्भिणी स्त्री के केशों (सीमन्त) को ऊपर (उन्नयन) उठाया जाता था। ऐसा विश्वास था कि जब स्त्री गर्भिणीं होती थी, तब उस पर बहुत विघ्न बाधाएं आती हैं, जो उसे डराकर गर्भ का विनाश कर देती हैं। इसी की रक्षार्थ सीमान्तोनयन किया गया। इस संस्कार में पति अपने हॉथ से पत्नी के केशों में सुगन्धित तेल डालता है और सवांरता है। आयुर्वेद में इसे 6वें अथवा 8वें महीने में भी किया जा सकता है।

''कुल मिलाकर इसका मूलमन्त्र तो यह है कि जितना अधिक मॉ के मानसिक विकास पर ध्यान दिया जायेगा उतना ही अधिक बच्चे का मानसिक

विकास होगा।" [1]

इस संस्कार का मुख्य प्रयोजन गर्भिणी स्त्री को यथा सम्भव प्रसन्न रखना था। इन तीनो ही जन्म से पूर्व के संस्कार गर्भक्षेत्र की शुद्धि के लिए किये जाते थे एवं प्रथम गर्भ के धारण काल में किए जाते थे। फिर भी वर्तमान समय में इन तीनों का लोप हो गया है।

"जातकर्म संस्कार" –

पुत्र जन्म के समय जातकर्म संस्कार किया जाता था। मनु के अनुसार नाभिछेदन से पहले यह संस्कार किया जाता था। जन्म के पहले बच्चा माँ के उदर में पानी से भरी एक थैली में होता है। उस थैली का मलिन जल मुँह में, नाक में तथा कान में न चला जाये, इसलिए प्रकृति इसके ये सब श्लेष्मा से बन्द किए रहता है। साथ ही थैली के जल के बुरे प्रभाव से बचने के लिए त्वचा पर एक स्निग्ध लेप लगा होता है। पेट में बच्चे का पूरा–पूरा पोषण नाभि द्वारा माता से सीधा पहुँचता है। परन्तु जन्म के बाद यह सम्पर्क टूट जाता है। माता से पोषण तत्त्व अनायास प्राप्त नहीं हो सकता, इसलिए शिशु जन्म होते ही शिशु का मुख और नासिका साफ की जाती है ताकि वह दूध पी सके और सांस ले सके। स्निग्ध लेप को हटाने के लिए स्नान कराया जाता है। अलबीरूनी ने कहा है–

1– "यादृशं भजन्ते नारी सूतं सूते तथा विधम्।

तस्मात् प्रजा विशुद्धयर्थं स्त्रियं रक्षेत् प्रयत्नतः।।" –'मनुस्मृति।"

''पत्नी के द्वारा पुत्र प्रसव करने के बाद और माँ द्वारा उसका पोषण प्रारम्भ करने के बीच ''जातकर्म'' नामक तीसरा संस्कार किया जाता है।'' ब्राह्मणों में भी इसका विधान पाया जाता है।

नामकरण संस्कार –

हिन्दू समाज में सन्तान को नाम प्रदान करना भी एक संस्कार माना गया है। संज्ञा के अभाव में कोई व्यवहार ही नहीं चल सकता, इसलिए नामकरण जरूरी ही नहीं, एक अपरिहार्य प्रक्रिया है। मनु के अनुसार दसवें या बारहवें दिन शुभ दिन, तिथि, नक्षत्र और मुहूर्त में नामकरण संस्कार का आयोजन करना चाहिए। इसे संस्कारों में रखने का उद्देश्य यह है कि माता–पिता ने शिशु जन्म से पूर्व उसे जो–जो बनाने की कल्पनायें की हों, उसी के अनुरूप एक नाम दे सकें।

बार–बार उच्चरित शब्दों का मन और शरीर पर प्रभाव पड़ता है। इसलिए आने जाने वाले सभी व्यक्ति उस नवागत प्राणी को जब नाम से पुकारेगें तो उसके हृदय तथा मस्तिष्क को उस नाम के अर्थ के अनुकुल रूप में प्रभावित कर रहे होगें। कुल मिलाकर यदि देखा जाये तो यही इस संस्कार की मूल भावना है। नाम उच्च भावना को जागृत करने वाला होना चाहिए। चूँकि माता दस दिन तक प्रसूतिका गृह में रहती है, इसलिए इस संस्कार का समय जन्म के बाद

ग्यारहवॉ दिन बतलाया गया है। मनु के अनुसार स्त्रियों का नाम सुखपूर्वक उच्चारण करने योग्य, अक्रूर तथा स्पष्ट अर्थ वाला, मनोहर, मंगल सूचक, अन्त में दीर्घ अक्षर वाला और आशीर्वाद से युक्त अर्थ वाला होना चाहिए।" [1]

ब्राह्मण साहित्य में पदार्थों तथा व्यक्तियों का नाम बहुतायत से मिलता है, ये नाम पैतृक, मातृक और लौकिक सभी प्रकार के होते हैं। उदाहरण के लिए काक्षीवन्त, ओशिज। इसमें प्रथम लौकिक नाम है और दूसरा माता के नाम "उशिज" से उत्पन्न हुआ है। [2] इसके अतिरिक्त गृह्यसूत्रों, स्मृतियों आदि में नामकरण का वर्णन किया गया है। बृहस्पति ने कहा है " शिशु का नामकरण जन्म से दसवें दिन, बारहवें, तेरहवें, सोलहवें, उन्नीसवें अथवा बत्तीसवें दिन सम्पन्न करने का विधान है।

"ताण्ड्य ब्राह्मण" [3] के अनुसार – देश, काल, नदी इत्यादि के नाम पर भी व्यक्तियों के नाम रखे जाते थे, जैसे "कौशम्बेय" "वैदेह", "पांचाल", "कौरव" इत्यादि। पुत्रियों के नाम अन्त में "आ"। "दा" लगता था जैसे 'वसुदा, यशोदा, नर्मदा, पुष्पा आदि। नदियों और नक्षत्रों के नाम पर भी पुत्रियों के नाम रखे जाते थे।

1– स्त्रीणां सुखोद्यमक्रूरं विष्पष्टार्थं मनोहरम्।
मंगल्यं दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत्।। – "मनुस्मृति – 2/33"

2– ताण्ड्य महाब्राह्मण – 14/11/17

3– पंचविंश ब्राह्मण – 8/4–8

''निष्क्रमणसंस्कार'' –

निष्क्रमण का अर्थ है – बाहर निकलना। जन्म से एक निश्चित अवधि के बाद जब सन्तान को पहली बार घर से बाहर निकाला जाता था, तब वह निष्क्रमण कहा जाता था। शरीर तथा मन के समुचित विकास में शुद्ध वायु और सूर्य का प्रकाश जितना आवश्यक है, उतना कुछ अन्य नहीं। सूर्य की रश्मियों से ''विटामिन डी'' की प्राप्ति द्वारा बच्चे में कैल्सियम तथा फासफोरस को समाहित करने के उद्देश्य से निष्क्रमण को संस्कारों के अन्तर्गत रखा गया है। इसका समय दूसरा या चौथा माह अच्छा होता है।

''अन्नप्राशन संस्कार'' –

अन्नप्राशन का अर्थ है –जीवन में सर्वप्रथम अन्न को खाना। पॉचवें माह के बाद शिशु अन्न खाने लायक हो जाता है। इस संस्कार के पूर्व तक शिशु मॉ और गाय के दूध पर पलता है। जब मॉ को दूध कम होने लगता है तो पौष्टिक आहार की आवश्यकता पड़ती है, अतः अन्नप्राशन संस्कार के द्वारा बच्चे को सर्वप्रथम भोजन ग्रहण कराया जाता है।

मुण्डनसंस्कार –

इसे चौल या चूड़ाकरण संस्कार भी कहा जाता है। शिशु का बाल जब सर्वप्रथम काटने का आयोजन किया जाता था, तब इस संस्कार को सम्पन्न किया जाता था। वास्तव में 'चूड़ा' का अर्थ है चुंडी अर्थात् शिखा। इसमें शिखा

को छोड़कर गर्भकाल के सिर के सभी बाल और नख काट दिये जाते थे। ऐसा माना जा रहा है कि चूड़ाकरण से दीर्घायु तथा कल्याण की उपलब्धि होती है। अगर इसे सम्पन्न न किया जाए तो आयु घटती है। "मनु के अनुसार सभी द्विजाति बालकों का मुण्डन संस्कार वेद और धर्म सम्मत रूप में पहले या तीसरे वर्ष में कराया जाता था।" [1]

हिन्दू समाज में आज भी मुण्डन संस्कार का आयोजन बहुत ही लगन और प्रसन्नता पूर्वक किया जाता है तथा ब्राह्मणों और निर्धनों को भोजन कराया जाता है तथा दान दिया जाता है। इस संस्कार को आयोजित करने के मूल में सम्भवतः शरीर की स्वच्छता और पवित्रता से बालक का परिचय कराना था, ताकि वह भविष्य में अपने शरीर को स्वच्छ रख सके। यही विवरण ब्राह्मणों में कहीं –कही पाया जाता है।

"कर्णभेदन" –

इसे कर्ण छेदन संस्कार भी कहा जाता है। यह सन्तान के जन्म के सातवें महीने आयोजित किया जाता था। कभी–कभी तीसरे या पॉचवें माह में आयोजित

1– "चूड़ाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः।

प्रथमेशब्दे तृतीये वा कर्त्तव्यश्रुति चोदनात्।। –"मनुस्मृति"– 2/35

करने का विधान पाया जाता हैं। यह व्यवस्था वैदिक कालीन है। [1] इस संस्कार को कब किया जाय, इस सम्बन्ध में विभिन्न मत पाये जाते हैं। अलबीरूनी ने लिखा है "सातवें या आठवें माह में कर्णभेदन संस्कार होता है।" [2]

"विद्यारम्भ संस्कार" –

सन्तान की अवस्था जब पॉच वर्ष की हो जाती थी, तब उसे शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की जाती थी। पहले पहल बच्चे द्वारा वर्ण और अक्षर को शिखा और पढ़ा जाना विद्याारम्भ संस्कार कहा जाता था। यह संस्कार प्रायः चौल संस्कार के बाद ही किया जाता था, यह संस्कार सन्तान के जन्म के पॉचवें अथवा उपनयन संस्कार के पूर्व सम्पादित किया जाता था। शुभ मुहूर्त में शिक्षक द्वारा पट्टी पर 'ओम्" "स्वस्तिक" के साथ वर्णमाला लिखकर बालक से अक्षर प्रारम्भ कराया जाता था।

"उपनयन संस्कार"–

उपनयन का अर्थ है–गुरु के समीप ले जाना। इस प्रकार यह संस्कार शिक्षा के मन्दिर में प्रवेश करने का द्वार है। इसका मुख्य कृत्य है – यज्ञोपवीत धारण करना जिसमें तीन–तीन धागे होते हैं जो क्रमशः ऋषि ऋण, पितृ ऋण और देव ऋण के सूचक हैं। यह इतना महत्त्वपूर्ण संस्कार है कि इसी के बाद

1– अथर्ववेद – 6

2– ग्यारहवीं सदी का भारत – पृष्ठ 224

''द्विज'' की संज्ञा मिलती है। मनु स्मृति में कहा गया है कि व्यक्ति जन्म से शूद्र होता है, संस्कारों से द्विज बनता है। [1]

जिनका यह संस्कार नहीं होता था, वे ''पतित' माने जाते थे। ब्राह्मणों में कहा गया है कि जिस दिन बालक का 'उपनयन' होता है, उससे तीन दिन पहले से अथवा एक दिन पहले से उसे व्रत रखना होता है। पंचविंश ब्राह्मण [2] में कहा गया है – उसकाल में ''उपनयन' जैसे महत्त्वपूर्ण संस्कारों का एक सांस्कृतिक प्रायोजन भी था। उपनयन जैसे महत्त्वपूर्ण संस्कार से सुसंस्कृत होकर व्यक्ति सामाजिक अधिकारों को पाने का अधिकारी होता था एवं वह ''द्विज 'कहलाता था तथा संस्कार से हीन व्यक्ति 'व्रात्य' कहलाता था।''

ताण्ड्य ब्राह्मण में जो उल्लेख आया है कि जिस व्यक्ति का उपनयन नामक संस्कार नहीं किया जाता था, वे 'व्रात्य' होते थे, इसके लिए संस्कार का विधान इस ब्राह्मण ग्रन्थ के अन्तर्गत भी देखने को मिलता है। इसके साथ अन्य ब्राह्मणों में भी यह विधान पाया जाता है। 'उपनयन' के लिए –'यज्ञोपवीत' शब्द का भी विवरण मिलता है जिसका अर्थ है – यज्ञ का उपवीत। 'गौतम' और 'मनु' ने ब्राह्मणकाल का गर्भ से आठवें वर्ष में, क्षत्रिय का गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में और

1– ''जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात द्विजमुच्यते'' – मनुस्मृति

2– पंचविंश ब्राह्मण– 17/1–4

वैश्य बालक का बारहवें वर्ष में यज्ञोपवीत संस्कार को करने का विधान बताया है।" [1]

इस संस्कार के अन्तर्गत बालक को स्नान कराकर कौपीन (लगोंटी) धारण करने के लिए दी जाती थी। स्नान से उसका मन और शरीर शुद्ध होता था। आचार्य उसके कटि के चारों ओर मेखला बांधता था तथा उसे उपवीत धारण करने के लिए दिया जाता था। यह सम्पूर्ण क्रिया धर्म शास्त्रीय आधार पर मंत्रो से सम्पन्न की जाती थी। उसे सूर्य का दर्शन कराया जाता था, जो विद्यार्थी की कर्त्तव्यपरायणता का प्रतीक होता था। ब्राह्मणों में उदाहरण मिलता है कि व्रात्य आर्येतर जातियां हैं।" [2] इससे स्पष्ट है कि संस्कारो से हीन व्यक्ति भी 'व्रात्यों' की श्रेणी में आ जाते थे, वह व्रात्य संस्कार को सम्पन्न कराने के बाद ही शामिल किये जाते थे।

"समावर्तन संस्कार" –

शिक्षा की समाप्ति के बाद जब ब्रह्मचारी अपने गृह की ओर प्रस्थान करता था, तब यह संस्कार सम्पादित किया जाता था। इस संस्कार को सम्पादित करने के लिए कोई निश्चित आयु निर्धारित नहीं की गयी थी अर्थात् इसकी अवधि तभी मानी जाती थी, जबकि ब्रह्मचारी वेद का अध्ययन पूर्ण कर लेता था। इस संस्कार का शाब्दिक अर्थ है –गुरुकुल से शिक्षा ग्रहण करने के बाद घर लौटना।

1– गौतम धर्मसूत्र – 1/6/12, मनुस्मृति – 2/36

2– पंचविंश ब्राह्मण – 17/1–4

प्राचीनकाल में जब विद्यार्थी गुरु के निकट रह कर अपनी शिक्षा पूर्ण कर लेता था, तब उसका यह संस्कार सम्पन्न किया जाता था, यह संस्कार विद्यार्थी की शिक्षा की पूर्णता का प्रतीक था।

विद्यार्थी अपने आचार्य का आशीर्वाद और अनुमति प्राप्त करके घर की ओर लौटता था। यह सम्पूर्ण समारोह समावर्तन संस्कार कहा जाता था।

"विवाह संस्कार" –

यह संस्कार समस्त संस्कारों मे महत्त्वपूर्ण माना गया है क्योंकि इससे व्यक्ति की नई सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति की शुरूआत होती है। व्यक्ति का गृहस्थ आश्रम में प्रवेश इसी संस्कार से होता है। इससे मनुष्य सामाजिक हो जाता है तथा उसकी वैक्तिक स्थिति समाप्त हो जाती है। परिवार तथा समाज के प्रति उसके नये दायित्व प्रारम्भ हो जाते हैं। वैदिक काल तथा ब्राह्मण काल में विवाह को अनुपम महत्ता दी जाती थी। वास्तव में इसके अभाव में व्यक्ति निस्तेज माना जाता था। विवाह के अन्तर्गत वर–वधू की विभिन्न योग्यताएं, गुण–गोत्र और वर्णादि पर विचार किया जाता था। विवाह क्रिया की सम्पन्नता के समय वाग्दान, वर वरण, कन्या दान, विवाह होम, पाणिग्रहण, हृदयस्पर्श, सूर्यावलोकन, ध्रुवदर्शन आदि का विधान किया गया था। ब्राह्मणों मे भी विवाह सम्बन्धी विधान पाया जाता है। "पंचविंश ब्राह्मण" [1] में देव विवाह के किये जाने

1– पंचविंश ब्राह्मण– 7/10/1–4

का संकेत पाया जाता है।''

विवाह के उद्‌देश्यों में वंशवृद्धि मुख्य उद्‌देश्य था। वस्तुतः धार्मिक और सामाजिक कर्त्तव्यो का निर्वाह भी इसी के माध्यम से सम्भव था। यह एक सामाजिक बन्धन था जिसे तोड़ा नहीं जा सकता था। पति–पत्नि को आजन्म एक साथ रहने के लिए बचनबद्ध किया जाता था। व्यक्ति धार्मिक उत्तर दायित्त्व का निर्वाह करता था। इस समय दक्षिणा का भी विधान पाया जाता है। ब्राह्मणों में कहा गया है 'ब्राह्मण को दक्षिणा रूप में चमस देना चाहिए'' [1] पंचविंश ब्राह्मण में गिरिक्षीत औच्चामन्यव है'' यह विधान पाया जाता है।

''ताण्ड्य ब्राह्मण'' [2] में ''वत्स्यऋषि'' के सम्बन्ध में कथन है कि मेघातिथि नामक अपने एक प्रतिद्वन्दी के सम्मुख अपने उत्पत्ति की पवित्रता को सिद्ध करने के लिए उन्होंने सफलता पूर्वक अग्निपरीक्षा दी थी।''

''अन्त्येष्टि संस्कार''–

यह मनुष्य के जीवन का अन्तिम संस्कार है। यह संस्कार मनुष्य के मरने पर जब पार्थिव शरीर की दाह क्रिया की जाती थी, तब सम्पन्न किया जाता था। इसके आगे उसके शरीर के लिए कोई अन्य संस्कार नहीं बचता है। चूँकि व्यक्ति की आयु 100 वर्ष मानी गयी है, इसलिए यह संस्कार 100 वर्ष बाद माना जा

1– पंचविंश ब्राह्मण– 18/2/12

2– ताण्ड्य ब्राह्मण – 14/6/7–6

सकता है परन्तु मृत्युकाल निश्चित न होने के कारण इसके काल का निर्धारण नहीं किया जा सकता।

"ताण्ड्य ब्राह्मण" [1] में कहा गया है कि यदि किसी दीक्षित व्यक्ति की दीक्षाकाल में देहान्त हो जाता है तो उसका अन्त्येष्टि संस्कार करके उसकी अस्थियों को ठण्डी हो जाने पर एकत्र करके रख देते थे, और उसके किसी अन्न वंशज पुत्र पौत्रादिक को दीक्षित करके यज्ञ को पूर्ण करते थे।" "पंचविंश ब्राह्मण" [2] में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि जिन लोगों की पारिवारिक या याज्ञिक संस्था के दीक्षितों के मध्य देहान्त हो जाता था, तो वे लोग अपवित्रता के भागी होते थे। इसलिए प्रायश्चितस्वरूप अग्नि की प्रार्थना की जाती थी एवं जीवित व्यक्तियों के दीर्घायु की कामना की जाती थी।

सामवेदीय ब्राह्मण कालीन राजनैतिक स्थिति –

ताण्ड्य ब्राह्मण में राजनैतिक दृष्टि से जो तत्त्व प्राप्त होतें हैं, उनसे ज्ञात होता है कि सामान्यतः उस युग में राज्य–व्यवस्था राजन्यवर्ग के हॉथ में थी। ऐतरेयादि अन्य ब्राह्मणों के समान 'एकराट्' की अवधारणा ताण्ड्य ब्राह्मण में भी प्राप्त होती है। समुद्रपर्यन्त पृथ्वीपर स्वामित्व की आंकाक्षा स्वाभाविक रूप से

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 9/8/1

2– पंचविंश ब्राह्मण– 6/10/1–2

क्षत्रिय वर्ग में विद्यमान प्रतीत होते हैं। एतदर्थ तथा सार्वभौम पद की प्राप्ति के निमित्त वाजपेय, राजसूय, अश्वमेघादि यज्ञों की लोकप्रियता राजन्यवर्ग में साम्राज्यवादी मनोवृत्ति को विद्योतित करती है। ताण्ड्यगत चित्ररथ कापेय को द्विरात्र यज्ञ के द्वारा एकक्षत्रपतित्व की उपलब्धि का उल्लेख इसी दिशा में है। [1]

ऋग्वेदकालीन "समिति" नाम्नी संस्था, जिसकी प्रतीती डॉ0 काशी प्रसाद जायसवाल सदृश विद्वानों नें राष्ट्रीय महासभा के रूप में की है, [2] ब्राह्मण युग में अधिक प्रभावी नहीं दिखती। छान्दोग्य उपनिषद में पंचालों की समिति का उल्लेख अवश्य है, जहाँ विद्वान ब्राह्मणों के साथ समुपस्थिति राजा प्रवाहण जैबलि आरूणेय श्वेतकेतु से पाँच प्रश्न पूछते हुए अंकित है। [3] डॉ0 जायसवाल इस स्थल पर भी "समिति"शब्द से राष्ट्रीय सभा का अर्थ ग्रहण करने के पक्षधर हैं [4] , किन्तु औचित्यपूर्ण नहीं प्रतीत होता। इस सन्दर्भ में दो तथ्य उल्लेखनीय हैं –

1– इस समिति में वैश्यों और शूद्रों का कोई प्रतिनिधित्व नहीं हैं।

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 20/12/4

2– हिन्दू पॉलिटी (हिन्दू अनुवाद, नागरीय प्रचारिणी सभा, काशी), भाग– 1, पृष्ठ – 12

3– छान्दोग्योपनिषद – 5/3

4– हिन्दू पॉलिटी, भाग – 1 पृष्ठ – 13

2– चर्चा के विषय सामाजिक तथा राजनैतिक महत्त्व के न होकर आध्यात्मिक दृष्टि से उपयोगी है।

अतएव इसे राष्ट्रीय महासभा न मान कर राजसभा मानना ही उपयुक्त प्रतीत होता है। तात्पर्य यह है कि सामवेदीय ब्राह्मणों के रचनाकाल में राजतन्त्रात्मक शासन पद्धति दृढ़ता से बद्धमूल होती हुयी दिखलायी देती है।

ताण्ड्य में एक स्थल पर अपराधी राजा को प्रजा के द्वारा पदच्युत करने का उल्लेख है। [1]

शासन–व्यवस्था में राजा के अतिरिक्त अन्य आठ व्यक्तियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका का उल्लेख है–

"अष्टौ वै वीरा राष्ट्रं समुद्यच्छन्ति राजभ्राता च राजपुत्रश्च पुरोहितश्च महिषी च सूतश्च ग्रामणी च क्षत्ता च संग्रहीता च । एते वै वीरा राष्ट्रं समुद्यच्छन्ति।" [2]

इनमें से 'क्षत्ता' शब्द यष्टिधारी सैनिकों और 'संग्रहीता' भाण्डागार के पालक के अर्थ में प्रयुक्त है। इससे ज्ञात होता है कि राज्य का सर्वोच्च अधिकारी यदि राजा था, तो 'ग्रामणी' (ग्राम प्रधान) प्रशासन की लघुतम इकाई का प्रतिनिधित्व करता था।

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 2/10/4

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 19/1/4

हिन्दू राज्य–प्रणाली में, परवर्त्तीकाल में जिस अष्ट प्रधान के विचार को बल मिला और जिसके कारण इतिहासकारों ने हिन्दू राज्य–पद्धति के मध्यकालिक पूरोवर्तक शिवाजी की अत्यन्त प्रंशसा की है, उसका मूल ताण्ड्य ब्राह्मण की उपयुक्त 'अष्टवीर योजना' में निहित प्रतीत होता है।

षष्ठ अध्याय

"सामवेदीय ब्राह्मणों में प्राप्त"

(1) धार्मिक स्थिति

(2) आचार– दर्शन

(3) आश्रम व्यवस्था

सामवेदीय ब्राह्मणों मे प्राप्त धार्मिक स्थिति–

ब्राह्मण युग में यज्ञ का सम्पादन ही धर्म का मुख्य ध्येय था। सच तो यह है कि यज्ञ के सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुष्ठानों के लिए ब्राह्मण ग्रन्थों में बड़े विस्तार के साथ वर्णन प्राप्त होता है तथा इन विधियों के लिए पूर्ण आग्रह भी दिखाई पड़ता है। अग्नि की स्थापना कब करनी चाहिए ? कैसे करनी चाहिए ? घी की आहुति वेदी में कहाँ गिरे ? वेदि पर बिछाने के लिए दर्श का अग्रभाग पूरब की ओर रहता है या उत्तर की ओर, आदि का विवेचन सूक्ष्मता तथा विस्तार के साथ किया गया है। 'सभी कर्मों में यज्ञ ही सर्वश्रेष्ठ कर्म माना जाता था।[1]

वस्तुतः ब्राह्मण साहित्य कर्मकाण्ड परक तो है ही, इसमें सविस्तार यज्ञ प्रक्रियाओं का सूक्ष्म से सूक्ष्म विश्लेषण पाया जाता है। मूलरूप से इस साहित्य में यज्ञों के विधि विधान का ही वर्णन पाया जाता है। चूँकि यज्ञों का देवताओं से विशेष सम्बन्ध होता है, इसलिए द्रव्यादि की आहुतियाँ मुख्यरूप से विभिन्न देवताओं को दी जाती हैं। इस कारण देवताओं के स्वरूप, पुरोडाशादि के विषय में अनेक बातें स्थल–स्थल पर कही गयी हैं, जिनसे तत्कालीन धार्मिक स्थिति के विषय में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त होती हैं। इन्हीं यज्ञों में 'ब्रह्मबोध'' नामक वार्ताओं के अन्तर्गत दार्शनिक विचारों का भी वर्णन पाया जाता है। वस्तुतः धर्म और दर्शन अन्योन्याश्रित हैं।

1– ''यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'' – शतपथ ब्राह्मण – 1/7/3/5

वास्तव में किसी भी काल के सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास को जानने के लिए उस युग का अन्नपान, रहन–सहन, सामाजिक, आर्थिक अथवा राजनैतिक स्थिति के विषय में ही जानना ही पर्याप्त नहीं होता है, अपितु उस काल के बौद्धिक विकास, उपासना विधियॉ, परम्पराओं और आचार–विचार के विषय में भी जानना आवश्यक होता है। इसी दृष्टि से ब्राह्मण युग के सांस्कृतिक अध्ययन को सर्वांग सम्पन्न बनाने के लिए उस काल की धार्मिक स्थिति तथा मान्यताओं आदि पर भी विचार किया गया है। धर्म का विशेष सम्बन्ध उपास्य देवों से होता है। प्रस्तुत अध्याय में इसी पर विवेचन किया जायेगा।

'धर्म'–

प्राचीनतम वैदिक धर्म उपासना प्रधान एवं सरल था, ब्राह्मण के समय यह कर्मकाण्ड प्रधान और जटिल हो गया था और अन्त में उपनिषदों के समय ज्ञान पर बल दिया जाने लगा था। चूँकि आर्य लोग जंगलों में रहते थे, अतः वर्षा, विद्युत, प्रकाश, सूर्य इत्यादि नाना प्रकार की प्राकृतिक शक्तियों से भयभीत होकर उनकी स्तुति के लिए मन्त्र पढ़ते थे। संहिताओं में जो विभिन्न देवताओं से सम्बन्धित मन्त्र एवं सूक्त हैं, उनमें कोई उच्चकोटि की भावना निहित नहीं है। परन्तु वेद के गम्भीर अध्ययन से शीघ्र ही हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेगें कि यह बड़ा सुसंस्कृत, कलात्मक, परिष्कृत एवं प्रौढ़ धर्म है।

ब्राह्मण काल में आते–आते धर्म प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में इतना घूल–मिल गया था कि पृथक् सस्था के रूप में उसका अस्तित्व ही अदृश्य हो गया। जन्म से लेकर मृत्यु तक भारतीय जीवन का प्रत्येक कार्य, भौतिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र का प्रत्येक स्फुरण, ऐहिक तथा पारलौकिक जगत से सम्बद्ध उसकी प्रत्येक क्रियाकलाप धर्म के विशाल क्रोड में रहती थी। प्रातः से रात्रि तक का क्रियाकलाप या उसमें की जाने वाली चेष्टाएँ धर्म की रज्जु से आबद्ध थी।

ब्राह्मण साहित्य में जिस धर्म के विषय में वर्णन मिलता है, वह वैदिक धर्म मूलतः संहिता युग के समान होने पर भी बाह्य रूप से परिवर्तित हो गया था, भौतिक वातावरण अब छल–कपट, वशीकरण तन्त्र–मंत्र आदि में परिवर्तित हो रहा था। विशेषरूप से सामविधान ब्राह्मण में और गौण रूप से प्रायः सभी ब्राह्मणों में ऐसे उल्लेख मिलते हैं, जिनमें अभिचार और वशीकरणादि करने की विधि, धनिकों को वश में करके धन प्राप्ति के उपाय, गड़ा हुआ धन प्राप्त करने के उपाय तथा श्री ब्रह्मवर्चस की प्राप्ति के लिए उपायों का उल्लेख पाया जाता है।

लोग अपने अन्दर गुणों की वृद्धि के बजाय तन्त्र–मन्त्र की सिद्धि के द्वारा उसे पाने की चेष्टा करते थे। अभी ष्ट की सिद्धि के लिए मारण अभिचार, वशीकरण, जादू–टोना एवं यज्ञादि के विधान का उल्लेख ब्राह्मण साहित्य में मिलता है। ब्राह्मण कालिक ब्राह्मण भक्त को अब यह ज्ञात था कि अमुक कर्म को अमुक विधि से करने से अमुक फल की प्राप्ति होगी। उसे अपने बाहुबल पर पूर्ण

विश्वास भी था। यही कारण था कि वह वृहत कर्मकाण्ड युक्त सौ वर्षों तक चलने वाले दीर्घकालिक सत्रों को निर्दोष कर सकनक के विश्वास सहित अनुष्ठान लेता था। यदि किसी प्रकार भूल हो जाती थी, तो वह प्रायश्चित विधि को भी जानता था।

सामवेदीय ब्राह्मणों और उपनिषदों के युग में धर्म के तीन आधारभूत स्तम्भ प्रतीत होते हैं, जैसा कि छान्दोग्य उपनिषद् का वचन है– "त्रयो धर्मस्कन्धाः।" [1]

धर्म के प्रतिष्ठाकारक प्रथम स्कन्ध में यज्ञ, अध्ययन और दान सम्मिलित हैं। द्वितीय स्कन्ध तपोमूलक है और तृतीय स्कन्ध आचार्यकुलवासी ब्रह्मचारी की साधना से अनुस्यूत। शांकरभाष्य से विदित होता है कि धर्म की प्रस्तुति स्कन्धत्रयी की योजना विभिन्न आश्रमों के अनुरूप हुयी है। इस दृष्टि से यज्ञ, अध्ययन और दान गृहस्थ साध्य हैं तथा तपोऽनुष्ठान सामान्यतः सभी के कल्याण–साधक होने पर भी मुख्यतः वानप्रस्थियों के द्वारा ही विधेय है।

इनमें यज्ञ का विस्तृत विवेचन पृथक् परिच्छेद में हो चुका है, जिसके पुनः प्रस्तवन की आवश्यकता यहाँ प्रतीत नहीं होती।

यागेतर धार्मिक अनुष्ठानों का प्रमुख प्रयोजन विश्वात्मभाव की अनुभूति कराना है। याग के समान अन्य धर्मानुष्ठानों की मूल प्रेरणा आनन्द–प्राप्ति है और वह अन्तःकरण की व्यापकता तथा उदारता में निहित है। एतदर्थ छान्दोग्योपनिषद् में 'भूमा' शब्द का प्रयोग है जो स्वयं सुखस्वरूप है।–

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 2/10/4

यो वै भूमा तत्सुखम्, नाल्पे सुखमस्ति। [1]

'भूमा' का अभिप्राय है सब को अपना समझना। ऊपर–नीचे, आगे–पीछे, बायें–दायें सर्वत्र आत्मभाव की अनुभूति ही 'भूमा' है। [2]

इसके निमित्त 'छान्दोग्योपनिषद्' में बहुविध उपासनाएँ विहित हैं जिनमें विद्या, श्रद्धा और योग की आवश्यकता होती है– 'यदेव विद्यया करोति, श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति।' [3] इनके साथ ही मनन–चिन्तन, विज्ञान और निष्ठा की अपरिहार्यता भी प्रदर्शित है। [4]

इन सबसे स्पष्ट है कि इस युग में धर्मानुष्ठान का अधिष्ठान बहिंरग न होकर मनुष्य का अपना अन्तर्लोक रहा है। उसी को उन्मिषित, आलोकित और ब्रह्ममय करने के लिए अध्ययन, दान, तीर्थ–स्नान, सन्ध्या, अग्निहोत्र और उपासना की विभिन्न प्रतीकात्मक प्रणालियों का निर्देश किया गया है।

षड्विंश ब्राह्मण के अनुसार ऋत, सत्य, ब्रह्म, ओंकार और त्रिपदा गायत्री का सेवन आसुरी भाव से बाचाता है। [5]

1– छान्दोग्योपनिषद् – 7/23/1

2– वही – 7/25/1

3– वही – 1/1/10

4– वही – 7/18/1; 7/19/1; 7/20/1 तथा 7/21/1

5– षड्विंश ब्राह्मण – 5/5/3

स्वाध्याय की प्रतिष्ठा स्वर्ग–प्राप्ति के साधन रूप में इसलिए ही दिखाई गयी लगती है [1] कि उसके द्वारा विकसित अन्तःकरण स्वयं स्वर्ग–स्वरूप हो जाता है। पवित्रता और कर्मण्यता धार्मिक जीवन के अंग कथित हैं। [2] ब्राह्मण–वाङ्मय के अन्तर्गत सम्भवतः ताण्ड्य ब्राह्मण नें तीर्थ स्नान को धार्मिक प्रगति की दृष्टि से उपयोगी समझा है।

"या वै पूर्व्वाः प्रस्नान्ति ताः पूर्वास्तीर्थं जयन्ति" (9/4/12)।

सामविधान ब्राह्मण का निर्देश है कि अतिथि रूप में प्राप्त आगन्तुको को आवश्यकतानुसार दान अवश्य करना चाहिए। यदि गृह में कुछ भी न हो, तो केवल जल–दान से ही उन्हें तृप्त करना चाहिए। [3]

उपासनाएँ –

उपासना का शाब्दिक अर्थ है – 'निकट बैठना'। यह लाक्षणिक रूप से ईश्वरीय भाव से सम्पन्न होने और एकाग्रचित्त से अभिमत विशेष के चिन्तन – मनन की क्रिया का द्योतक है।

1– सामविधान ब्राह्मण – 1/1/17

2– वही – 1/2/11

3– वही – 1/3/7

"छान्दोग्योपनिषद्" के अनुसार अभिमत विशेष का प्रमाद रहित ध्यान करना उपासना है – 'ध्यायान्नप्रमत्तः।"[1]

उपासनाएँ, जिनका विधान प्रतीकात्मक दृष्टियों से किया गया है, उपासकों की अभिरूचियों के अनुरूप है। लोक–रूचिगत वैविध्य को ध्यान में रखकर उपासना–विधान में भी विविधता है। उपासना में प्रवृत्त होते ही मनुष्य कामनाओं के संसार से सद्यः निवृत्त नहीं हो जाता, अतएव उपनिषद् में अनेक सकाम उपासनाएँ भी विहित हैं।

कुछ प्रमुख उपासनाओं के विश्लेषण से विदित होता है कि उनकी परम्परा छान्दोग्योपनिषद् के प्रणयन से भी अधिक प्राचीन है। उपनिषद् ने मात्र उनको सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत कर दिया है। मधुविद्या [2] और शाण्डिल्य विद्या [3] इत्यादि ऐसी ही उपासनाएँ हैं।

साम और उसकी भक्तियों की उपासना –

सामवेदीय होने के कारण 'छान्दोग्योपनिषद्' ने प्रथम दो अध्यायों में उद्गीथ, ओंकार, हिंकार, स्तोमाक्षर, गायत्र, रथन्तर, वामदेव्य, वृहत्–साम, वैरूप साम, वैराजसाम, शाक्वर, रेवती, यज्ञायज्ञीय और राजन सामों की आधिदैविक

1– छान्दोग्योपनिषद् – 1/3/12

2– छा0 उप0 – 3/1–12

3– वही – 3/14

और आध्यात्मिक दृष्टि से बहुविध उपासनाओं का वर्णन किया है। आधिदैविक दृष्टि से उद्गीथोपासना का यह विधान द्रष्टव्य है – पृथिवी ऋक् है, अग्नि साम, अन्तरिक्ष ऋक् और वायु साम है। आदित्य की शुक्ल ज्योति यदि ऋक् है तो उसमें दृश्यमयी नीलवर्णरूपता साम। [1] आध्यात्मिक दृष्टि से उपासना विधान इस प्रकार है – वाणी ऋग्रूप और प्राण सामरूप है। चक्षु यदि ऋक् है तो आत्मा साम है। – इत्यादि। [2]

सम्पूर्ण साम की उपासना साधु दृष्टि से विहित है, क्योंकि लोक में साधु (सज्जन) को साम और असाधु को असाम कहा जाता है। इस उपासना का फल साधुसदृश्य विशिष्ट गुणों और धर्मों की प्राप्ति है। [3]

वृष्टिविषयिणी सामोपासना में पूर्वीय वायु को हिंकार, उत्पन्न मेघ को प्रस्ताव, वर्षणशील मेद्य को उद्गीथ, चमकने तथा गरजने वाले मेघ को प्रतिहार और जलग्रहण को निधन कहा गया है। [4] इसी प्रकार ऋतुओं, प्राणादि और वाणीविषयिणी सामोपासनाएँ उल्लिखित हैं। आदित्य विषयिणी सामोपासना के प्रसंग में आदित्य की समरूपता का आधार उसकी समता की भावना है। सभी

1– छान्दोग्योपनिषद् – 1/16

2– वही – 1/7

3– वही – 2/1

4– वही – 2/3

यह समझते हैं कि आदित्य मेरे प्रति प्रकाश विखेर रहा है – 'सर्वदा समः तेन साम मां प्रति मां प्रति इति सर्वेण साम।'' इसलिए समस्त प्राणी आदित्य के प्रति अनुगत है।

छान्दोग्य के ही समान 'जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण' में भी साम–विषयक अनेक उपासनाएँ निर्दिष्ट हैं। उदाहरण के लिए चन्द्रमा को हिंकार और अन्नस्वरूप बतलाकर उसकी उपासना से अन्न के द्वारा क्षुधा–शमन होने का उल्लेख है – 'चन्द्रमा वै हिंकारः। अन्नम् वै चन्द्रमाः। अन्नेन अशनयां ध्नन्ति।' [1]

मधु–विद्या –

छान्दोग्य के तृतीय अध्याय के 1–12 खण्डों मे मधुविद्यास्वरूप सूर्योपासना वर्णित है। आदित्य की कल्पना देव–मधु के रूप में जो घुलोक रूप तिरछे बांस पर अवलम्बित हैं। अन्तरिक्ष उसका छत्ता है और सूर्य की रश्मियां मधुमक्खियों के बच्चों के रूप में हैं। चतुर्दिक प्रसारित किरणें मधु नाड़ियॉ हैं। ऋक्, यजुष्, साम और आथर्वण श्रुतियॉ मधुकर रूप हैं। ऋगादि वेद पुष्प हैं। सोमस्वरूप अमृत जल है। समाहित दृष्टिवाला पुरुष आदित्य के मध्यवर्ती संचलित से मधु को देख लेता है। आदित्यान्तर्वर्ती लोहित और शुक्लादि रूप रसों के भी रस हैं, अमृतों के भी अमृत हैं–

1– जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण – 1/1/3/4

ते वा एते रसानां रसा वेदा हि रसास्तेषामेते रसास्तानि वा एतान्यमृतानाममृतानि वेदा ह्यमृतस्तेषामेतान्यमृतानि।[1]

इसके प्रथम अमृत से वसुओं, द्वितीय से रूद्रों, तृतीय से आदित्यों, चतुर्थ से मरूतों और पंचम से साध्यगण के जीवन–धारण का कथन है। इन अमृतों की ज्ञानमयी उपासना स्वराज्य प्राप्ति आदि अनेक फलों की हेतु कही गयी हैं। इस मधु–विद्या के वेत्ता के लिए सूर्य सदैव एक समान रहता है।

गायत्री द्वारा ब्रह्मोपासना –

छान्दोग्योपनिषद् में प्राप्त गायत्री द्वारा ब्रह्मोपासना का विधान गायत्री की सर्वात्मकता का लक्षक है – वही सबकी रक्षिका हैं–

'गायत्री वा इदं सर्वं भूतं यदिदं किंच वाग्वै गायत्री वाग्वा इदं सर्वं भूतं गायति च त्रायते च।''[2]

शांकर–भाष्य के अनुसार अनेक छन्दों के रहते हुए भी प्रधानता के कारण गायत्री का ही ग्रहण ब्रह्म–ज्ञान के द्वार रूप से किया है। सोमाहरण करने, अन्य छन्दों के अक्षरों के आनयन, इतर छन्दों में व्याप्त रहने और सभी सवनों में व्यापक होने से यज्ञ में गायत्री का प्राधान्य है। इसीलिए ब्रह्म भी माता के सदृश गुरुतरा गायत्री छोड़कर अन्य किसी आलम्बन का ग्रहण नहीं करता। समस्त प्राणिवर्ग,

---

1– छान्दोग्योपनिषद् – 3/5/4

2– वही – 3/12/1

स्थावर–जंगम, वागादि सभी कुछ गायत्रीमय है। वह उनका गान के द्वारा नामोच्चारण और संरक्षण करती है।

शाण्डिल्य विद्या –

यह समस्त जगत–ब्रह्म है। यह उसी उत्पन्न होता है, चेष्टा करता है और उसी में विलीन हो जाता है, इस प्रकार शान्त होकर उपासना करनी चाहिए – 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत।'' [1]

यह हृदयान्तर्वर्ती आत्मा ही ब्रह्म है, मृत्यु के अनन्तर मैं इसी ब्रह्मभाव को प्राप्त करूँगा – ऐसा निश्चययुक्त व्यक्ति निःसन्देह ईश्वरभाव को प्राप्त कर लेता है।

शाण्डिल्य ऋषि के द्वारा प्रोक्त होने के कारण ब्रह्मोपासना की यह प्रणाली 'शाण्डिल्य–विद्या' कही गयी है।

जीवन की यज्ञरूप में उपासना –

छान्दोग्योपनिषद् [2] और जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण [3] दोनों ने जीवन की यज्ञरूपता का निरूपण करते हुए प्रारम्भिक 24 वर्षों को प्रातःसवन, अगले 44 वर्षों को माध्यन्दिन सवन और तदनन्तर 48 वर्षों को तृतीय सवन कहा है। इसकी

1– छान्दोग्योपनिषद् – 3/14/1

2– छान्दोग्योपनिषद् – 3/16

3– जैमि0 उप0 ब्रा0 – 42/1–11

आधार–भूत है छन्दों के अक्षरों की संख्या, जो क्रमशः गायत्री (24) त्रिष्टुप् (44) और जगती (48) की है।

ब्रह्म की मन, आकाश और आदित्य रूप में उपासना [1] –

ब्रह्म की आकाश और मन रूप में उपासना क्रमशः अधिदैवत और अध्यात्म दृष्टियों से है। मनोब्रह्म के चार पाद हैं – वाक्, प्राण, चक्षु और श्रोत्र। इसी प्रकार अग्नि, वायु, आदित्य और दिशा रूप चार पाद आकाश ब्रह्म के भी हैं। मन और आकाश रूप में ब्रह्म का उपासक कीर्ति–लाभ करता है तथा आदित्य रूप में ब्रह्मोंपासक को सुन्दर घोष (श्रुतिसुखदध्वनियाँ) आकर सुखी करते हैं।

नेत्रस्थ पुरुष की उपासना [2] –

नेत्र में दृश्यमान पुरुष की अमृत, अभय और ब्रह्मस्वरूप आत्मा के रूप में उपासना करने से देवमार्ग के द्वारा ब्रह्मलोक की प्राप्ति विहित है।

प्राण विद्या की उपासना [3] –

छान्दोग्योपनिषद् के अनुसर यदि शुष्क स्थाणु (ठूँठ) के प्रति भी इसका उपदेश कर दिया जाये, तो उसमें शाखायें फूट निकलेंगी और नये किसलय

1– छान्दोग्योपनिषद् – 3/18

2– वही – 4/15/1–4

3 छान्दोग्योपनिषद् – 5/2

प्ररोहित होंगे – जैसा कि सत्यकाम जाबाल का कथन है–

'यद्यपि एतत् शुष्काय स्थाणवे ब्रूयाज्जायेरन्नेवास्मि शाखाः पुरोहेयुः पलाशानि इति'।

इससे पूर्व विभिन्न इन्द्रियों और प्राण की सामर्थ्य, निरूपित करते हुए प्राण का सर्वोपरि वैशिष्ट्य प्रदर्शित है। सभी इन्द्रियों की प्रतिष्ठा प्राण पर ही निर्भर है।

नामोपासना [1] –

यह उपासना नारद–सनत्कुमार के संवाद – माध्यम से वर्णित है। नारद ने सनत्कुमार से शोक से पार ले जाने वाले आत्मज्ञानापदेश की प्रार्थना की, जिसे स्वीकार करके सनत्कुमार ने पहले उनसे उनकी पूर्वार्जित ज्ञानराशि के विषय में जानकर तदनन्तर ऋगादि को नामस्वरूप बतलाया है और ब्रह्मवुद्धि से उसकी उपासना करने का निर्देश दिया है।

शांकरभाष्य के अनुसार ब्रह्मबुद्धि से नामोपसना का साम्य प्रतिमा की विष्णुबुद्धि से क्रियमाण उपासना से है –

" नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेद इत्यादि नामैवेतत्। नामोपास्व ब्रह्मेति ब्रह्मबुद्ध्या। यथा प्रतिमां विष्णुबुद्ध्योपास्ते तद्वत्।"

1– छान्दोग्योपनिषद् – 7/1/1–5

वाङ्मयी उपासना [1] –

धर्म–अधर्म, सत्य–असत्य और साधु–असाधु का विवेचन वाणी ही करती है, अतएव ब्रह्मबुद्धि से उसकी उपासना विहित है।

मन, संकल्प, चित्त, ध्यान, विज्ञान और बलादि की उपासनाएँ [2] –

मन आदि के साथ ही अन्न, जल, तेज, आकाश, स्मरण, आशा और प्राण को नामादि की अपेक्षा क्रमशः उत्तरोत्तर श्रेष्ठ बतलाकर उनकी ब्रह्मबुद्धि से उपासना का निर्देश है। उदाहरणार्थ मनोविषयक उपासना को उपसंहृत करते हुए कहा गया है कि –

"मनो ह्यात्मा मनो हि लोको मनो हि ब्रह्म मन उपास्व इति।'

सत्यसंज्ञक सेतुरूप ब्रह्म की उपासना [3] –

निष्पाप आत्मा सेतु रूप है, क्योंकि वह लोकों के पारस्परिक संघर्ष को बचाती है। इसको पार करके ब्रह्मचर्य (शांकरभाष्य के अनुसार स्त्री विषयिणी तृष्णा के त्याग) के द्वारा ब्रह्मलोक की प्राप्ति ही प्रस्तुत उपासना का लक्ष्य है।

इसके अनन्तर पुरुष अन्धा होने पर भी आँख पा जाता है, विद्ध होने पर भी अविद्ध रहता है, रोगादि कष्टों से युक्त होकर भी पीड़ित नहीं हो पाता।

1– छान्दोग्योपनिषद् – 7/2/1–2

2– छा0 उप0 – 7/3/15

3– छा0 उप0 – 8/4

अन्धकार स्वरूप रात्रि भी दिन हो जाती हे क्योंकि ब्रह्मलोक सदा सर्वदा प्रकाश स्वरूप है।

उपासना की सम्भवतः यह सर्वोच्च स्थिति है, जिसका निरूपण गीता में 'न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः' इत्यादि रूपों में हुआ है।

अग्नि [1] और पंचाग्नि विद्याएँ [2] –

आदित्यान्तर्गत दृश्यमान पुरुष को गार्हपत्याग्नि तथा पृथिवी, अन्न, अग्नि और आदित्य को उसकी देह कहा गया हैं। इसकी उपासना के अनेक फल हैं, जैसे – पापप्रणाश, अग्निलोक और पूर्णायु की प्राप्ति, उज्जवल जीवन–यापन तथा सन्तान परम्परा की अविछिन्नता।

दक्षिण अथवा अन्वाहार्यपचनाग्नि के भी जल, दिक्, नक्षत्र और चन्द्र रूप चार शरीर हैं। इसका स्वरूप चन्द्रमा में दृश्यमान पुरुष है। आह्वनीयाग्नि के प्राण, आकाश, द्युलोक और विद्युत– ये चार शरीर हैं। विद्युत् में दृश्यमान पुरुष इसका स्वरूप है।

पंचाग्निविद्या के रूप में द्युलोक, पर्जन्य, पृथ्वी और पुरुष का सन्दर्भ प्रदत्त हैं। इन सभी की समिधाएँ, धूम और ज्वाला आदि भी निर्दिष्ट हैं। स्त्री रूपा अग्नि से ही व्यक्ति की उत्पत्ति होती है। अन्त में मृतक शरीर भी अग्नि को ही

1– छान्दोग्योपनिषद् – 4/10–13

2– छा0 उप0 – 5/4–9

समर्पित कर दिया जाता है। पंचाग्निविद्या का वेत्ता पतितों से सम्पृक्त होने पर भी पाप में लिप्त नहीं होता और पुण्यलोक का भागी होता है।

इस प्रकार उपासनाओ का यह बहुविध प्रतीकात्मक विधान लोक में प्रचलित तत्कालीन विभिन्न उपासना–पद्धतियों का समन्वयक ही नहीं, उनका पूरावर्तक भी है।

अन्ततः इन उपासनाओं का मूल प्रयोजन मानवीय अन्तःकरण का समन्ततः परिष्कार तथा उत्तरोत्तर उदात्तीकरण पूर्वक परमतत्त्व की एकतानुभूति की दिशा में उसे अग्रसर करना है।

उपर्युक्त विवेचन से धर्म के तीनो स्कन्धों का प्रायः सर्वाङ्गपूर्ण परिचय प्राप्त हो जाता है। इनके विश्लेषण से स्पष्ट है कि सामवेदीय ब्राह्मणों और उपनिषदों में उपलब्ध धर्म की स्थूलतया तीन धारायें हैं जो धर्म के सरस्वती, गंगा और यमुना की अन्तर्वेदी में प्रतिपादित होने के कारण स्वाभाविक ही हैं। धर्म का प्रथम स्कन्ध यागात्मक हैं, जो पूर्णतया ' यागादिरेव धर्मः' को अन्वितार्थ करता है और जिसका मुख्यतः प्रतिपादन ताण्ड्य एवं षड्विंश ब्रह्मणों में है।

सामवेदीय ब्राह्मणों में प्रतिपादित धर्म का द्वितीय रूप कुछ अंश तक तांत्रिक उपासना एवं विकृत लोक–रूचियों से प्रभावित हो गया प्रतीत होता है।

ताण्ड्य, षड्विंश, संहितोपनिषद्, छान्दोग्य, सामविधान और जैमिनीयोपनिषद् संज्ञक ब्राह्मणों में प्रतिपादित धर्म का तृतीय रूप गंगा की शुभ्र और पावन धारा

के समान है।

धर्म का विशेष सम्बन्ध उपास्य देवों से होता है। प्रस्तुत अध्याय में इसी पर विवेचन किया जायेगा। ब्राह्मणों में उपलब्ध देवताओं के मानवीय रूप की भी झलक पायी जाती है। 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' [1] के अनुसार देवता त्रयावृत्त हैं, इन तीन वर्गों से बने प्रत्येक वर्ग में ग्यारह–ग्यारह देवता है। इस प्रकार 'कुल मिलाकर तैत्तीस देवता हैं'। [2] ऐसा ब्राह्मणों में वर्णन आया हुआ है। कहीं–कहीं पर कहा गया है कि कुल देवता तीन हैं – वसु, सदु और आदित्य। इस कथन में कोई दोष भी नहीं है। वस्तुतः ये तीन नहीं इक्तीस देवता हैं और इनकी गणना तैत्तीस देवताओं में की जाती है। सोमयान करने वाले देवताओं की संख्या तैत्तीस कहीं–कही ब्राह्मण ग्रन्थों में बतलाई गयी । इनमें आठ वसु, एकादश रूद्र, द्वादश आदित्य, प्रजापति और वषट्कार माने गये। [3] कहीं–कही पर चौतीस देवताओं का भी विवरण पाया जाता है।

'अन्तरिक्ष' और 'द्युस्थानीय' दो प्रकार के देवता माने गये हैं। द्युस्थानीय देवता की निष्पत्ति दिव् धातु से हुयी है। फलतः इसका अर्थ है – चमकने वाला और इसका सम्बन्ध देव शब्द के साथ है। ब्राह्मण साहित्य में ''द्यौ' शब्द का

1– तैत्तिरीय ब्राह्मण – 3/8/10/4

2– ताण्ड्य महाब्राह्मण – 4/4/11

3– पंचविंश ब्राह्मण – 6/2/5

प्रयोग पाया जाता है। अनेक स्थानों पर इसका अर्थ आकाश या अन्तरिक्ष से मापा गया है, अर्थात् इनसे सम्बन्धित देवताओं को द्युस्थानीय देवता से अभिहित किया जाता है। उसे वायु के आश्रित बतलाया गया है। 'ताण्ड्य ब्राह्मण' में 'एन्द्री' और 'ब्राह्मणी' इत्यादि विशेषणों से अभिहित किया गया है।

वरूण –

ब्राह्मण साहित्य में 'वरूण' एक नैतिक देव के रूप में विशेषरूप से प्रचलित हैं। वरूण का व्यक्तित्व मानवीय करण की अपेक्षा नैतिक पक्ष में ही अधिक विकसित हुआ है। ब्राह्मण साहित्य में वरूण एक सुन्दर केशविहीन पीत चक्षु वाले वृद्ध के रूप में वर्णित हैं, जबकि लौकिक जगत में अश्व को वरूण का प्रतीक माना गया है। वरूण को देवों और मनुष्यों का ही नहीं अपितु समस्त जगत का राजा माना गया है। 'ताण्ड्य ब्राह्मण' [1] में वरूण देव के लिए एक स्थान पर 'अन्नपति' विशेषण का प्रयोग किया गया है। जिस प्रकार इन्द्र के साथ अनेक कथाएँ सम्बद्ध हैं, उसी प्रकार वरूण के साथ कोई भी कथा प्रचलित नहीं है। कभी–कभी ऋग्वेद में भी वरूण सामुद्रिक जलों के साथ सम्बद्ध होकर आये हैं। वर्षा जल का कृषि से भी सदैव विशेष सम्बद्ध होता है। यही कारण है कि उन्हें 'अन्नपति' कहा गया है। 'ताण्ड्य ब्राह्मण' [2] में वरूण को रात्रि के आकाश

1– ताण्ड्य महाब्राह्मण – 13/9/22

2– वही – 25/10/10

के साथ सम्बद्ध किया गया है।

"मित्र" –

कर्मकाण्ड की दृष्टि से मित्र को यज्ञों में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यज्ञों में इनसे सम्बन्धित विवेचन ब्राह्मण साहित्य में यत्र–तत्र उपलब्ध होते है। ताण्ड्य ब्राह्मण में कहा गया है कि 'वह यज्ञों के दोषों को शमन करने वाले हैं, उन्हें यज्ञों में नव कपालों में पुरोडाश निर्वपन किया जाता है। पुनः इसी ब्राह्मण के अन्तर्गत 'मित्र' और 'वरूण' देवता का साथ अधिकांश स्थलों पर एक साथ पाया जाता है।[1]

"सूर्य" –

सूर्य देव से सम्बन्धित आख्यायिकाएँ भी उपलब्ध होती हैं। सूर्य को समस्त सृष्टि को प्रकाश प्रदान करने वाला बतलाया गया है। इस प्रकार ब्राह्मण साहित्य भी 'सूर्य' के विवेचन से अधूरा कैसे रह सकता है।

ब्राह्मण साहित्य में सूर्य को साम मानकर देवताओं के द्वारा 'अजि' किए जाने का संकेत पाया जाता है।[2] यही नहीं सूर्य देव को इह लोक में भी प्रतिष्ठा पूर्ण स्थान प्राप्त है, ऐसा विवरण ताण्ड्य ब्राह्मण[2] में पाया जाता है। जिसमें कहा गया है भौतिक जगत में भी सूर्य को प्रतिष्ठित

1– पंचविंश महाब्राह्मण – 21/10/23

2– ताण्ड्य ब्राह्मण – 9!1/3–5

स्थान प्राप्त है। उनके लिए यज्ञो में पुरोडाश का एक कपाल निर्वपन का विधान बताया गया है।

''सवितृ'' –

ये मूलतः एक विशुद्ध और सकल भावात्मक देवता थे। वैदिककाल में सविता देव को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था, ऐसे प्रमाण ऋग्वेद के सूक्तों को पढ़ने, पुनः मनन करने से स्वतः स्पष्ट किया जा सकता है। पुनः इन्हे ब्राह्मण साहित्य में भी वही गौरवपूर्ण स्थान देकर इनको सम्माननीय एवं प्रतिष्ठित देवता स्वीकार किया गया है। 'पंचविंश ब्राह्मण' [1] में उल्लेख मिलता है कि लोग सवितृ और सूर्य में समानता एवं समीकरण करते हैं। पुनः इसी ब्राह्मण में यह भी कहा गया है कि ''पॉच कपालों में पुरोडाश प्रदान करने का वर्णन आता है। [2] इस प्रकार हम देखते हैं कि इस युग में इस देवता को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।

''विष्णु'' –

वस्तुतः यह सूर्यदेव का ही क्रियाशील स्वरूप है, जिसकी कल्पना विष्णु के रूप में की गयी है। 'विष्णु' का सबसे महत्त्वशाली कार्य पृथ्वी को तीन पगों से माप डालने का वर्णन है। ब्राह्मणों में विष्णु को क्रमशः पृथ्वी, अन्तरिक्ष और आकाश में तीन पॉव प्रक्षेप करने वाला बताया गया है। यज्ञ को सम्पादित करने

1– पंचविंश महाब्राह्मण – 16/5/10

2– वही – 21/10/23

वाला इन तीन पगों का अनुसरण करता है।[1] यज्ञों को महत्त्व इनके कारण भी प्राप्त होता है, इसका वर्णन ब्राह्मणों में किया गया मिलता है। ब्रह्मणों में उपलब्ध ा संकेत के अनुसार विष्णु ने यज्ञ को तीन भागों में विभाजित किया गया मिलता है। ब्राह्मणों में उपलब्ध संकेत के अनुसार विष्णु ने यज्ञ को तीन भागों में विभाजित किया। 'वसुगण' प्रातःसवन के 'रूद्र' देवता माध्य न्दिन सवन के और आदित्य तृतीय–सवन के अधिकारी कहलाते हैं।[2]

इसके अतिरिक्त द्युस्थानीय देवताओं में 'उषा' 'विवस्वान' इत्यादि का भी विवेचन ब्राह्मण साहित्य के अन्तर्गत मिलता है।

अन्तरिक्ष स्थानीय देवता –

इन्द्र –

अन्तरिक्ष स्थानीय देवताओं में इन्द्र को सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। ऋग्वेद के चतुर्थांश सूक्तों में केवल इन्द्र की स्तुति पायी जाती है। इन्द्र सोमपान के बहुत ही प्रेमी हैं। ''ताण्ड्य ब्राह्मण'[3] में इन्द्र के पिता त्वष्टा माने गये हैं।'' ब्राह्मणों में इन्हें प्रजापति का ज्येष्ठ एवं प्रिय पुत्र बतलाया गया है।[4] एक कथा

1– वैदिक माइथोलोजी (हिन्दी), मैक्डानेल, पृष्ठ–75

2– ताण्ड्य महाब्राह्मण – 6/6/10

3– ताण्ड्य महा ब्राह्मण – 16/4

4– वही – 14/6/8

ब्राह्मणों में और भी आयी है – कृत्स इन्द्र के पुत्र थे। दोनों में परस्पर विरोध था।

'कृत्स ने इन्द्र के लिए निषेघ कर दिया था, इन्द्र ने उसके पुरोहित को प्रलोभन देकर अपने लिए यज्ञ करवाया, बाद में पता चलने पर कृत्स ने उसे मारकर नदी में फिकवा दिया। तब इन्द्र ने रोहित वर्ण की मछली का रूप धारण करके उसके मुख से सारा सोमरस पी लिया था।, इस कथा से इन्द्र की लोकप्रियता का पता चलता है। साथ–साथ वे कितने सोम के प्रेमी हैं इसका भी सहज अनुमान लगाया जा सकता है। 'पंचविंश ब्राह्मण' [1] में उल्लेख है – मरूतों द्वारा रक्षित एवं प्रचोदित इन्द्र वृत्रासुर को मारने में सफल होते हैं।''

इन्द्र को 'हिरण्याक्ष' 'हिरण्यहस्त' और 'हिरण्यबाहु' इत्यादि शब्दों से सुशोभित किया गया है। ये बहुत शक्तिशाली थे। इसका विवेचन ऋग्वेद के सूक्तों में मिलता है। ''पंचविंश ब्राह्मण' [2] में एक स्थान पर कहा गया है ''इन्द्र ने यतियों को अश्लील वाणी के कारण सालावृकों को दे दिया था।'' इस घटना का ब्राह्मण साहित्य में बहुशः उल्लेख पाया जाता है। इसी ब्राह्मण में पुनः एक उल्लेख है ''यज्ञों में इन्द्र के लिए एकादश पुरोडाशों का निर्वपन किया जाता था।'' [3]

1– पंचविंश ब्राह्मण – 13/4/1

2– ताण्ड्य ब्राह्मण – 8/1/4

3– वही – 21/10/23

रूद्र –

ऋग्वेद में रूद्र का स्थान एक अप्रधान देवता के समान है। यह विवरण सूक्तों के अध्ययन से मिलता है। इसका स्थान अग्नि, इन्द्रादि देवताओं की अपेक्षा बहुत कम है। फिर भी अन्तरिक्ष स्थानीय देवताओं में इनकी गणना की गयी है।

ब्राह्मण सहित्य में भी इससे सम्बन्धित उल्लेख पाया जाता है। ''शतपथ–ब्राह्मण'' [1] में रूद्र की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उल्लेख है कि प्रजापति के रोदन से रूद्र की उत्पत्ति हुयी था। ''ताण्ड्य ब्राह्मण'' [2] में भी यह 'महादेव' नाम के द्वारा मवेशियों का वध करने वाले कहे गये हैं।

मरूतगण –

इन्द्र के साहचर्य में मरूद्गणों को ऋग्वेद में अत्यन्त सम्मानित स्थान प्राप्त था। मरूत एक गण देवता हैं, जिसमें दो या एक सौ अस्सी गण देवता होते हैं। 'ताण्ड्य ब्राह्मण' [3] में उल्लेख है कि गणशः देवता सात हैं।'

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 24/13/5

2– वही – 6/1/6

3– ताण्ड्य महाब्राह्मण – 12/4/24

पृथिवी स्थानीय देवता–

ब्राह्मण साहित्य में पृथिवी स्थानीय देवताओं का वर्णन हैं, जिनमें कुछ का वर्णन इस प्रकार है–

अग्नि –

पृथिवी स्थनीय देवताओं में 'अग्नि' का प्रमुख स्थान है जो यज्ञीय अग्नि का प्रतिनिधिरूप है। महत्त्व की दृष्टि से इन्द्र के बाद अग्नि का ही स्थान है। 'ताण्ड्य महाब्राह्मण' में एक उल्लेख आया है – एक स्थल पर वीतदास वृक्ष को अग्नि की अस्थि कहा गया है। पुनः इसी ब्राह्मण में अग्नि को देवताओं का मुख कहा गया है। 'अग्नि को अन्य देवताओं के साथ भी वर्णित किया गया है।' 'ताण्ड्य ब्राह्मण' में भी अग्नि को अन्य देवताओं के साथ समीकृत किया गया है। इसी ब्राह्मण में अग्नि को 'होता' कहा गया है। [1] "अग्नि ही यज्ञ है" [2] ऐसा इसी ब्राह्मण मे आया है।

वृहस्पति –

ब्राह्मण साहित्य में वृहस्पति देवता का वर्णन आया हुआ है। ' ताण्ड्य महाब्राह्मण' में कहा गया है " वृहस्पति देवता ने एक बार देवों को पौरोहित्य कार्य के लिए जिस सत्र का अनुष्ठान किया था, वह उन्हीं के नाम से अभिहित

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 12/4/24

2– वही – 11/5/2

है।'' [1]

सोम –

इनका भी वर्णन ब्राह्मण साहित्य में आया हुआ है। 'ताण्डय ब्राह्मण' [2] में भी उल्लेख है कि इन्द्र के साथ मिलकर सोम ने वृत्रासुर का वध किया था।

पृथिवी –

ऋग्वैदिक साहित्य में पृथवी को देवता की प्रतिष्ठा प्राप्त थी। ब्राह्मण साहित्य में भी पृथिवी देवता से सम्बन्धित उल्लेख आया है।

सावेदीय ब्राह्मणों में निरूपति आचार–दर्शन –

ब्राह्मण साहित्य में उपलब्ध संकेतों के आधार पर उस काल के धार्मिक विकास पर विचार करते समय नैतिक आचार पर भी विचार करना आवश्यक है। वस्तुतः जब से मनुष्य ने सोचना, विचारना और अपने जीवन को स्वतन्त्रतापूर्वक विनिर्माण करना आरम्भ किया है, तभी से यह शास्त्र प्रादुर्भूत हुआ। मानव सभ्यता से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है।

ब्राह्मणग्रन्थों में स्थान–स्थान पर नैतिक भावना और उन्नत मनोभाव सन्निहित हैं। [3] डॉ0 राधाकृष्णन्के अनुसार मनुष्य के कर्त्तव्य का भाव सबसे

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 17/11/4

2– वही – 9/5/7

3– Apte, V.M. : Religion and Philosophy - (The Vedic Age), Page 449

पहले ब्राह्मण ग्रन्थों में ही उदित होता है। जीवन एक प्रकार से कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों का चक्र है।[1]

सामवेदीय ब्राह्मणों में स्थान–स्थान पर मानवीय आचरण की दिशा को निर्दिष्ट करने वाले महत्त्वपूर्ण संकेत उपलब्ध होते हैं जिनके प्रवृत्ति और निवृत्तिगत बिन्दुओं पर आचार – विचार व्यवहार की सम्पूर्ण चेतना केन्द्रित की जा सकती है। इनके समन्ततः परिपालन से मनुष्य का दैनन्दिन व्यवहार और चारित्र्य ऊपर उठ सकता है।

व्यष्टि और समष्टि के व्यवहार की सुदृढ़ आचार – संहिता के प्रस्तावक रूप में सामवेदीय ब्राह्मणें में निहित नैतिक चेतना का स्तर अत्यन्त उच्च तथा परिष्कृत है। अनमें प्रायः उन सभी आवश्यक तथ्यों का ध्यान रखा गया है जो व्यक्ति के व्यवहार को आवश्यकतानुसार न केवल संयत बनाते हैं, अपितु उसे गरिमा से विमण्डित भी करते हैं।

जीवन की यज्ञरूपता–

सामवेदीय ब्राह्मणों के अनुसार मानवीय जीवन यज्ञरूप है, जिसमें वाणी होतृ स्थानीय है, चक्षु अध्वर्यु है। मन ब्रह्मा है, श्रोत्र उद्गाता है, अन्य

1– Indian Philosophy (1) हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ 119–20., राजपाल एण्डसन्स्, दिल्ली, 1966

अंग चमसाध्वर्यु (सहायक ऋत्विक्) हैं। और चक्षुओं के मध्य विद्यमान आकाश ही सदस्य हैं।[1]

षड्विंश में ही एक अन्य स्थान पर प्राणादि को होत्रि, अध्वर्यु आदि कहा गया है। यज्ञमय जीवन व्यतीत करने का अभिप्राय यह है कि समस्त जागतिक–प्रलोभनों से विरत रहकर त्याग का निरन्तर अभ्यास; वैयक्तिक सुख–सुविधाओं के आकर्षण का परिहार ही इसकी प्रक्रिया है और लक्ष्य विन्दु है सामूहिक हितो का अनुष्ठान। जीवन के प्रत्येक कर्त्तव्य को एक यागगत क्रतु मान कर उसके विधिवत् सम्पादन से ही लौकिक और पारलौकिक सफलता प्राप्त हो सकती है –

'ते देवाः प्रजापतिमुपाधावन्– 'कथं नु वयं स्वर्गं लोकमियाम' इति।

तेभ्य एतान् यज्ञक्रतून प्रायच्छत् – ' एतैः लोकमेष्यथ।'[2]

ताण्ड्य ब्राह्मण का वचन है – 'विहाय दौष्कृत्यम्'[3] – अर्थात् जैसे सभी प्रकार के कुकृत्यों को त्यागने के अनन्तर ही यजमान और ऋत्विक् देवयजन (यज्ञशाला) में प्रवेश करते है, उसी प्रकार जीवन– यज्ञ के अनुष्ठाताओं को भी दुष्कर्मों से विरत होने का निरन्तर प्रयत्न करना चाहिए।

1– षण्ड्विंश ब्राह्मण – 2. 6. 2–3

2– षण्ड्विंश ब्राह्मण – 1. 1. 15

3– ताण्ड्य ब्राह्मण – 1. 1. 3

सत्य, ज्ञान और तपस् का अनुष्ठान –

सामवेदीय ब्राह्मणग्रन्थों की पंक्ति–पंक्ति में सत्य, ज्ञान और तपस्या पर बल दिया गया है। ताण्ड्य ब्राह्मण में कहा गया है – ' ऋतपात्रमसि' (1. 2. 3)– सत्य धारण के पात्र बनो ; 'ऋतस्य सदने सीदामि' (1. 2. 2) – मैं सत्य के आगार में आसीन होता हूँ ; ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः – सत्य के धाम बनों, वह स्वर्गिक सुख का प्रकाशक है। 'षड्‌विंश ' का वचन है – त्रिषत्या हि देवाः' – (1. 1. 9) – उन लोगों ने ही देवत्य को प्राप्त किया, जिनके मन, वाणी और काम–तीनों ही सत्ययुक्त रहे हैं। यज्ञ की देवी स्वाहा सत्य से ही उत्पन्न हुयी है– 'स्वाहा वै सत्यसम्भूता' (षड्0 ब्रा0 – 5. 7. 2)।

एक आख्यायिका के अनुसार जब देवगण असुरों से भयभीत हुए तो प्रजापति के समीप गये। प्रजापति ने उनके भय के अपनयन का उपाय मुख्यरूप से ऋक्, सत्य, ज्ञान और त्रिपदा गायत्री के जप को बतलाया –

'तस्य प्रजापतिरेतद् भेषजमपश्यत् ऋतं च सत्यं च ब्रह्म च ओङ्कारं च त्रिपदां च गायत्रीं ब्रह्मणो मुखमपश्यत् (षड्0 ब्रा0 5. 5. 3)

सामविधान ब्राह्मण में कहा गया है कि सत्य बोलना चाहिए तथा अनार्यों के साथ सम्भाषण से बचना चाहिए ' सत्यं वदेत्, अनार्यैर्न सम्भाषेत्'' (1. 2. 7)

देवताध्याय ब्राह्मण में प्रार्थना की गयी है 'ब्रह्म सत्यं च पातु माम्' (1. 4.5) – ज्ञान और सत्य मेरी रक्षा करें।

ताण्ड्य ब्राह्मणगत एक मन्त्र में मन को तेज, ज्ञान और सत्य से संयुक्त करने की प्रार्थना देवों से की गयी है, जिसमें हम चारूतम वाणी से बोल सकें – संवर्चसा पयसा सन्तपोभिरगन्म हि मनसा संविशेन संविज्ञानेन मनसश्च सत्यैर्यथा वोऽहं चारूतमं वदानीन्द्रो वो दृशे भूयासं सूर्य्यश्चक्षुषे वातः प्राणाय सोमो गन्धाय ब्रह्मक्षत्राय' (1. 3. 9)।

वाणी की शुद्धि के लिए किसी के पापपूर्ण कृत्य का कथन भी नहीं करना चाहिए – 'यो वै पापं कीर्त्तयति तृतीयमेवांशं पाप्मनोहरति' (5. 6. 10)

वाणी की यह शुद्धि तभी सम्भव है, जब मानसिक ध्यान कर उसका प्रयोग किया जाये, अर्थात् सोच विचार कर बोला जाये, जैसा कि ताण्ड्य ब्राह्मण में कहा गया है – 'वाचं मनसा ध्यायेत्' (6. 7. 8) तथा 'मनस्तत्पूर्वं वाचो युज्यते मनो हि यद्धि मनसाऽभिगच्छति तद्वाचा वदति' (11. 1 . 3)। वाणी और मन की एकता पर विचार करते हुए षड्विंश ब्राह्मण में कहा गया है कि ये दोनो उसी प्रकार परस्पराश्रित हैं, जैसे रथ के दो पहिये – एक पहिये के अभाव में रथ गमन नहीं कर सकता –

'वाचि तन्मनः प्रतिष्ठापयति। तद्यथैकवर्तनिना रथेन न कांचन दिशं तादृगेतत्' – (1. 5. 5)

ब्राह्मण साहित्य से विदित् होता है कि उस युग में सत्य को विशेष महत्त्व दिया गया था। प्रत्येक युगों की यह, धारणा रही है कि बिना नैतिक पवित्रता के

सत्य का ज्ञान नहीं हो सकता। सदैव सत्य बोलने का महत्त्व वर्णित है। ताण्ड्य महाब्राह्मण में एक स्थान पर कहा गया है कि सत्य मार्ग का अनुसरण करने वाला ही स्वर्ग का अधिकारी होता हैं। [1] इसी ब्राह्मण में एक स्थान पर कहा गया है कि दीक्षित के पापों की व्याख्या करना भी पाप है, [2] जो व्यक्ति ऐसा करता है, वह पापी के पाप के तिहाई भाग का अधिकारी माना जाता है।

'ताण्ड्य महाब्राह्मण' [3] में असत्य बोलना वाणी का छिद्र कहा गया है। इसका तात्पर्य है कि जिस प्रकार छेद के भीतर से सब वस्तुएँ गिर जाती हैं, उसी प्रकार अनृतभाषी के वाणी में से उसका सार गिर जाता है अर्थात् वह सारहीन वाणी किसी पर अपना प्रभाव नहीं जमा सकती। इसी तरह 'ऐतरेय ब्राह्मण' [4] में भी श्रद्धा तथा सत्य की मिथुन कल्पना बड़ी ही सुन्दर एवं रोचक है। श्रद्धा पत्नी है और सत्य यजमान है। श्रद्धा तथा सत्य की जोड़ी बहुत ही उत्तम है। यजमान अपनी पत्नी के साथ मिलकर यज्ञ के द्वारा स्वर्ग पाने में समर्थ होता है। उसी प्रकार सत्य श्रद्धा के साथ संयुक्त होकर स्वर्ग लोकों को जीत लेता है।" उस समाज में आतिथ्य की बड़ी महिमा का पता इसी घटना से लग

1— ताण्ड्य महाब्राह्मण — 18/2/9

2— वही — 5/6/10

3— ताण्ड्य ब्रह्मण — 8/6/12

4— ऐतरेय ब्राह्मण — 7/10

सकता है कि आतिथ्य यज्ञ का सिर माना जाता था। अतिथि की पूजा यज्ञ के मस्तक की पूजा मानी जाती थी। [1]

सत्य के साथ ही ज्ञान की महत्ता भी निरूपित है। षड्विंश का कथन है कि ज्ञान के गौरव से मनुष्य देवत्व की कोटि में पहुँच जाता है –

"अथ हैते मनुष्यदेवाः ये ब्राह्मणाः शुश्रुवांसोऽनूचानास्ते मनुश्यदेवाः'

– (1. 1. 29)

ज्ञानपूर्वक यज्ञानुष्ठान करने वाला का यज्ञ निर्दोष होता है – " एवं विदुषो ह वै यज्ञो न व्यथते' (2. 7. 9)

सामविधान ब्राह्मण की आख्यायिका के अनुसार मनुष्यों ने जब प्रजापति से पूछा कि हम स्वर्ग लोक कैसे पहुँच सकते हैं ?– तो प्रजापति ने उन्हें वेदानुशीलन (स्वाध्याय) और तपस्या का मार्ग बतलाया। (1. 1. 17)।

स्वाध्याय की ही श्रेणी में सावित्री की उपासना भी सम्मिलित है, जिसके द्वारा मन के राग – द्वेषादि समस्त कलुषों का विनाश हो जाता है –'दुष्टतादुरूपयुक्तान्नयूनाधिकाच्च सर्वस्मात् स्वस्ति'।

सत्य और ज्ञान के साथ ही ब्राह्मणों मे तपस्या का गौरव भी भूयोभूयः प्रदर्शित है। तपोऽनुष्ठान से मानवीय चारित्र्य अत्यन्त समुज्जवल हो उठता है; क्येंकि इस भूतल पर जो कुछ है वह सब तपस्या से ही प्रादुर्भूत है, जैसा कि षड्विंश ब्राह्मण में कहा गया है – " देवा वै तपोऽतप्यन्त।" तेषां तप्यमानां।

1– ऐतरेय ब्राह्मण – 1/25 'शिरो वा एतद् यज्ञस्य यद् आतिथ्यम्"

रसोऽजायत। पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौरिति। तेऽभ्यतपन्। तेषां तप्यमानानां रसोऽजायत' (5. 1. 2)।

– अर्थात् देवों की तपोमयी साधना से ही समस्त सारभूत तत्त्व, गार्हपत्याग्नि प्रभृति अग्नियाँ तथा अन्य सभी वस्तुएँ उत्पन्न हुयीं। सत्य ही इस वसुन्धरा के अंक में जो कुछ भी श्रेष्ठ तथा प्रेष्ठ है, रमणीय और कमनीय है, शिव और सुन्दर हैं वह सब उन्हीं तपस्वियों का अवदान है, जिन्होंने स्वेच्छया पीड़ा के पथ का वरण किया। ताण्ड्य ब्राह्मण के अनुसार इसीलिए समस्त समृद्धियाँ तपोरत व्यक्तियों को ही प्राप्त हुयी – "तपश्चितो देवाः सर्वामृद्धिमार्ध्नुवन्" – (15. 5. 3)

सामविधान ब्राह्मण के अनुसार भृत्यातिथि शेष भोजन करने, अपने पत्नी से ही ऋतु काल के समय शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने वाले व्यक्ति का अग्निहोत्र कभी लुप्त नहीं होता और उन्हें दर्शपूर्णमास के अनुष्ठान का फल प्राप्त होता है।

इन आचार घटक तत्त्वों के निरूपण के साथ ही सामवेदीय ब्राह्मणों में उन दुर्बलताओं और विकृतियों का विवेचन भी हुआ है, जो मानवीय गरिमा के स्खलन की प्रतीक है।

छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है कि स्वर्ण – तस्कर, मद्यप, गुरु–स्त्रीगामी और किसी की हत्य करने वाले तो पतित हैं ही, इनसे सम्बन्ध रखने वाला भी पतित हो जाता है– "स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिबंश्च गुरोस्तल्पमावसन्ब्रह्महा चैते पतन्ति चत्वारः पंचमश्चाचरंस्तैरति" (4. 10. 9)।

ताण्ड्य ब्राह्मण में चोर को समाज का शत्रु बतलाया गया है – " ये वै स्तेना् रिपवस्ते' (4. 7. 5)।

ताण्ड्य में ही उन लोकों को निकृष्टतम कहा गया है जो कृषि अथवा वाणिज्य प्रभृत्ति जीविका प्रशस्त साधन को नहीं अपनाते (17. 1. 2)। इसी ब्राह्मण में एक स्थान पर साधु के वेश में रहने वाले भ्रष्ट और असामाजिक तत्त्वों का भी उल्लेख है (19. 4. 7)।

इस प्रकार सामवेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों में मानव और उसकी सहज दुर्बलताओं को ध्यान में रखकर पतित और निकृष्ट जनों को भी उपर उठाने का प्रयत्न किया गया है।

"सामवेदीय ब्राह्मणों में वर्णित आश्रम व्यवस्था" –

ब्राह्मण साहित्य में एक आदर्श जीवन का चित्रण मिलता है। व्यक्ति का जीवन चार भागों में बॅटा था। प्रत्येक भाग को 'आश्रम' कहते हैं। ब्राह्मण साहित्य में इस शब्द का प्रयोग मिलता है। इसका सबसे पहले प्रयोग उपनिषद् साहित्य में पाया जाता है' ।[1] लेकिन जिन उपनिषदों में इसका प्रयोग पाया जाता है उसको बौद्ध काल के पूर्व का नहीं माना जा सकता है।[2] वास्तव में आश्रम के पीछे आदर्श जीवन की भावना निहित थी। उसका उद्देश्य व्यक्ति को ब्रह्मचर्य,

---

1– श्वेताश्वतर उपनिषद् – 6/21

2– वैदिक इण्डेक्स – 1/77

गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रमों का पालन करने की भावना थी। ब्राह्मण –काल में गृहस्थ– आश्रम का विशेष महत्त्व पाया जाता है। अपत्नीक यज्ञ का अधिकारी नहीं माना जाता था।[1] चूँकि यह युग कर्मकाण्डीय भी था, इसलिए कर्मकाण्ड प्रधान युग में उसका मूल उद्देश्य यज्ञीय अनुष्ठानों के द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति करना था।

साधारणतया जीवन को चार भागों मे बॉटा जाता है। इसके प्रत्येक भाग को आश्रम कहते हैं। वे इस प्रकार हैं – (1) 'ब्रह्मचर्य' – विद्यार्थी जीवन का काल (2) 'गृहस्थ' – धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति का काल (3) वानप्रस्थ – वस्तुतः सांसारिक जीवन से विरक्ति का काल (4) 'सन्यास आश्रम'।

वस्तुतः देखा जाये तो ब्राह्मण साहित्य में चारों आश्रम की स्थिति के विषय में संकेत मिलते हैं परन्तु कर्मकाण्ड प्रधान साहित्य होने के कारण ब्रह्मचर्य एवं गृहस्थ आश्रम की बहुत ही प्रतिष्ठा की गयी है।

ब्राह्मण साहित्य में 'ब्रह्मचर्य' शब्द के प्रयोग एवं ब्रह्मचारी धर्म के विस्तृत विवेचन का उल्लेख पाया जाता है। ब्राह्मण काल[2] में यह आश्रम पूर्ण पतिष्ठा प्राप्त कर चुका था।

1–. शतपथ ब्राह्मण – 5/1/6, 10

2– पंचविंश ब्राह्मण– 23/1/5

आश्रम चतुष्टय का निष्ठापूर्वक सम्पादन व्यक्ति के उत्कर्ष का मूलाधार था। आश्रम के मार्ग पर जीवन सरल एवं सहज ढंग से गतिमान होता था। पुरूषार्थी का पूर्णरूप से क्रियान्वयन भी आश्रमों के माध्यम से ही सम्पन्न किया जाता था। प्राचीन हिन्दू समाज में आश्रम व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। मनुष्य के जीवन को सुसंस्कृत, सुगठित एवं सुव्यवस्थित करने के लिए भारतीय समाज में आश्रम–व्यवस्था की गयी थी। मानव जीवन को समग्रतापूर्वक व्यवस्थित रूप प्रदान करने के लिए एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए उसे आश्रमों के अन्तर्गत विभाजित किया था।

इस दृष्टि से आश्रम–व्यवस्था का दर्शन प्राचीन व्यवस्थाकारों के अद्वितीय ज्ञान एवं बुद्धि का प्रतीक है, जिसमें ज्ञान और विज्ञान, लौकिक और पारलौकिक जीवन को ज्यादा महत्त्व दिया जाता था। मानव–जीवन को इस व्यवस्था के अन्तर्गत ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास नामक चार आश्रमों में विभाजित किया गया था। जिसका अन्तिम लक्ष्य था, मोक्ष की प्राप्ति। दार्शनिक प्रेरणा से मनुष्य का जीवन एक आश्रम से होता हुआ क्रमानुसार अन्तिम आश्रम तक पहुॅचता था तथा अपनी कर्मनिष्ठता और सात्विकता से चरम लक्ष्य प्राप्त करता था। यह गति ही परम ब्रह्म की प्राप्ति भी थी।

हिन्दू चिन्तको ने मनुष्य के जीवन को दीर्घतम माना था, अर्थात् सौ वर्षों तक का जीवन। इस जीवन को इन्होंने पचीस–पचीस वर्षों के चार बाराबर भागों

में बॉटकर आश्रम व्यवस्था की थी। प्रसिद्ध समाजशास्त्री डॉ0 कपाडिया ने यह स्वीकार किया है कि पुरूषार्थ के सिद्धान्त कि वास्तविक अभिव्यक्ति आश्रमों में संग्रहीत है। अन्तिम उद्‌देश्य विशुद्ध सत्य की प्राप्ति था। यही विशुद्ध सत्य परम ब्रह्म तथा व्यक्ति का मोक्ष भी था। [1]

आश्रम शब्द संस्कृत की 'श्रम'धातु से बना है, इसके अन्तर्गत मनुष्य अपने जीवन में श्रम पूर्वक विभिन्न आश्रमों के कार्य सम्पन्न करता था तथा प्रत्येक आश्रम के पश्चात् आगामी आश्रम के लिए सन्नद्ध होता था। जीवन–यात्रा का यह मार्ग चार आश्रम के माध्यम से था।

आश्रम व्यवस्था का ''उद्‌भवकाल' –

आश्रम व्यवस्था का उद्‌भव उत्तर वैदिक काल में किसी समय हो चुका था, कुछ विचारकों के अनुसार इसका प्रचलन बुद्ध के पश्चात तथा 'पिट्‌क' की रचना के बाद हुआ था। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ नामक तीन आश्रमों का वर्णन पाया जाता है। 'ब्रह्मचारी' शब्द का प्रयोग कई जगह मिलता है। 'यति' का 'सन्यासी' के अर्थ में दो या तीन स्थलों पर वर्णन मिलता है। इससे सम्बन्धित शब्दों का उल्लेख उत्तर वैदिक कालीन अनेक ग्रन्थों में मिलता है। ''बृहदारण्यकोपनिषद्'' से ज्ञात होता है कि याज्ञवल्क्य ने अपनी पत्नी मैत्रेयी से

1– के0 एम0 कपाडिया – मैरेज एण्ड फैमिली इन इण्डिया – पृष्ठ–27

कहा था कि अब मैं गृहस्थी से प्रव्रज्या ग्रहण करने जा रहा हूँ [1]

प्रारम्भ में आश्रमों की संख्या तीन थी। चार आश्रमों का विकास बाद में हुआ। मनु ने भी एक स्थान पर तीन आश्रमों का उल्लेख किया है। [2] इस तरह चारो आश्रमों का संक्षिप्त विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया जायेगा, साथ ही साथ सामवेदीय ब्राह्मणों के विशेष सन्दर्भ में इसकी विवेचना की जायेगी, क्योंकि शोध प्रबन्ध का वर्ण्य विषय ही यही है जो निम्न प्रकार है –

''ब्रह्मचर्य आश्रम'' –

हिन्दू समाज में मनुष्य के बौद्धिक और शिक्षित जीवन के निमित्त ब्रह्मचर्याश्रम की व्यवस्था की गयी थी। विद्या एवं शिक्षा की प्राप्ति इसी के पालन से होती थी जिससे मनुष्य की ज्ञान गरिमा बढ़ती थी। उनके मानसिक एवं बौद्धिक उत्कर्ष का माध्यम यही आश्रम था। यह शब्द 'ब्रह्म और 'चर्य' से बना है, ब्रह्म का अर्थ है – वेद अथवा महान और 'चर्य' का अर्थ है –विचरण एवं अनुसरण करना। इन

1– ''मैत्रेयीति होवाच याज्ञवल्क्यः प्रव्रजिष्यन् वा, अरेऽहमस्मात् स्थानादस्मि हन्ति तेऽनया कात्यायन्यान्तं करवाणीति।''

–''बृहदारण्यकोपनिषद्'' 4/5/2

2– ''त एव हि त्रयो लोकस्त एव त्रय आश्रमाः।
त एव हि त्रयो वेदास्त एवोक्तस्त्रयोऽग्नयः।।''

– 'मनुस्मृति' – 2/230

दोनों के मिलाने पर अर्थ निकलता है – ब्रह्म के मार्ग पर चलना। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में ब्राह्मण का वसन्त ऋतु में, क्षत्रिय का ग्रीष्म और वैश्य का शरद ऋतु मे उपनयन करने का निर्देश किया गया है। [1]

प्रत्येक ब्रह्मचारी के लिए यज्ञोपवीत धारण करना आवश्यक तथा पवित्र समझाा जाता था, उसे मेखला और दण्ड धारण करने के लिए भी निर्देशित किया गया था। ब्राह्मण की मेखला मूॅंज की, क्षत्रिय की अपस के खण्ड से युक्त तथा वैश्य की ऊन की होती है। पृथक्–पृथक् वर्ण के लिए आयु का विधान भिन्न–भिन्न था। ब्राह्मण के लिए आठ वर्ष तथा क्षत्रिय एवं वैश्य के लिए क्रमशः ग्यारह एवं बारह वर्ष निर्धारित थे।

ब्रह्मचारी का जीवन व्यवस्थित, संयमित और नियमबद्ध होता था। शील, साधना और अनुशासन का वह मन से अनुसरण करता था, भिक्षार्जन, भोजन, शयन, गुरु शुश्रूषा आदि पर अनेक नियमों की व्यवस्था थी। ब्रह्मचारी के लिए नृत्य, गायन, वाद्य, सुगन्धित वस्तुएं, माला, पूजा, छाता, अंजन, हंसना, देखना, स्त्री की मन से कामना करना, उसे अकारण स्पर्श करना आदि निषिद्ध था। साथ ही साथ सत्य बोलना, पाप से दूर रहना तथा गुरु से पूर्व ही जाग जाना आवश्यक था। शिक्षा समाप्ति के बाद विद्यार्थी गुरु की आज्ञा प्राप्त कर गृहस्थ

1– "वसन्तो ग्रीष्मश्शदयित्यृत्तवो वर्णाननुपूर्ण्वैपा"

– 'आपस्तम्बधर्मसूत्र' 4/10/4

जीवन में प्रवेश करता था। ब्राह्मणों में इसका बहुत ज्यादा उल्लेख नहीं पाया जाता है।

''गृहस्थ आश्रम''–

यह आश्रम अन्य तीनों आश्रमों की अपेक्षा ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, इसी पर अन्य आश्रम भी आश्रित थे।[1] ब्रह्मचारी के समावर्तन समारोह के बाद विवाह के साथ जीवन प्रारम्भ होता था। वह गुरु की आज्ञा प्राप्त कर गृह की ओर प्रस्थान करता था। मनु के अनुसार जिस प्रकार सभी नदियॉ सागर में संस्थित हो जाती हैं, ठीक उसी प्रकार सभी आश्रम गृहस्थ आश्रम में।[2]

जन्म से लेकर मृत्यु तक के सभी संस्कार गृहस्थ आश्रम में सम्पन्न किये जाते थे। ''गर्भाधान', 'पुंसवन', 'सीमान्तोन्नयन', 'जातकर्म', 'नामकरण', 'निष्क्रमण', 'अन्नप्राशन', 'कर्णछेदन', 'विद्यारम्भ', 'उपनयन' तथा अन्त्येष्टि आदि विभिन्न संस्कार गृहस्थ आश्रम के माध्यम से ही सम्पन्न किये जाते थे। विवाह के बाद

1– 'यथा वसयु समाश्रित्य वर्तन्ते सर्व जन्तवः।

तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः।।''

– मनुस्मृति – 3/77

2– ''यथा नदीनद्याः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितम्।

तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थ यान्ति संस्थितम्।।

– मनुस्मृति – 6/90

व्यक्ति गृहस्थ बनता था।

गृहस्थ आश्रम के अन्तर्गत व्यक्ति कई ऋणो से मुक्ति प्राप्त करता था। ब्राह्मण–ग्रन्थों के अनुसार 'व्यक्ति पर चार प्रकार के ऋण थे – पैदा होते ही वह देवताओं, पितरों, ऋषियों और मनुष्यों का ऋणी हो जाता था। [1] अतः इन ऋणों से मुक्ति पाना ऐच्छिक नहीं बल्कि अनिवार्य कर्त्तव्य था। [2] प्रायः देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण की चर्चा सभी व्यवस्थाकारों ने अपने ग्रन्थों मे भी किया है।

मनु ने यह भी व्यवस्था दी है कि उक्त तीनों ऋणों को पूरा करके मन को मोक्ष में लगाये बिना मोक्ष सेवी व्यक्ति नरक में जाता है। [3] अर्थात् इन तीनो ऋणों से मुक्ति पाना गृहस्थ के लिए अनिवार्य बतलाया गया है।

गृहस्थों के लिए 'पंचमहायज्ञ' की व्यवस्था का भी विधान सर्वत्र पाया जाता है। इन पंचमहायज्ञों के सिद्धान्त ने गृहस्थ को प्रथम दृष्टि से उन्नतिशील और जागरूक बनाने की च्येष्टा की है वास्तव में ये पंचमहायज्ञ इस प्रकार थे –

1– शतपथ ब्राह्मण – 1/7/2/10, महाभारत अनुशासनपर्व – 1/120/15

2– जैमिनि ब्राह्मण – 7/2/31

3– "ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्।

अवपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यध।।"

–मनुस्मृति –6/35

'ब्रह्मयज्ञ', 'पितृयज्ञ', 'देवयज्ञ', 'भूतयज्ञ' और 'नृयज्ञ'। [1] इन पंचमहयज्ञों ने समाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक पक्ष को विकसित करने में सहायता पहुँचायी। मनुष्य को धर्म के प्रति सचेष्ट करना इसकी मूलभावना थी।

गृहस्थ चार प्रकार के बतलाये गये हैं– 'कुसूलधान्य', 'कुंभधान्य', 'अश्वस्तन' और 'कपलोतीमाश्रित'। 'कुसलधान्य' वे थे जो यजन, याजन, पठन, पाठन, दान और प्रतिग्रह को सम्पन्न करते थे। 'कुंभधान्य' उनको कहा जाता था, जो यज्ञ, अध्ययन और दान में निष्ठावान होते थे। 'अश्वस्तन' वे गृहस्थ थे जो अध्ययन और दान में अधिक व्यस्त रहते थे। 'कपलोतीमाश्रित' उन्हें कहा गया है जिनकी रूचि केवल स्वाध्याय मे ही थी।

ब्राह्मण ग्रन्थों मे भी गृहस्थ आश्रम सम्बन्धी विवरण प्राप्त होता है। पिता का पुत्र के प्रति तथा पुत्र का पिता प्रति पुनीत भावना तथा कर्त्तव्य की भावना क्या थी, इसका विवेचन ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राप्त होता है। प्रत्येक जाति वाले अपने को श्रेष्ठ बनाने के लिए लालायित तथा प्रयत्नशील रहते थे, इसका विवरण भी मिलता है। 'पंचविंश ब्राह्मण' के अनुसार 'प्रत्येक गृहस्थ में अपने जाति वालों में श्रेष्ठ बनने की इच्छा होती थी। [2]

1– शतपथ ब्राह्मण – 11/5/6/1– 'पन्चैव महायज्ञाः। तान्येव महासत्राणि भूतयज्ञो मनुष्यज्ञः पितृयज्ञो देवयज्ञो ब्रह्मज्ञ इति।''

2– पंचविंश ब्राह्मण– 6/9/10

इस तरह ब्राह्मण काल में इस आश्रम के विषय में उल्लेख पाया जाता है जो सामाजिक जीवन की ओर व्यक्ति के जीवन के नियमों का संकेत करता है। ब्राह्मण ग्रन्थों मे पिता–पुत्र के सम्बन्ध को भी दर्शाया गया था, जिसका विवरण हमें 'ताण्ड्य ब्राह्मण' [1] में मिलता है जिसमें कहा गया है ' पुत्रों के अपराध करने पर पिता उन्हें क्षमा करता था तथा सुमार्ग पर ले जाने का प्रयत्न करता था। पितृऋण के अन्तर्गत जो व्यवस्था की गयी थी, कि पुत्र भी पितृऋण से तभी मुक्त होता था जब वह भी एक पुत्र उत्पन्न करे, यह उसका आवश्यक कर्त्तव्य था। 'गोपथ ब्राह्मण' [2] में 'पुत्र को 'पुन्नामक' नरक से तारने वाला माना गया है'। मगर दूसरी ओर 'ऐतरेय ब्राह्मण' [3] में कहा गया है 'पिता चाहे तो उसे बेच सकता था।' इससे उस काल की रूढ़वादिता तथा स्वेच्छाचारिता का भी बोध होता है, जो कुल मिलाकर किसी भी दृष्टि से उचित नहीं मानी जा सकती।

प्राचीन काल में गृहस्थ के लिए जो नियम और आचरण निर्दिष्ट किये गये थे, ये निश्चय ही उसके त्याग और आध्यात्मिक जीवन की ओर झुके हुए थे। गृहस्थ के लिए भौतिक और सांसरिक सुखों को स्वीकार करते हुए भी उसे सीमाबद्ध कर दिया गया था, जो ऐसा नहीं करता था, उसके लिए शुद्धिक्रिया

1– ताण्ड्य महाब्राह्मण – 7/9/4

2– गोपथ ब्राह्मण – 1/1/2

3– ऐतरेय ब्राह्मण – 7/15

करायी जाती थी। गृहस्थआश्रम का मूल उद्देश्य था धर्मसन्तान और काम की उपलब्धि। फिर भी गृहस्थ के सामाजिक कर्त्तव्य भी थे जो उसके सामाजिक और पारिवारिक जीवन को उन्नत करते थे। ''ताण्ड्य ब्राह्मण' [1] में कहा गया है ''अष्टादंशत संतानहीन होने से बहुत दुखी था, अन्त में वृद्धावस्था में उसने साम देखा, फलतः उसे पुत्र की प्राप्ति हुई।''

इस प्रकार पुरुषार्थी की पूर्णता, ऋणों से मुक्ति हेतु महायज्ञों का सम्पादन, पारिवारीक सौमनस्य, आध्यात्मिक सुखों की श्रेष्ठता, व्यक्तिगत उत्थान, सर्वांगीण व्यक्तित्व का निर्माण, मानवीय महत्ता आदि गृहस्थ आश्रम में ही सम्भव थी, इसलिए गृहस्थ आश्रम से अनेकानेक नैतिक, व्यक्तिगत, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक कर्त्तव्य सम्बद्ध किये गये थे तथा उनकी उपादेयता और उपयोगिता को सिद्ध भी किया गया।

''वानप्रस्थ आश्रम, (वैखानस–आश्रम)'' –

गृहस्थ आश्रम के बाद वानप्रस्थ आश्रम का प्रारम्भ माना जाता था। जब मनुष्य अपने सम्पूर्ण गार्हस्थ्य कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों को सम्पन्न कर लेता था और उससे मुक्त हो जाता था, तब वह सांसारिक मोहमाया को त्याग कर वानप्रस्थ की ओर मुड़ता था। पूर्ववर्ती समस्त स्थितियों को त्याग कर वन की ओर प्रस्थान करना ही वानप्रस्थ कहा जाता था। ''ताण्ड्य ब्राह्मण'' में भी

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 8/9/21

''वैखानसों'' का उल्लेख पाया जाता है'।[1]

वैदिक युगीन आरण्यक साहित्य की रचना ऐसे ही वानप्रस्थी तपस्वियों ने की थी जो अरण्य में रहा करते थे। उपनिषद् तथा ब्राह्मण युग में वानप्रस्थ जीवन का प्रसार हुआ। गृहस्थ जीवन के बाद लोग वन में जाकर एकान्त का जीवन व्यतीत करते थे और अपने ज्ञान तथा विचार की अभिवृद्धि करते थे। गौतम ने वानप्रस्थ के लिए ' वैखानस' शब्द प्रयुक्त किया है।''[2] वौधायन का मत है कि वैखानस के शास्त्रगत नियमों का पालन करने वाले ही वानप्रस्थी हैं।[3] मनु के मत के अनुसार 'जब व्यक्ति के सिर के बाल श्वेत होने लगें, शरीर पर झुर्रियॉ पड़ने लगें,और उसके पौत्र हो जायें, तब वह वानप्रस्थी होकर जंगल की ओर चल दें।[4] यह उसके ऊपर निर्भर था कि वह अकेला जाये या पत्नी को साथ लेकर।

वास्तव में वानप्रस्थ जीवन में व्यक्ति तप, अहिंसा और ज्ञान का अर्जन करता था। उसका प्रधान उद्देश्य था आध्यात्मिक उत्कर्ष तथा समस्त भौतिक इच्छाओं से मुक्ति पाना। विद्या, शरीर की शुद्धि और तपस्या की वृद्धि के लिए

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 14/4/7

2– ''ब्रह्मचारीगृहस्थों भिक्षुवैखानसः।'' गौतमधर्मसूत्र – 3/2

3– बौधायन धर्मसूत्र – 2/6/19

4– ''गृहस्थस्तुयदा पश्येद्वलीपलिमात्मनः।

अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्।।'' – मनुस्मृति 6/2

वानप्रस्थ का सेवन किया जाता था। इस जीवन की प्राप्ति के लिए वह संयमित और कठोर जीवन का पालन करता था। वह शीत और उष्ण को सहन करते हुए तपश्चर्या के कार्य में निमग्न रहता था।

वानप्रस्थी का जीवन अत्यन्त त्याग, साधना और तप का था। वह ब्रह्मचर्य और इन्द्रिय निग्रह के साथ–साथ सत्य और अहिंसा का अनुपालक था। इस तरह वह पचास से पचहत्तर की अवस्था तक जीवन व्यतीत करता था। दिन में दो बार स्नान करना और 'होम का अनुष्ठान' करना उसका पुनीत कर्त्तव्य माना जाता था। अतः इन्द्रिय निग्रह, जीवों के प्रति दया, सांसरिकता से विरक्ति, भिक्षा से जीविकोपार्जन आदि वानप्रस्थियों का प्रधान कर्म था। पंचमहायज्ञ और अतिथि का सत्कार करना उसका प्रधान कर्त्तव्य माना जाता था।

''ताण्ड्य ब्राह्मण'' [1] में कहा गया है 'वैखानस' लोग इन्द्र के प्रिय थे। एक बार किसी ने उन्हें मारण नामक स्थान पर मार डाला, देवताओं ने इन्द्र से कहा कि वे ऋषि कहाँ गये, तब इन्द्र उन्हें खोजने गये, परन्तु वे नहीं मिले, तब इन्द्र ने समस्त विश्व को एक सोता बना डाला और उसमें वैखानस साम के गान द्वारा उन्हें खोज निकाला।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि वानप्रस्थ आश्रम मोक्ष के मार्ग का दिग्दर्शन कराता हुआ मनुष्य को साधना और तपस्या की ओर प्रेरित करता था। वह अपने

1– ताण्ड्य ब्राह्मण – 14/4/7

पारिवारिक और भावात्मक सम्बन्धों को छोड़कर एकान्त और निर्जनता का जीवन व्यतीत करता था। कठोर व्यवस्थाओं और नियमबद्ध कर्त्तव्यों द्वारा वह अपने चरित्र और व्यक्तित्व को तपाता था। वह धीरे–धीरे अपने को समाज तथा परिवार से दूर रखता जाता था और अन्त में पूर्णतः दूर हो जाता था। वह अपने पारिवारिक कर्त्तव्यों से मुक्त होकर भी अतिथियों आदि की सेवा से सम्बन्धित सामाजिक कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक था, परन्तु ये सामाजिक कर्त्तव्य उसके भावी जीवन में बाधक नहीं, बल्कि साधक थे और वानप्रस्थियों अर्थात् वैखानसों की साधना में सहायक ही होते थे।

''सन्यास आश्रम''–

जीवन का अन्तिम भाग था, जो पचहत्तर की अवस्था से सौ वर्ष अथवा इसके बाद तक, सन्यास के अन्तर्गत रखा गया था। इसे ही सन्यास आश्रम कहा जाता था। वानप्रस्थ आश्रम के बाद इसकी शुरूआत होती थी। पुरुषार्थ के अन्तिम लक्ष्य और मोक्ष की प्राप्ति सन्यास आश्रम के माध्यम से ही सम्भव थी । सन्यासी को 'भिक्षु' शब्द से भी सम्बोधित किया गया है। वैदिक तथा ब्राह्मण ग्रन्थों मे उसके लिए 'यति' का प्रयोग किया गया है। [2]

1– ''येनायतिश्यो भृगवे धनेहिते येन् प्रस्कण्व माविश।'' अथर्ववेद 2/5/5

2– ऋग्वेद – 8/3/9

सन्यास के अर्थ में 'यति' शब्द का प्रयोग ब्राह्मण साहित्य में पाया जाता है। सूत्र तथा स्मृतियों में 'यति' शब्द का प्रयोग सन्यास अर्थ में पाया जाता है। सन्यास का अर्थ पूर्ण त्याग से है। ताण्ड्य ब्राह्मण में उल्लेख मिलता है 'एक बृहदगिरि इन तीनों यतियों में से थे जिन्हें इन्द्र ने सालावृकों को दे दिया, परन्तु वह किसी प्रकार बच गया और इन्द्र की शरण में गया'।[1] इन सब उदाहरणों से लगता है कि यति लोग ऐसी जाती के थे जिनसे इन्द्र को द्वेष था। इसलिए इन्द्र ने क्रूद्ध होकर 'यतियों' को सालावृकों के सामने फेंक दिया था।

ऐतरेय ब्राह्मण में 'यतियों' को अरूण मुखवाला कहा गया है।[2] वस्तुतः मोक्ष प्राप्ति के लिए सन्यास आश्रम की सहायता आवश्यक थी। मनु का कथन है कि मनुष्य तीन ऋणों – देवऋण, पितृऋण तथा ऋषिऋण को सम्पन्न करने के बाद ही अपने मन को मोक्ष की ओर लगाये अर्थात् सन्यास ग्रहण करें।'[3] सन्यास आश्रम का मूल उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति थी। अतः मोक्ष की प्राप्ति के लिए अत्यन्त साधना और तपस्या की अपेक्षा थी। सन्यासी का जीवन समस्त रागद्वेष और मोह माया से अलग पूर्णतया एकाकी था। उसे अपनी स्पृहा, इन्द्रिय,

---

1– 'ताण्ड्य ब्राह्मण – 8/1/4

2– ऐतरेय ब्राह्मण – 7/28

3– ''ऋणानि त्रीण्यापाकृत्य मनो मोक्षेनिवेशयेत्।

अनपकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः।।'' – मनुस्मृति – 6/35

आचरण आदि पर नियंत्रण रखना अनिवार्य माना जाता था। संग्रह करने पर भी प्रतिबन्ध का वर्णन मिलता है।

शास्त्रकारों द्वारा यह भी स्वीकार किया गया था कि सांसारिक वस्तुओं से अनासक्त होने पर ही उसे ज्ञान की प्राप्ति हो सकती थी, चलते समय वह अपनी दृष्टि इधर–उधर नहीं डालता था, बल्कि वह अपने पैरों की ओर दृष्टि गड़ाकर भूमि की ओर देखता चलता था। सांसारिक आकर्षणों से विरक्त होकर वह अविक्षिप्त दृष्टि रखता था। इस लिए इसे 'कौक्कुटिक' भी कहा जाता था।

इन्द्रिय निग्रह के साथ जितेन्द्रिय होना भी उसके लिए आवश्यक था। जितेन्द्रिय होकर ही वह नियम और सच्चरित्रता का पालन कर सकता था। उस ब्रह्म के ध्यान में लीन रहने, मांस की अभिलाषा से मुक्त, अकेला, मोक्ष सुख को चाहने वाला बताया गया है। 'ताण्ड्य ब्राह्मण' [1] में एक उल्लेख मिलता है 'कि इन्द्र ने एक बार यतियों को सालावृकों को दे दिया, उनमें से तीन यति पृथुरश्मि, रायोवाज और बृहदगिरि किसी प्रकार बच गये, इन यतियों ने कहा कि कौन हमारी पुत्रवत रक्षा करेगा, इन्द्र ने कहा मैं करूंगा। इन्द्र इन्हें अपने कन्धे पर रख कर इनकी परिचर्या करते हुए घूमते रहे। एक दिन इन्द्र ने कहा कि पुत्रों वर मागों, उन्होंने क्रमशः ब्रह्मचर्य, क्षत्र और पशु (वैश्य) बनने की आकांक्षा की, इन्द्र ने उन्हें मनोवांक्षित फल दे दिया।''

1– पंचविंश ब्राह्मण – 13/4/17

परन्तु सम्बन्धी उल्लेखों पर ध्यान देने से ऐसा प्रतीत होता है कि 'यति' सन्यासी नहीं वरन् अनार्य जाति है जो कि आर्य सभ्यता के संरक्षक इन्द्र की विरोधी थी। शरण में आने पर 'इन्हें इन्द्र ने आर्यों मे मिला लिया' [1]

इस तरह हम देखते हैं कि सन्यासी का जीवन अत्यन्त तपस्या और कठोरता का था, परम उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति के लिए वह अपने शरीर और मन को दृढ़तापूर्वक तपाता था। प्रवृत्तियों से पूर्णतः उदासीन होकर निवृत्ति मार्ग को अनुगमन करता था। समस्त भौतिक और सांसारिक पदार्थों के प्रति अनासक्त होकर वह मनोनिवेशपूर्वक अपने उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति के लिए साधनारत रहता था। ब्रह्म के प्रति पूर्ण आस्थावान होकर वह निवृत्ति नियमों का अनुसरण करता था। आत्मज्ञान और परमपद की प्राप्ति के लिए वह संयम पूर्वक संलग्न रहता था। इसके साथ ही साथ समाज के लोग उसके अनुशासनात्मक, अध्यात्म और संयमित जीवन से ओलोकित होते थे तथा भविष्य के लिए शिक्षा एवं प्रेरणा पाते थे।

''आश्रमव्यवस्था और स्त्री'' –

जिस प्रकार पुरुष के लिए आश्रम व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक और प्रयोजनीय थी, उस प्रकार स्त्री के लिए नहीं थी। स्त्री के लिए आश्रम व्यवस्था

1– हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र – भाग 2 – पी0 वी0 काणे।

का विधान कम आवश्यक था। पूर्व वैदिक युग के बाद से उसका ब्रह्मचर्य का जीवन भी आबद्ध हो गया था। गृहस्थ जीवन के अतिरिक्त वानप्रस्थ और सन्यास का जीवन भी बन्धनग्रस्त था। यद्यपि आश्रमों के कर्त्तव्य निर्वाह में पुरुष के साथ उसका समुचित सहयोग था, फिर भी स्त्री अनेक अधिकार से वंचित कर दी गयी थी। साथ–साथ अनेक प्रतिबन्धों से बॉध दी गयी इनका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है –

"ब्रह्मचर्य आश्रम"–

पुरुषों जैसा ब्रह्मचर्य जीवन स्त्री का नहीं था। वह पूर्ण रूप से गृह में रह कर गृहस्थ बनने की आशा रखती थी तथा समाज भी उससे यही अपेक्षा करता था। वैदिक युग में ब्रह्मचर्य पालन करने के लिए निर्दिष्ट किया गया था।" [1] जो कन्या आजीवन शिक्षा ग्रहण करने में लगी रहती थी तथा विवाह जैसे सामाजिक बंधन में नहीं फॅसती थी, वह 'ब्रह्मवादिनी' कही जाती थी।" [2] कुशध्वज की कन्या वेदवती इसी प्रकार की ही थी, जिसने आजीवन विवाह नहीं किया था।

"गृहस्थ आश्रम" –

स्त्री के सहयोग से ही गृहस्थ आश्रम का प्रारम्भ होता था। बिना उसके सहयोग के गृहस्थ का जीवन उद्देश्यहीन था। स्त्री के लिए विवाह अनवार्य था।

1– "ब्रह्मणचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्" – अथर्ववेद– 11/5/18

2– शतपथ ब्राह्मण – 3/24/6

मनु के अनुसार "प्रजननार्थ" ही स्त्री की सृष्टि हुई थी।"[1] वह गृह–सामाग्री भी कही गयी थी।[2] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि स्त्री के लिए गृहस्थ का जीवन व्यतीत करना तथा गार्हस्थ्य उत्तरदायित्वों को निभाना जरूरी था। वह कुटुम्ब के सभी सदस्यों के साथ स्नेहशील और आदरयुक्त व्यवहार करती तथा अपना सहयोग प्रदान करती थी।

"वानप्रस्थ आश्रम" –

गृहस्थ आश्रम की समाप्ति के बाद वह अपनी इच्छा के अनुसार अपने पति के साथ प्रवेश कर सकती थी। निश्चित रूप से यह उसकी इच्छा पर निर्भर करता था कि वह वानप्रस्थ आश्रम में अपने पति के साथ रहे या गृहस्थ आश्रम में अपने शेष जीवन व्यतीत करे। वैदिक युग में अनेकानेक स्त्रियाँ अपना जीवन तपस्या और साधना में ही व्यतीत करती थी। वे वन अथवा निर्जन स्थान में ध्यानमग्न होकर तपश्चर्या करती थी। अरून्धती, माधवी, मृत्युदेवी, अत्रिभार्या और सुलभा आदि ऐसी ही स्त्रियाँ थी जिन्होंने कठिन तपश्चर्या की थी।

"सन्यास आश्रम" –

फिर भी दूसरी ओर हम यह भी देखते हैं कि स्त्रियों के प्रव्रज्या ग्रहण करने के विषय में प्रायः सभी बुद्धिजीवी विरूद्ध ही रहे हैं, क्योंकि प्रव्रज्या ग्रहण

1– "प्रजनार्थस्त्रियः सृज्यः"– मनुस्मृति 9/96

2– अथर्ववेद – 14/1/43

करने से समाज और धर्म में अनेक समस्याओं का उठ खड़ा होना स्वाभाविक था। नारी न तो अपनी सुरक्षा करने में समर्थ थी और न ही धर्म की, प्रत्युत नैतिक आदर्शों से च्युत होने की ही उससे आंशका थी। शायद इसलिए 'बुद्ध' नारी के प्रवज्या ग्रहण करने के विरूद्ध थे।

बौद्धयुग में तो युवतियाँ भी भिक्षुणियाँ बनने लगी, जिससे नैतिक पतन प्रारम्भ हो गया, उनके लिए एकान्त में रहना कठिन हो गया। शीलभंग के ऐसे अनेक उदाहरण भी मिलते हैं।[1] कुल मिलाकर इन्हीं समस्याओं की आंशका से हिन्दू धर्मशास्त्रकारों ने स्त्री के लिए सन्यास का जीवन स्वीकार नहीं किया तथा उन्हें पति तथा पुत्र द्वारा रक्षित माना और परिवार के वरिष्ठ सदस्यों के संरक्षण में रहने का निर्देश किया है।

1– विनयपिटक – पृष्ठ – 537/540

उपसंहार

'वेद' सर्वाधिक प्राचीनतम, पवित्र ग्रन्थ है। वस्तुतः वेद धर्म का मूल है और समस्त ज्ञान से परिपूर्ण है। चारों वर्ण, तीनो लोक, चारों आश्रम इत्यादि का परिज्ञान 'वेद' से ही होता है। वेद और वैदिक साहित्य की अलग–अलग श्रेणियॉ हैं। 'वेद' शब्द से चार मन्त्र संहिताओं का ज्ञान होता है, तो दूसरी ओर वैदिक साहित्य से वेदविषयक बहुविध सामग्री का ज्ञान होता है, ये – ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् हैं। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत षड्–वेदांग भी आते हैं। संहिताएँ भी चार हैं – ऋक् संहिता, यजुः संहिता, साम संहिता और अथर्व संहिता।

वैदिक संहिताओं और उनकी शाखाओं के बाद ब्राह्मण ग्रन्थों का स्थान आता हैं। ब्राह्मण साहित्य से अभिप्राय 'यज्ञ विशेष' पर किसी विशिष्ट आचार्य के मत या वाद से है। वास्तव में ब्राह्मण ग्रन्थ सामूहिक रूप से यज्ञ विधान पर विद्वान पुरोहितों द्वारा दी गयी व्याख्याएँ हैं। ब्राह्मण शब्द ब्रह्मन् के व्याख्या करने वाले ग्रन्थों को भी कहते हैं। इनमें वैदिक मन्त्रों एवं ऋचाओं की व्याख्या करने वाले ग्रन्थों की ही व्याख्या की गयी है। 'ब्रह्म' का दूसरा अर्थ 'यज्ञ' है। याज्ञिक कर्मकाण्ड की व्याख्या करने के कारण भी इन्हें 'ब्राह्मण' कहा जाता है। वस्तुतः ब्राह्मण ग्रन्थ यज्ञों की वैज्ञानिक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक मीमांसा प्रस्तुत करने वाला एक महनीय विश्वकोष कहा जाए, तो उचित ही होगा।

आज अनेक ब्राह्मण ग्रन्थ काल–कवलित हो गये हैं, केवल उनका नाम

एवं उद्धरण ही श्रौत ग्रन्थों में पाया जाता है। इनकी संख्या बहुत थी, मगर आजकल सब नहीं मिलते। समस्त ब्राह्मण ग्रन्थ गद्य में ही निबद्व किये गये हैं। ब्राह्मणों का गद्य बहुत ही परिमार्जित तथा उदात्त है। वस्तुतः इनकी भाषा संहिताओं की भाषा तथा पाणिनि द्वारा नियमित संस्कृत भाषा को मिलाने वाली कड़ी कहा जाए, तो ज्यादा उचित होगा।

प्रत्येक वेद के अलग–अलग ब्राह्मण हैं। ऋग्वेद में ऐतरेय और शांखायन ब्राह्मण, शुक्ल यजुर्वेद की दोनो शाखाओं पर शतपथब्राह्मण और कृष्ण यजुर्वेद में तैत्तिरीय ब्राह्मण है। सामवेद के अन्तर्गत – ताण्ड्यब्राह्मण, षड्विंश, सामविध ाान, आर्षेय, दैवत, उपनिषद् ब्राह्मण, संहितोपनिषद् ब्राह्मण, वंश एवं जैमिनीय ब्राह्मण आता है। अथर्ववेद का एकमात्र 'गोपथ ब्राह्मण' है। 'ताण्ड्य ब्राह्मण' को ताण्ड्य 'महाब्राह्मण', 'पंचविंश ब्राह्मण' तथा 'प्रौढ़ ब्राह्मण' की संज्ञा दी गयी है। 'ताण्डि' शाखा से सम्बद्ध होने के कारण इसका नाम 'ताण्ड्यब्राह्मण' है। पचीस अध्यायों में विभक्त होने के कारण इसे 'पंचविंश ब्राह्मण' भी कहते हैं। सामवेद के ब्राह्मणों में प्रधान तथा विशालकाय होने के कारण इसे 'प्रौढ़ब्राह्मण' तथा 'महाब्राह्मण' भी कहते हैं।

यज्ञों की विस्तृत व्याख्या ने इस ब्राह्मण को और अधिक महत्वपूर्ण बना दिया है। इसमें सोमयागों का विस्तृत विवेचन बहुत सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इसी ब्राह्मण में 'एकाह', 'अहीन' और सत्रों का वर्णन है। ताण्ड्यब्राह्मण

के प्रथम तीन अध्यायों मे त्रिवृत् पंचदश, सप्तदश आदि स्तोमों की विष्टुतियॉ विशदरूप में वर्णित हैं। चतुर्थ तथा पंचम अध्यायों में 'गवामयन' का वर्णन है। 'गवामयन' एक वर्ष तक चलने वाला याग है। 'ज्योतिष्टोम', 'उक्थ्य' और 'अतिरात्र' का वर्णन इस ग्रन्थ की गरिमा को और भी बढ़ा देता है। ''आदुम्बरी'' शाखा की स्थापना तथा 'द्रोणकलश' का वर्णन और सवनों – प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन तथा तृतीय सवन का बहुत ही मनोरम वर्णन देखने को मिलता है।

'सोमयाग' का वर्णन इस ग्रन्थ का मुख्य विषय है। 'साम' के विशेष प्रकारों का वर्णन भी इसी में प्राप्त होता है। 'व्रात्य–यज्ञ' का वर्णन अतिमहत्त्वपूर्ण है। वस्तुतः 'व्रात्यों' को आर्यों के समकक्ष लाने के लिए अथवा आर्यों की श्रेणी में लाने के लिए यज्ञ का विधान हुआ। व्रात्यों की 'वेश–भूषा', आचार–विचार, खान–पान इत्यादि का वर्णन तथा इस सम्बन्ध में बहुमूल्य पदार्थों का निर्देश महत्त्वपूर्ण है। यह धार्मिक दृष्टि से भी विशेष महत्त्व रखता है। ब्राह्मणयुगीन भौगोलिक ज्ञान के लिए भी इस ब्राह्मण की प्रकृष्ट उपयोगिता है। ताण्ड्य का भौगोलिक क्षेत्र कुरूक्षेत्र तथा सरस्वती का मण्डल है, जो स्वर्ग के समान माना गया है। (25 अ0)। कुरूक्षेत्र में नैमिषारण्य तक का प्रदेश यज्ञभूमि के रूप मे उल्लिखित है।

सामवेद का द्वितीय महत्त्वपूर्ण ब्राह्मण 'षड्विंशब्राह्मण' है। इस ब्राह्मण का भी प्रधान विषय सोमयागों तथा अन्य कर्मकाण्डों का विवरण प्रस्तुत करना है। इसके प्रथम पॉच अध्यायों में सोमयागों से सम्बद्ध कर्मकाण्डों का विवेचन किया

गया है, जबकि छठे अध्याय में अमंगल एवं उत्पातों के निवारणार्थ शान्तिप्रदायिनी क्रियाओं का उल्लेख किया गया है। 'षड्विंशनाम' का अर्थ ही 'छब्बीसवाँ' है। यह नामकरण इसलिए है, क्योकि यह पंचविंश ब्राह्मण (पचीसवें) अर्थात् ताण्ड्य ब्राह्मण के ठीक बाद आता है।

तत्कालीन धार्मिक धारणाओं का भी विशेष संकेत उपलब्ध होता है। षड्विंश ब्राह्मण के प्रथम काण्ड में सुब्रह्मण्या' ऋचा की विशिष्ट व्याख्या है। अभिचार के समय ऋत्विजों के वेश के वर्णन से पता चलता है कि वे लोग लाल पगड़ी तथा किनारी वाली धोतियों को यज्ञ के अवसर पर पहनते थे। [1] इसी प्रकार इस ब्राह्मण में ब्राह्मणों के सन्ध्या करने का समय अहोरात्र का सन्धिकाल बताया गया है। [2]

सामविधान ब्राह्मण सामवेद का अन्यतम ब्राह्मण है। इसकी विषय–सामग्री अन्य ब्राह्मण–ग्रन्थों मे वर्णित विषय – सामग्री से सर्वथा भिन्न है। यज्ञ कर्मकाण्डों के स्थान पर इस ग्रन्थ में जादू–टोना, शत्रु–उच्चाटन तथा उपद्रवों को शान्त करने आदि विषयों का प्रतिपादन किया गया है। इसकी विषय सामग्री प्रायेण धर्मशास्त्रों में वर्णित सामग्री के अनुरूप है। इस ब्राह्मण में तीन प्रपाठक हैं। ये

1– लोहितोष्णीषाः लोहितवाससो निवीता ऋत्विजः प्रचरन्ति

– षड्विंश ब्राह्मण – 4/2/22

2– तस्माद् ब्राह्मणोऽहोरात्रस्य सन्ध्यामुपासते – वही – 5/5/4

प्रपाठक खण्डों मे विभक्त हैं। प्रथम एवं द्वितीय प्रपाठक में आठ–आठ खण्ड तथा तृतीय प्रपाठक में नौ खण्ड है। इस प्रकार ऐन्द्रजालिक एवं आभिचारिक विधि–विधानों के परिचय के लिए इस ब्राह्मण का विशेष महत्त्व है।

सामवेद का चौथा ब्राह्मण आर्षेय ब्राह्मण है। इस ग्रन्थ का प्रथम प्रकाशन बर्नेल द्वारा 1876 ई0 में किया गया। इसमें कुल तीन प्रपाठक तथा बयासी खण्ड हैं। इस ब्राह्मण में विशेष रूप से साम के उद्भावक ऋषियों का वर्णन है। इसके अतिरिक्त सामगायन के प्रचारक ऋषियों का भी वर्णन किया गया है जो ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। पूर्व में 'देवताध्याय' तथा ' आर्षेय ब्राह्मण' एक ही ग्रन्थ में सम्मिलित थे जैसा कि 'देवताध्याय' के सूत्र [1] 'स्वस्ति देवऋषिभ्यश्च' से स्पष्ट होता है।

सामवेद से सम्बद्ध ब्राह्मणों में 'दैवतब्राह्मण' सबसे छोटा ब्राह्मण है। इस ग्रन्थ में कुल तीन खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में 26 द्वितीय खण्ड में 11 और तृतीय खण्ड में 25 कंण्डिकाएँ हैं। इस ग्रन्थ में छन्दों का विशिष्ट रूप से प्रतिपादन किया गया है। छन्दों के नामो के निर्वचन की भी सम्यक् जानकारी करायी गयी है। अतः इसे सामवेदी छन्दों का ग्रन्थ कहा जाता है। परवर्ती छन्दस् शास्त्र एवं भाषा–शास्त्र के लिए यह ब्राह्मण ग्रन्थ उपजीव्य ग्रन्थ के रूप में मान्य रहा है।

'उपनिषद्ब्राह्मण' भी सामवेद से सम्बद्ध ब्राह्मण है। यह ब्राह्मण दो ग्रन्थों

1–सायणभाष्य – 4, 4

का मिश्रित नाम है। प्रथम ग्रन्थ 'छान्दोग्य ब्राह्मण' अथवा 'मन्त्र ब्राह्मण' के नाम से जाना जाता है। इस ग्रन्थ में दो प्रपाठक हैं। प्रत्येक प्रपाठक में आठ–आठ खण्ड हैं। 'मन्त्र ब्राह्मण' का विषय गृह्यसूत्रों में प्रयुक्त मन्त्रों को संकलित करना है। इसमें गर्भाधान, पुंसवन, विवाह आदि संस्कारों से सम्बद्ध मन्त्र तथा भूत–बलि, पिण्डदान, देवबलि, होम, दर्शपूर्णमास आदि अनुष्ठानों से सम्बद्ध मन्त्रों का विधान बताया गया है। दूसरा ग्रन्थ 'छान्दोग्य उपनिषद्' है। इसमें आठ प्रपाठक हैं। इस ग्रन्थ में उपनिषद् सम्बन्धी विषयों का विस्तृत विवेचन है।

सामवेद से सम्बद्ध ब्राह्मणों में 'संहितोपनिषद् ब्राह्मण' का अपना अलग महत्त्व है। इस ब्राह्मण में कुल पॉच खण्ड हैं और प्रत्येक खण्ड सूत्रों मे विभक्त हैं। इसमें सामवेद के विभिन्न सूत्र तथा साम मन्त्र आदि उपन्यस्त हैं। गान संहिता की विधि, स्तोम, अनुलोम, प्रतिलोम तथा अन्य प्रकार के स्वरों का विशद् विवेचन किया गया है। सामगानों का विवेचन अतिवैज्ञानिक दृष्टि से किया गया है। सामगानों का विशद् ज्ञान इसी ब्राह्मण ग्रन्थ से प्राप्त होता है।

'वंश ब्राह्मण' सामवेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों में सर्वाधिक लघुकाय ग्रन्थ हैं। यह ग्रन्थ तीन खण्डों मे विभक्त है। इस ग्रन्थ में सामवेदीय ऋषियों की वंश परम्परा का विवरण अंकित हैं। उस समय समाज एवं वैदिक ऋषियों के जीवन के बारे में इस ग्रन्थ से पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है।

''जैमिनीय ब्राह्मण' सामवेद की जैमिनीय शाखा का ब्राह्मण है। इसका

दूसरा नाम 'तवल्कार ब्राह्मण' भी है। इस ब्राह्मण में कुल पॉच अध्याय है। प्रथम तीन अध्यायों मे यज्ञीय विधि का वर्णन है। चतुर्थ अध्याय 'उपनिषद् ब्राह्मण' है। 'पंचम अध्याय 'आर्षेय ब्राह्मण' है। जिसमें सामवेद के उद्‌भावक एवं सामगायन के प्रचारक ऋषियों का वर्णन है।

सामवेदीय ब्राह्मणों की उपयोगिता हमें अनेक रूपों मे मिलती है। ब्राह्मण युगीन भौगोलिक ज्ञान के लिए इनकी अत्यन्त उपयोगिता है। 'कुरूक्षेत्र' तथा 'सरस्वती का मण्डल' ताण्ड्य ब्राह्मण का भौगोलिक क्षेत्र है जिसकी गणना स्वर्ग के समान की गयी है। (25 अ0) इनमें कतिपय भौगोलिक स्थानों का वर्णन मिलता है। यद्यपि हमें इनमें याज्ञिक कर्मकाण्ड की भरपूर सामग्री उपलब्ध होती है, मगर इसके साथ–साथ आख्यानों का भी वर्णन आया है। वस्तुतः आख्यान याज्ञिक क्रिया को सर्वसाधारण के लिए सुलभ एवं ज्ञेय बनाते हैं। ये आख्यान मानव चरित्र को नैतिकता की भी जानकारी देते हैं। मेरे विचार से इनका प्रणयन याज्ञिक विधियों की व्याख्या की दुष्टि से किया गया है, जो उचित भी है। वास्तव में इनसे दो कार्यों की पूर्णता देखने को मिलती है – पहली तो यज्ञों के स्वरूप का स्पष्टीकरण और दूसरी चारित्रिक तथा सामाजिक आदर्शों की स्थापना है।

सामवेदीय ब्राह्मणों में स्थान–स्थान पर मानवीय आचरण की दिशा को निर्दिष्ट करने वाले महत्त्वपूर्ण संकेत सुलभ होते हैं। इनमें प्रायः उन सभी आवश्यक तथ्यों का ध्यान रखा गया है जो व्यक्ति के व्यवहार को आवश्यकतानुसार

न केवल संयत बनाते हैं, अपितु उसे गरिमा से विमण्डित भी करते हैं। 'सामविधान ब्राह्मण' में कहा गया है कि सत्य बोलना चाहिए तथा अनार्यों के साथ सम्भाषण से बचना चाहिए – 'सत्यं वदेत्, अनर्यैर्न सम्भाषेत्' (1. 2. 7)।

'देवताध्याय ब्राह्मण' में प्रार्थना की गयी है – ' ब्रह्मसत्यं च पातु माम्' (1. 4. 5) – ज्ञान और सत्य मेरी रक्षा करें।

सामवेदीय ब्राह्मणकालीन भारत की भौगोलिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, सामाजिक जीवन, व्रात्य–मीमांसा, शिक्षा प्रणाली, स्त्री शिक्षा एवं समाज, वर्ण व्यवस्था, संस्कार, राजनैतिक स्थिति, धार्मिक स्थिति, आचार–दर्शन तथा आश्रम–व्यवस्था को जानने के लिए यह ग्रन्थ नितान्त उपयोगी है।

इस प्रकार ग्रन्थ के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इसमें यागानुष्ठानों का विशाल एवं मनोरम वर्णन है, यह निर्विवाद है। पाश्चात्य या देशीय आलोचक ने ही इसे नगण्य दृष्टि से देखने का दु:साहस करे या व्यर्थ की बकवाद माने, किन्तु मेरा अपना विचार है कि इसकी उपयोगिता थी और रहेगी भी, क्योंकि किसी न किसी रूप में ये अनुष्ठान आज भी सम्पन्न किये जाते हैं। ऐसा प्रायः देखने को मिलता है कि जन्म से लेकर मृत्यु तक इनका क्रम किसी न किसी रूप में चलता आ रहा है। आज कहीं न कहीं यज्ञ सम्पन्न किये जाते रहते हैं। देवयज्ञ, पितृयज्ञ इत्यादि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। हॉ, इनमें कुछ कमी आ गयी है, यह अलग बात है, क्योंकि मैं भी मानती हूँ की परिस्थिति के परिवर्तन से यह अवश्य ही

कुछ धूमिल सा हो गया है। फिर भी वह धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से आज भी उपादेय और मननीय है। पुनः इसके लिए आवश्यकता है – श्रद्धामय अनुशीलन और अन्तरंग दृष्टि की।

इस प्रकार इस शोध–प्रबन्ध में 'सामवेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों का सांस्कृतिक अध्ययन' के विवेचन में, ब्राह्मण साहित्य का सामान्य परिचय, सामवेदीय ब्राह्मणों का सामान्य अध्ययन, साम ब्राह्मणों में यज्ञ–विधान तथा सांस्कृतिक तत्त्वों–भौगोलिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, सामाजिक–जीवन, व्रात्य मीमांसा यति, वर्ण–व्यवस्था, आश्रम–व्यवस्था, संस्कार, आचार–दर्शन, राजनैतिक स्थिति एवं धार्मिक स्थिति से सम्बन्धित अंशों को साथ ही साथ अन्य ग्रन्थों से, इससे सम्बन्धित उचित अंशों को भी प्रदर्शित किया गया है।

अनुसंधान के समय यह ध्यान दिय गया है कि प्रायः अनुसंधात्री की अनुसंधात्मक प्रवृत्ति का ही प्राधान्य रहे। मेरा यह विश्वास है कि सामवेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों का यह सांस्कृतिक अध्ययन सामवेदीय ब्राह्मणकालीन संस्कृति को जानने के लिए नितान्त उपदेय हो सकेगा।

सहायक ग्रन्थ–सूची

वैदिक एवं संस्कृत–ग्रन्थ

1–	आश्वलायन श्रौतसूत्रम्	:	आनन्दाश्रम, पूना, 1917
2–	आश्वलायन गृह्यसूत्रम्	:	आनन्दाश्रम, पूना 1930
3–	आपस्तम्ब श्रौतसूत्रम्	:	कलकत्ता, 1902
4–	आपस्तम्ब गृह्यसूत्रम	:	चौखम्बा, 1928
5–	आर्षेय ब्राह्मण	:	(1) सं0 बे0रा0 शर्मा के0 सं0 वि0, तिरूपति, 1967
6–	ईशादि नौ उपनिषद्	:	सं0 गोयन्दका, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं0 2033
7–	ऐतरेय आरण्यक	:	सं0 ए0 बी0 कीथ, आक्सफोर्ड, 1969
8–	ऐतरेय ब्राह्मणम्	:	(सायण–भाष्य सहितम्), आनन्दाश्रम, पूना, 1931
9–	गोपथ ब्राह्मणम्		सं0 राजेन्द्र लाल मित्र, कलकत्ता, 1872
10–	गौतमधर्मसूत्रम्		चौखम्बा, वाराणसी
11–	चरणव्यूहः		चौखम्बा, 1938

12–	छान्दोग्य उपनिषद्	:	(शांकर भाष्य सहित), गीता प्रेस, सं0 2019
13–	छान्दोग्य ब्राह्मण	:	(गुणविष्णु भाष्य सहित), – सं0 दुर्गा मोहन भट्टाचार्य, कलकत्ता
14–	जैमिनीयार्षेय – जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण	:	(1) सं0 बे0 रा0 शर्मा, तिरूपति, 1967
		:	(2) सं0 रामदेव, लाहौर, 1921
15–	जैमिनीय ब्राह्मणम्	:	सं0 डा0 रघुवीर एवं लोकेश चन्द्र, सरस्वती, बिहार, 1954
16–	तन्त्रवार्तिकम्	:	(शाबर भाष्य सहितम्)
17–	ताण्ड्य महाब्राह्मणम्	:	(1) सं0 पं0 चिन्नास्वामि शास्त्री तथा पट्टाभिराम शास्त्री, दो भाग (1934 एवं 1936) चौखम्बा
		:	(2) सं0 आनन्दचन्द्र वेदान्तवागीश, कलकत्ता – 1870–74
18–	तैत्तिरीय संहिता	:	आनन्दाश्रम, पूना, 1934
19–	तैत्तिरीय ब्राह्मण	:	आनन्दाश्रम, पूना,

20– देवताध्याय ब्राह्मणम् : (1) सं0 बे0 रा0 शर्मा, तिरूपति, 1965

21– निरूक्तम् (दुर्ग वृत्ति सहितम्) : मनसुखरायमोर, कलकत्ता

22– बृहदारण्यक उपनिषद् : गीता प्रेस, गोरखपुर

23– मन्त्रब्राह्मणम् : सं0 सत्यव्रत सामश्रमी, कलकत्ता

24– वंशब्राह्मणम् (सायणभाष्यसहितम्) : (1) सं0 बे0 रा शर्मा, तिरूपति, 1965

: (2) सत्यव्रत सामश्रमी, कलकत्ता

25– वाजसनेयि संहिता : (उव्वट महीधर भाष्यसंहिता) – मोतीलाल बनारसी दास, 1971

26– वेद–भाष्यभूमिका संग्रह (सायण–कृत्य) : सं 0पं0 बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा, 1958

27– शतपथ ब्राह्मणम् : सं0 ए0 बेबर, चौखम्बा, (पुर्नमुद्रण)

28– षड्विंश ब्राह्मणम् : (सायण भाष्य सहितम्) (1) सं0 बे0 रा0 शर्मा, तिरूपति, 1967

(2) सत्यव्रत सामश्रमी, कलकत्ता, 1873

(3) जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता, 1881

29– संहितोपनिषद् ब्राह्मणम् : (द्विजराज भट्ट तथा सायण भाष्यों सहित) – सं० बे० रा० शर्मा, तिरूपति, 1965

30– सामविधान ब्राह्मणम् : (सायण तथा भरतस्वामि कृत भाष्यों सहित) – सं० बे० रा० शर्मा, तिरूपति, 1965

31– सामवेद संहिता : (1) सं० पं० सातवलेकर, पारडी, 1939

(2) पं० सत्यव्रत सामश्रमी, कलकत्ता।

32– महाभारतम् : सं० सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी।

33– तैत्तिरीयसंहिता–भष्यम् : भट्टभास्कर

34– आर्षेयकल्पः (वरदराजकृतविवृति सहित।) : सं0 बे0 रा0 शर्मा, विश्वश्वरानन्द संस्थान होशियारपुर, 1976

35– ऋग्वेदसंहिता : वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, 1941

36– कात्यायन श्रौतसूत्रम् : चौखम्बा, 1908

37– कौषीतकि ब्राह्मणम् : आनन्दाश्रम, पूना

38– गोभिलगृह्यसूत्रम् : कलकत्ता, 1926

39– क्षुद्रकल्पसूत्रम् (श्री निवासभाष्यसहितम्) : सं0 बे0 रा0 शर्मा, विश्वेश्वरानन्द संस्थान होशियारपुर, 1974

40– निदानसूत्रम् : सं0 कैलासनाथ भटनागर, मेहरचन्द लक्ष्मणदास, दिल्ली, 1971

41– बौधायनश्रौतसूत्रम् : कलकत्ता, 1904

42– भगवद्गीता : गीता प्रेस, गोरखपुर

43– मैत्रायणी संहिता : सं0 सातवलेकर, 1942

44– लट्यायन श्रौतसूत्रम् : कलकत्ता, 1902

45– अथर्ववेद संहिता : (सायण–भाष्य सहित) – विश्वेश्वरानन्द संस्थान, होशियारपुर (1960–64)

आधुनिक ग्रन्थ हिन्दी

1–	वैदिक वाङ्मय का इतिहास	:	(ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थ) भगवद्दत्त तथा सत्यश्रवा प्रणव प्रकाशन, नई दिल्ली, 1974 तथा 1976
2–	वैदिक धर्म एवं दर्शन (दो भाग)	:	(दि रिलीजन एण्ड फिलासफी वेद एण्ड उपनिषद्स) मूल–कीथ, आ0 बे0, अनु0–सूर्यकान्त, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1965
3–	वैदिक साहित्य और संस्कृति	:	उपाध्याय, आ0 बलदेव (तृ0सं0), काशी, 1967
4–	वैदिक माइथॉलाजी	:	मूल–मैक्डॉनेल, आर्थर एंथोनी, अनु0–रामकुमार राय, चौखम्बा, 1961
5–	संस्कृत साहित्य में नीतिकथा उद्भव और विकास	:	कवठेकर, डॉ0 प्रभाकर नारायण, चौखम्बा, 1969

आर्ष एवं हिन्दी ग्रन्थ

1– शतपथब्राह्मण–एक सांस्कृतिक : उर्मिला देवी शर्मा, नयी दिल्ली

2– अभिज्ञान शाकुन्तलम् : कालिदास, एस0 के0 बेल्वल्कर द्वारा सम्पादित

3– कात्यायनपरिभाषासूत्र : कात्यायन

4– ऋगादिभाष्य भूमिका : दयानन्द सरस्वती

5– निरुक्तवृत्ति : दुर्गाचार्य, आनन्दाश्रम, पूना, भाग 1–2, 1924–26

6– व्याकरणमहाभाष्यम् (प्रदीपोद्योतसहितम्) : पतन्जली, भाग 1–5 गुरुकुल झज्जर (रोहतक) 1961–64

7– अष्टाध्यायी : पाणिनी, गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, बम्बई, 1985

8– ऐतेरय ब्राह्मण (व्याख्या) अध्याय – 1 : षड्गुरुशिष्य

9– मीमांसासूत्रभाष्यम् : शबरस्वामी

10– मनुस्मृति : मनु

11– वैदिक साहित्य (प्रथम संस्करण) : रामगोविन्द त्रिवेदी

12– ऋग्भाष्य भूमिका : सायण, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी।

13– गोपथ ब्राह्मण : राजेन्द्रलाल मित्र, जीवननन्द विद्यासागर, कलकत्ता, लाला रामकपूर ट्रस्ट बहालगढ़ सोनीपत।

ENGLISH WORKS

1-	The Religion of philosophy of the Vedas and Upanisads	:	Keith, A.B.
2-	Sanskrit English Dictionary	:	Willam's M.Monier
3-	A History of Sanskrit Literature	:	Macdonell, A.A. London 1913
4-	Historical Development of Indian Music	:	Prajnanand, Swamy Calucatta, 1960
5-	Ritual Literature	:	Hillebrandt
6-	Studies of Brahmans	:	Banerjee A.C., Moti lal Banarasidas, Delhi, 1963
7-	The Vedic Age - History and culture of Indian People Vol. I	:	Majumdar R.C. Pusalkar A.D., Vidya Bhawan Bombay, 1965